महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एम.बी.ए. पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम कोड : MBA - 001

प्रथम सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : MBA – 401

पाठ्यचर्या का शीर्षक : प्रबंधन के मूल आधार

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

प्रथम सेमेस्टर – एमबीए 401 प्रबंधन के मूल आधार

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
समकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

संपादक

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय,म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक : एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

संपादक मंडल

डॉ. रवीन्द्र टी. बोरकर
सह प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक,
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

डॉ. ए. के. जे. मंसूरी
जी. एस.कॉलेज ऑफ कॉमर्स, वर्धा

डॉ. राम ओ. पंचारिया
बी.डी. कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, सेवाग्राम

श्री अनुभव नाथ त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

प्रकाशक :
कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्टः हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र – 442001

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना एवं संयोजन
मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक : एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

इकाई लेखन
डॉ. पूजा वालिया मान
अधिष्ठाता, फैकल्टी ऑफ मैनेजमेंट
समालखा ग्रुप ऑफ इंस्टिटयूंसस
समालखा (पानीपत), हरयाणा

कार्यालयीन एवं मुद्रण सहयोग
श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

श्री. महेंद्र प्रसाद
सहायक संपादक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

सुश्री राधा ठाकरे
टंकक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of1997)

विषय कोड: MS 401 **क्रेडिट्स:** 2

क्रेडिट

विषय का नाम: प्रबंधन के मूल आधार (Fundamentals of Management)

पाठ्यक्रम के उद्देश्य:

- विद्यार्थियों को प्रबंधन के कार्यों के विषय में जानकारी उपलब्ध कराना।
- प्रबंधकीय कौशल का विकास करना।
- प्रबंधकीय समस्या को सुलझाने के लिए क्षमताओं को विकसित करना।

मूल्यांकन के मानदंड:

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सत्रीय कार्य : 30 %

पाठ्यक्रम सामग्री:

इकाई - I: प्रबंधन का परिचय (Introduction to Management)

- प्रबंधन का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Management)
- **प्रबंधन के कार्य एवं प्रकृति (**Functions and Nature of Management**)**
- **प्रबंधन के सिद्धांत (Principles of Management)**
- **प्रबंधन के स्तर (Levels of Management)**
- **प्रशासन और प्रबंधन (Administration and Management)**
- **प्रबंधकीय भूमिकाएं (Managerial Roles)**

इकाई - II: नियोजन एवं निर्णयन (Planning and Decision Making)

- नियोजन का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Planning)
- नियोजन का महत्व एवं सीमाएँ (Importance and limitations of planning)
- नियोजन प्रक्रिया एवं नियोजन के प्रकार (Planning Process and Types of Planning)
- **निर्णयन का अर्थ एवं विशेषताएँ (**Meaning and Characteristics of Decision Making**)**
- **निर्णयन प्रक्रिया (Decision Making Process)**
- **उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन (Management by Objectives)**

इकाई - III: पूर्वानुमान एवं संगठन (Forecasting and Organising)

- **पूर्वानुमान का अर्थ एवं आवश्यकता (Meaning and Need of Forecasting)**
- **पूर्वानुमान की तकनीक (Techniques of Forecasting)**
- संगठन का अर्थ एवं प्रक्रिया (Meaning and process of Organising)
- अधिकार एवं उत्तरदायित्व (Authority and Responsibility)
- अधिकारों का प्रत्यायोजन (Delegation of Authority)

इकाई - IV: समन्वय एवं विभागीयकरण (Coordination and Departmentalization)

- समन्वय का अर्थ एवं महत्व (Meaning and Importance of Coordination)
- विभागीयकरण का अर्थ एवं महत्व (Meaning and Importance of **Departmentalization**)
- विभागीयकरण का आधार(Basis of **Departmentalization**)

इकाई - V: नियंत्रण (Controlling)

- **नियंत्रण का अर्थ (Meaning of Controlling)**
- **नियंत्रण का महत्व एवं सीमाएँ(**Importance and limitations of Controlling**)**
- **नियोजन एवं नियंत्रण में संबंध (Relationship between Planning and Controlling)**
- **नियंत्रण प्रक्रिया (Controlling Process)**
- **नियंत्रण तकनीक (Controlling Techniques)**

सम्बन्धित पुस्तकें:

- Robbins, Stephen P., Coulter, M. &Vohra, N. (2011). Management. Pearson, New Delhi.
- Tripathi, P.C. & Reddy, P.N. (2008), Principles of Management, 4th Edition, the McGraw Hill, New Delhi.
- Pettinger, R. (2007), Introduction to Management, 4th Edition, Palgrave McMillan, New Delhi.

अनुक्रम

क्र. सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	प्रबंधन का परिचय	6–52
2.	नियोजन एवं निर्णयन	53–99
3.	पूर्वानुमान एवं संगठन	100–154
4.	समन्वय एवं विभागीयकरण	155–194
5.	नियंत्रण	195–220

इकाई – 1 : प्रबंधन का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 प्रबंधन के अर्थ एवं विशेशताएँ
1.3 प्रबंधन के कार्य एवं प्रकृति
1.4 प्रबंधन के सिद्धांत
1.5 प्रबंधन के स्तर
1.6 प्रशासन और प्रबंधन
1.7 प्रबंधकीय भूमिकाएं
1.8 प्रबंधन की विभिन्न विचारधाराएँ
1.9 सारांश
1.10 बोध प्रश्न
1.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- नियंत्रण का अर्थ, विशेषता, महत्व एवं सीमाओं को समझ सकेंगे।
- नियोजन एवं नियंत्रण के संबंध का उल्लेख कर सकेंगे।
- नियंत्रण प्रक्रिया एवं तकनीक की व्याख्या कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

प्रबंधन एक संगठित समूह गतिविधि है, जो आदमी के आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। एक केन्द्रिय निर्देशन और नियंत्रण एजेंसी व्यापार के लिए चिंता का विषय है। उत्पादक संसाधन सामग्री, श्रम, पूँजी, आयोजन, कौशल, प्रशासनिक क्षमता और प्रबन्धन के उद्यमी को पहल करने के लिए सौंपा जाता है। इस प्रकार प्रबन्धन एक व्यावसायिक उद्यम और प्रभावी नेतृत्व प्रदान करता है। सक्षम प्रबंधन और प्रभावी प्रबन्धकीय नेतृत्व के बिना उत्पादन के संसाधन केवल संसाधन रहते हैं और कभी भी उत्पाद नहीं बन सकते। अर्थव्यवस्था में बढती प्रतिस्पर्धा और बदलते पर्यावरण के तहत, व्यावसायिक उद्यम की सफलता के लिए योग्य व कुशल प्रबंधक की अवश्यकता होती है। प्रबंधन गुणवत्ता समाज और देश के कल्याण को प्रभावित करती है।

1.2 प्रबंधन का अर्थ एवं विशेषताएँ

प्रबंधन

विभिन्न विद्वानों ने प्रबंधन को इसकी विशेषताओं के आधार पर अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया है। कुछ विद्वानों ने प्रबंधन को 'अन्य लोगों से कार्य करवाने की कला के रूप में परिभाषित किया है तो कुछ ने इसको ''क्रियात्मक रुप'' में समझा है :–

थियो हैमन ने प्रबंधन को निम्नलिखित अर्थों में समझाया है:

(i) **प्रबंधन संज्ञा के रूप में :** इस अर्थ में प्रबंधन का आशय उन सभी व्यक्तियों से है जो दूसरों से कार्य करवाने में संलग्न हैं, जैसे – संचालक मंडल, प्रमुख संचालक, महाप्रबंधक आदि।

(ii) **प्रबंधन प्रक्रिया के रूप मे :** इसका आशय प्रबन्धकों द्वारा किए जाने वाले कार्यों से है। जैसे – नियोजन, संगठन, स्टाफिंग, समन्वय, निर्देशन, नियंत्रण आदि।

(iii) **प्रबंधन अनुशासन के रूप में :** 'प्रबंधन' शब्द का उपयोग ज्ञान की शाखा के रूप में भी होता है जिसमें प्रबंधन के सिद्धान्तों का एक विषय के रूप में अध्ययन होता है।

(iv) **हेरोल्ड कूल्टज्** के अनुसार, 'प्रबंधन औपचारिक रूप से संगठित समूहों में अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर कार्य करने तथा करवाने की कला है।''

(v) **जार्ज आर. टेरी** के अनुसार, ''प्रबंधन एक विशेष प्रक्रिया है जिसमें नियोजन, संगठन, उत्प्रेरण एवं नियंत्रण सम्मिलित है। इनमें से प्रत्येक में विज्ञान एवं कला दोनों का प्रयोग करते हुए पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए इनका अनुसरण किया जाता है''।

(v) **एफ.डब्लयु टेलर**, ''प्रबंधन यह जानने की कला है कि आप क्या करवाना चाहते हैं और उसके बाद यह देखना कि वे इसे सर्वोत्तम एवं मितव्ययिता वाली विधि से करें''।

प्रबंधन के तत्व

उपरोक्त परिभाषाओं से हम प्रबंधन के तत्वों को इस प्रकार समझ सकते हैं :–

(i) **संगठनात्मक क्रियाएँ :**

प्रबंधन एक क्रियाओं का समूह है। प्रबंधन क्रियाओं और व्यक्तित्व के बीच में समन्वय स्थापित करता है।

(ii) **उद्देश्य (लक्ष्य गठन) :–**

प्रबंधन के कुछ परिभाषित लक्ष्य हैं। लक्ष्य कार्यों और व्यक्ति की प्रतिक्रिया पर विचार स्थापित करते हैं। प्रबन्धन की क्रिया आरंभ हाने से पहले लक्ष्य का गठन जरुरी है।

(iii) **लक्ष्य सिद्धि और मूल्यांकन** :

प्रबंधन लक्ष्य उपलब्धि की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करता है।

(iv) **संगठनात्मक अस्तित्व** :

प्रबंधन इस प्रतियोगी दुनिया में संगठन के अस्तित्व को बनाने और मार्गदर्शन करने के लिए कुशलता से उन्हें उपलब्ध संसाधनों का सही उपयोग करने की उम्मीद करता है। पूर्वानुमान और संगठनात्मक अस्तित्व के लिए प्रबन्धन एक महत्वपूर्ण घटक हैं। संगठन को बदलने के लिए और अपनाने के लिए भी प्रशासन की आवश्यकता पड़ती है।

(v) **कार्यान्वयन :**

कार्यान्वयन प्रबंधन का मार्ग है। नीतियों और कार्यक्रमों को प्रबंधन द्वारा लागू किया जाता है।

प्रबंधन की विषेशताएँ

प्रबंधन की विषेशताएँ निम्नलिखित हैं :–

(i) **यह एक सार्वभौमिक क्रिया है**:

प्रत्येक व्यावसायिक (औद्योगिक उपक्रम) तथा गैर व्यावसायिक संस्था (शिक्षण संस्थाएं, सरकारी कार्यालय, खेल का मैदान, कृषि–कार्य, सेना, क्लब एवं अन्य सामाजिक संस्थान) को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु मानवीय तथा भौतिक साधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग करने के लिए नियोजन, संगठन, नियुक्तियाँ, निर्देशन, नियंत्रण आदि की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार सभी संस्थाओं में प्रबंधन प्रक्रिया एक ही प्रकार से संचालित की जाती है और संचालन में लगभग एक समान सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है।

(ii) **यह एक गतिशील व्यवस्था है**:–

वातावरण में लगातार परिवर्तन होने के कारण अनेक पुराने सिद्धान्तों का स्थान नये सिद्धान्त ले चुके हैं। अभी भी सामाजिक, तकनीकी, राजनैतिक व औद्योगिक वातावरण में हो रहे परिवर्तनों के अनुसार नये सिद्धान्तों की खोज जारी है और किसी सिद्धान्त को अन्तिम नहीं माना जा सकता। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि प्रबंधन में कुछ भी स्थाई नहीं है। परिवर्तनों के विपरीत प्रभाव के डर से प्रबंधन इनका पहले ही अनुमान लगा लेते हैं और अपनी संस्था की नीतियों व योजनाओं को ऐसा मोड़ देते हैं कि कल जब भविष्य में ये परिवर्तित होंगे तब उनकी संस्था के परिणामों को प्रभावित नहीं करेंगे। कई बार प्रबंधन व्यावसायिक वातावरण को अपने पक्ष में बदलने का प्रयास करते हैं।

(iii) **यह एक सामाजिक विज्ञान है**:–

सामाजिक विज्ञान का अभिप्राय ऐसे विज्ञान से है जिसका संबंध प्राणियों से होता है। अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि सामाजिक विज्ञानों की तरह प्रबंधन भी एक सामाजिक विज्ञान है। इसका संबंध भी सामाजिक प्राणी के रूप में 'मनुष्य' से है, जो संवेदनशील, विवकेशील एवं गतिशील प्राणी है तथा निर्जीव पदार्थों की तरह पूर्णतया नियमबद्ध नहीं किया जा सकता है। मनुष्य को आवश्यकतानुसार अपने व्यवहार में

परिवर्तन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। यही कारण है कि सामाजिक शास्त्रों का सिद्धान्त, भौतिक शास्त्रों के सिद्धान्तों की तरह कठोर नहीं हो सकते। अतः प्रबंधन इन सिद्धान्तों को अपने मार्ग–दर्शक के रूप में स्वीकार करते हैं लेकिन अन्तिम निर्णय लेने के लिए उन्हें अन्य बातों को ध्यान में रखना पड़ता है।

(iv) **यह विभिन्न दृष्टियों वाला ज्ञान है** :–

प्रबंधन एक विभिन्न दृष्टियों और उपागमों वाला ज्ञान है। इसका अभिप्राय है कि यद्यपि प्रबंधन एक विशेष शास्त्र के रूप में विकसित हो चुका है लेकिन यह अनेक शास्त्रों का ऋणी है जिससे इसने ज्ञान और धारणाएँ ग्रहण की हैं। प्रबंधनशास्त्र को विकसित करने में जिन दूसरे शास्त्रों का सहारा लिया गया है उनमें मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र, सांख्यिकी, गणित आदि प्रमुख है। प्रबंधनशास्त्र ने इन विभिन्न शास्त्रों के विचार एवं धारणाओं को एकत्र करके विभिन्न संस्थाओं के प्रबंधनके उद्देश्य से अपनी नई धारणाएँ एवं सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है।

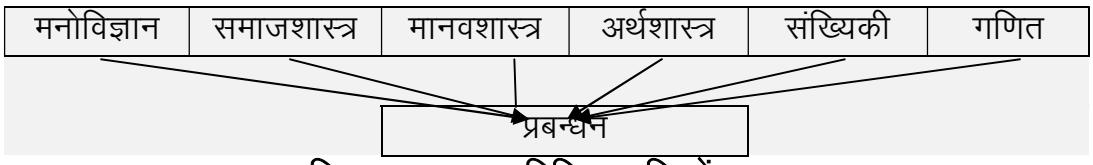

चित्र – 1.1 एक विभिन्न दृष्टियों वाला

(v) **यह विज्ञान और कला दोनों हैं** :–

प्रबंधन में कला तथा विज्ञान दोनों की विशेषताएँ पाई जाती हैं। कला का अभिप्राय किसी कार्य को व्यवस्थित ढंग से करने की एक पद्धति से है। इस संदर्भ में प्रबंधन को कला इसलिए कहा जाता है क्योंकि प्रबंधन प्रक्रिया में प्रबंधन को मानव समूह के साथ कार्य करना होता है और एक कुशल प्रबंधन हर कार्य को व्यवस्थित या क्रमबद्ध तरीके से करने का प्रयास करता है, जैसे–मानवीय एवं भौतिक साधनों में समन्वय स्थापित करना। दूसरी ओर प्रबंधन को विज्ञान इसलिए कहा जाता है क्योंकि विज्ञान की ही भांति इसके भी निश्चित सिद्धान्त एवं नियम हैं जो प्रायः सामान्य रूप से लागू होते हैं। उदाहरण के लिए कार्य–विभाजन एवं विशिष्टीकरण का सिद्धान्त सभी क्षेत्रों में लागू होते हैं। इस सिद्धांत का अभिप्राय है कि यदि कार्य–विभाजन योग्यता एवं रुचि के अनुसार किया जाये तथा एक व्यक्ति को बार–बार एक ही कार्य सौंपा जाये तो उसकी कार्यकुशलता में वृद्धि होगी। अतः प्रबंधन कला एवं विज्ञान दोनों ही है।

(vi) **यह एक अदृश्य शक्ति है** :–

प्रबंधन एक ऐसी शक्ति है जिसको प्रत्यक्ष या मूर्त रूप में नहीं देखा जा सकता, केवल संस्था की सफलता के मूल्यांकन के आधार पर इसकी अनुभूति की जा सकती है। उदाहरण के लिए कोई संस्था उत्तरोतर उन्नति की ओर अग्रसर है तो समझा जायेगा कि प्रबंधन अच्छा है। इसके विपरीत यदि कोई संस्था अवनति की ओर जा

रही है तो प्रबंधन की असफलता का संकेत मिलता है। अतः प्रबंधन को अमूर्त, अदृश्य या अप्रत्यक्ष शक्ति की संज्ञा दी जा सकती है।

(vii) **यह एक उद्देश्य परक प्रक्रिया है** :–

प्रत्येक संगठन की स्थापना किसी न किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु की जाती है। प्रबंधन एक ऐसा माध्यम/शक्ति है जो इन उद्देश्यों को सरल बना देता है। प्रबंधन अपने विशेष ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर भावी घटनाओं का पूर्वानुमान लगाता है व योजनाएँ बनाता है। वह अधीनस्थों की कार्य–प्रगति पर लगातार नज़र रखता है और उनका मार्गदर्शन करता है। समय–समय पर उन्हें अभिप्रेरित करता है और अन्ततः संगठन के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 प्रबंध से आप क्या समझते हैं?
प्र.2 प्रबंध के किन्हीं तीन तत्वों के नाम बताओ
प्र.3 प्रबंध की कोई तीन विशेषताएँ बताइये।

1.3 प्रबंधन के कार्य एवं प्रकृति

प्रबंधन के कार्य

प्रबंधन को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है। प्रबंधन प्रक्रिया के अर्न्तगत (नियोजन, संगठन, नियुक्तियाँ, निर्देशन एवं नियंत्रण) एक दूसरे से संबंधित क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। इन क्रियाओं को ही प्रबंधन के कार्यों या तत्वों के नाम से जाना जाता है। प्रबंध के कार्य निम्नलिखित हैं:–

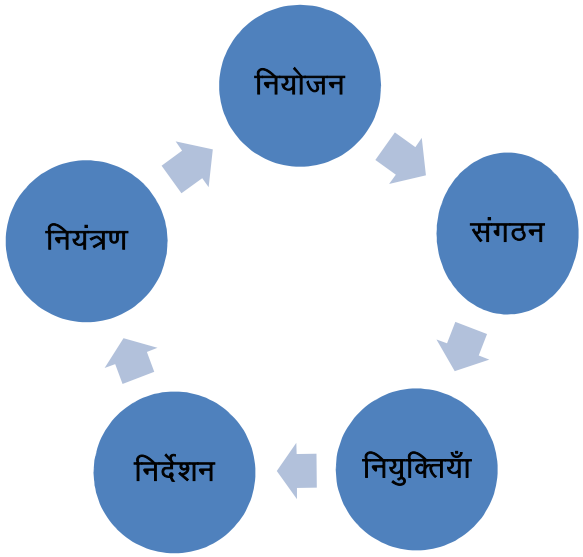

चित्र – 1.2 प्रबंध के कार्य

(i) **नियोजन**

इसका अभिप्राय कुछ करने से पहले सोचना है। अन्य शब्दों में निर्धारित परिणाम प्राप्त करने के लिए भावी कार्यक्रम की रुपरेखा तैयार करना, नियोजन कहलाता है। नियोजन के अर्न्तगत यह निश्चित किया जाता है कि क्या करना है, कैसे करना है, कब करना है तथा किस व्यक्ति द्वारा किया जाना है। यदि कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व इन सभी बातों पर गहन सोच–विचार न किया जाए तो व्यवसाय के उद्देश्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

नियोजन एक लम्बी प्रक्रिया है जिसे पूरा करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैं–

- उद्देश्य निर्धारित करना
- पूर्वानुमान लगाना
- विकल्प का चयन करना
- समीक्षा करना
- सीमाएँ विकसित करना
- योजना को लागू करना।

(ii) **संगठन**

इसका अभिप्राय सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न अंगों में मैत्रीपूर्ण समायोजन करना है। प्रबंधन के प्रथम कार्य 'नियोजन' को कार्यरूप देने के लिए कार्य–भूमिकाओं का एक ढांचा बनाना तथा कायम रखना जरुरी है। कार्य–भूमिकाओं के इस ढांचे का तैयार करना ही संगठन कहलाता है। नियोजन तो किसी विचार को लिख देना मात्र ही है, लेकिन इस विचार को वास्तविकता में बदलने के लिए समूह की आवश्यकता होती है तथा मानव समूह को एक व्यवस्था में बांधने के लिए संगठन की आवश्यकता होती है। इसके अर्न्तगत सम्पूर्ण कार्य को विभिन्न छोटे–छोटे कार्यों में बांटना इन कार्यों को विशेष पदों में जोड़ना, विभिन्न पदों को विभाग के रूप में एकीकृत करना, विभिन्न पदों पर नियुक्त होने वाले कर्मचारियों के अधिकार एवं दायित्व स्पष्ट करना तथा विभिन्न पदों के मध्य संबंधों की स्पष्ट व्याख्या करना सम्मिलित है।

प्रबंधन के संगठन कार्य को पूरा करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैं:–

- कार्य की पहचान तथा विभाजन
- विभागीकरण
- कार्य सौंपना
- सूचनाएँ प्रेषित करने के लिए संबंध स्थापित करना

(iii) **नियुक्तिकरण**

इसका अभिप्राय पदों को लोगों से भरना और उन्हें भरे रहने देना है। नियोजन द्वारा विचारों का लिखित रूप दिया जाता है। संगठन इन विचारों को वास्तविकता में

बदलने के उद्देश्य से विविध पदों का स्वरूप तैयार करता है तथा नियुक्तिकरण के अर्न्तगत इन पदों को व्यक्तियों से भरा जाता है ताकि कार्यों का निष्पादन किया जा सके। इस प्रकार नियुक्तिकरण (स्टाफिंग) प्रक्रिया द्वारा संगठन के सभी स्तरों पर उपयुक्त, योग्य एवं शिक्षित अधिकारी एवं कर्मचारी उपलब्ध कराये जाते हैं। क्योंकि संगठन की सफलता प्रत्येक व्यक्ति द्वारा कुशलतापूर्वक किए गए कार्य–निष्पादन पर आधारित है इसलिए प्रबंधन के स्टाफिंग कार्य का महत्व और बढ़ गया है। नियुक्तिकरण कार्य को पूरा करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैं :

- मानव शक्ति आवश्यकताओं का आकलन
- भर्ती
- चयन
- कार्य पर लगाना
- प्रशिक्षण एवं विकास।

(iv) **निर्देशन**

इसका अभिप्राय संगठन में मानव संसाधन को निर्देश देना, उनका मार्गदर्शन करना, संदेशवाहन करना व उसे अभिप्रेरित करना है। निर्देशन में निम्नलिखित चार क्रियाओं को शामिल किया गया है:–

- **पर्यवेक्षण** :

इसका अभिप्राय अपने अधीनस्थों के दिन–प्रतिदिन के काम की प्रगति की देखभाल करने एवं उनका मार्गदर्शन करने से है। पर्यवेक्षण, निर्देशन कार्य का एक महत्वपूर्ण तत्व है। पर्यवेक्षण में एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि यह अधिकारी एवं अधीनस्थ में आमने–सामने होता है।

- **सन्देशवाहन** :

इसका अभिप्राय तथ्यों, विचारों, भावनाओं आदि को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक हस्तांतरण करने व समझने की कला से है। एक प्रबंधक को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को लगातार यह बताना पड़ता है कि उन्हें क्या करना है तथा कब करना है तथा उनकी प्रतिक्रियाओं को जानना भी जरुरी है। यह सब करने के लिए प्रभावपूर्ण संचार व्यवस्था का विकास किया जाना आवश्यक है। संदेशवाहन आपसी समझ को बढ़ाकर सहयोग की भावना पैदा करना है जिससे संगठन में समन्वय का वातावरण विकसित होता है।

- **नेतृत्व** :

इसका अभिप्राय दूसरों को इस ढंग से प्रभावित करने से है ताकि वे वही करें जो नेतृत्व चाहे। निर्देशन में नेतृत्व की मुख्य भूमिका रहती है। केवल नेतृत्व गुण के माध्यम से ही एक प्रबंधक अपने अधीनस्थों में विश्वास पैदा कर सकता है तथा उसमें उत्साह भर सकता है।

- **अभिप्रेरणा** :

  इसका अभिप्राय उस प्रक्रिया से जो वांछित उद्देश्य प्राप्ति हेतु लोगों में उत्तेजना पैदा करता है।

(v) **नियंत्रण**

इसका अभिप्राय वास्तविक परिणामों को इच्छित परिणामों के नज़दीक लाना है। इसके अर्न्तगत प्रबंधक यह देखते हैं कि कार्य निश्चित योजना के अनुसार हो रहा है या नहीं। वास्तविक परिणामों का पूर्व–निर्धारित प्रमापों के साथ मिलान करके विचलनों का पता लगाया जाता है। इसे बाद नकारात्मक विचलनों के लिए सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है ताकि प्राप्त परिणामों व इच्छित परिणामों के अन्तर को न्यूनतम किया जा सके। अतः नियंत्रण प्रक्रिया के लागू होने से कार्य की प्रगति में आने वाली सभी बाधाएँ दूर हो जाती है और सभी व्यक्तियों के प्रयास इच्छित दिशा में अग्रसर होने लगते हैं। निष्कर्ष के रूप में प्रक्रिया के चार मुख्य तत्व हैं:

- प्रमापों का निर्धारण
- वास्तविक प्रगति का मापन
- वास्तविक प्रगति की पूर्व निर्धारित प्रमापों से तुलना
- सुधारात्मक कार्यवाही करना।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.4	'कुछ करने से पहले सोचना,' यह प्रबंधका कौन सा कार्य है?
प्र.5	संगठन और नियुक्तियाँ में क्या अंतर है?
प्र.6	क्या नियंत्रण एवं नियोजन जुड़े हुए हैं?

प्रबंधन की प्रकृति

प्रबंधन की प्रकृति के संबंध में एक विवाद यह है कि प्रबंधन विज्ञान है अथवा कला। कुछ प्रबंधन विशेषज्ञ इसे केवल विज्ञान मानते हैं तो कुछ इसे कला की श्रेणी में रखते हैं। यह विवाद बहुत पुराना एवं भ्रमपूर्ण है। प्रबंधन की प्रकृति के इस तथ्य को समझने के लिए सर्वप्रथम विज्ञान एवं कला का अर्थ स्पष्ट कर लेना आवश्यक है।

प्रबंधन विज्ञान के रूप में :

विज्ञान वह क्रमबद्ध ज्ञान समूह है जो मनुष्य द्वारा अवलोकन एवं प्रयोगों के आधार पर प्राप्त किया जाता है और जिसको प्रमाणित करना सम्भव है। विज्ञान की मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैः

- **जी.आर.टेरी**. के शब्दों में 'विज्ञान किसी तथ्य, विषय या अध्ययन के उद्देश्य का सामान्य सत्यों की जानकारी के सन्दर्भ में संग्रहीत एवं स्वीकृत क्रमबद्ध ज्ञान है'।

➢ **केन्ज** के अनुसारः 'विज्ञान वह क्रमबद्ध ज्ञान–समूह है जो कारण और परिणाम के बीच में संबंध स्थापित करता है'।

विज्ञान की विशेषताएँ

– व्यवस्थित ज्ञान समूह
– तथ्यों के संग्रह, विश्लेषण एवं प्रयोगों पर आधारित
– सार्वभौमिक प्रयोग
– कारण एवं परिणाम
– परिणामों की वैधता की जांच एवं पूर्वानुमान सम्भव

प्रबंधन में विज्ञान की उपरोक्त सभी विशेषताएँ हैं। किंतु, क्योंकि प्रबंधन एक सामाजिक क्रिया है और मानव संसाधन से चलता है, कारण एवं परिणाम की विशेषता इस पर लागू नहीं होती। अतः प्रबंध पूर्णतः विज्ञान नहीं है।

प्रबंध एक कला के रूप में :

कला का अभिप्राय ज्ञान के सैद्धान्तिक प्रयोग से है। किसी कार्य को सर्वोत्तम विधि से करना ही कला है। कला किसी कार्य को करने की विधि निश्चित करती है और यह बताती है कि उद्देश्यों को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। कला एक व्यक्तिगत प्रक्रिया है क्योंकि प्रत्येक कलाकार का काम करने का अपना अलग तरीका होता है। **जी.आर.टेरी**. के अनुसार, ''चातुर्य के प्रयोग से इच्छित परिणाम प्राप्त करना ही कला है।''

कला की विषेशताएँ

– व्यक्तिगत कुशलता
– व्यावहारिक ज्ञान
– सार्थक परिणाम प्राप्ति
– अभ्यास द्वारा विकास
– रचनात्मक शक्ति।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि प्रबंधन विज्ञान और कला दोनों हैं।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.7	क्या प्रबंध सम्पूर्ण विज्ञान है?
प्र.8	क्या प्रबंध कला है?

1.4 प्रबंधन के सिद्धांत

प्रबंधन के सिद्धान्त

आज व्यवसाय ने विस्तृत रूप धारण कर लिया है जिसके कारण दिन– प्रतिदिन के कार्यों में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं और उपक्रम के प्रबन्धकों को इन समस्याओं का समाधान करना पड़ता है। समस्याओं का समाधान करने एवं व्यवसाय को कुशलतापूर्वक तथा ठीक तरीके से चलाने के लिए प्रबन्धकों को मार्गदर्शन की जरुरत होती है। प्रबंधन के सिद्धान्त प्रबन्धकों का मार्ग–दर्शन करते हैं। प्रबंधन के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने से पहले सिद्धान्त शब्द का अर्थ समझना जरुरी है। विभिन्न विद्वानों ने सिद्धान्त को निम्न प्रकार से पारिभाषित किया है :

(i) **जी.आर.टेरी** के अनुसार, ''सिद्धान्त एक आधारभूत कथन अथवा सत्य है जो विचार या कार्य का मार्ग–दर्शन करता है''।

(ii) **ऐडविन. वी. फिलिप्पो** के अनुसार, ''सिद्धान्त एक आधारभूत सत्य होता है और सामान्यतः यह कारण एवं परिणाम में सम्बन्ध की व्याख्या करता है''।

(iii) **कूण्टज़ तथा डोनेल** ने प्रबन्धकीय सिद्धान्तों की परिभाषा इस प्रकार दी है, ''प्रबन्धकीय सिद्धान्त सामान्य वैधता के आधारभूत सत्य हैं जो प्रबन्धकीय क्रियाओं के परिणामों का पूर्वानुमान लगाने की क्षमता रखते हैं।''

सिद्धान्त की परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि ये किसी विषय के ऐसे आधारभूत सत्य के रूप में होते हैं जो कारण एवं परिणाम के संबंध को व्यक्त करते हैं और इनको तैयार करने में विशेषज्ञों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

प्रबंधन के सिद्धान्तों की प्रकृति

प्रबंधन के सिद्धान्तों की प्रकृति निम्न तथ्यों से स्पष्ट होती है :

(i) **सार्वभौमिक अनुकूलता**: सार्वभौमिकता का अभिप्राय उस सत्य से है जो सभी क्षेत्रों (व्यावसायिक एवं गैर–व्यावसायिक) में समान रूप से लागू होता है और प्रबंधन के सिद्धान्तों में यह गुण विद्यमान है। प्रत्येक व्यावसायिक (औद्योगिक उपक्रम) तथा गैर–व्यावसायिक संस्था (शिक्षण संस्थाएं, खेल का मैदान, कृषि –फार्म, सेना, क्लब एवं अन्य सामाजिक संस्थान) सभी को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु लगभग एक समान सिद्धान्तों को अपनाना होता है।

(ii) **सामान्य मार्ग–निर्देशन**: प्रबंधन के सिद्धान्त भौतिक एवं रसायन शास्त्रों के सिद्धान्तों की भांति कठोर नहीं है। भौतिक एवं रसायन शास्त्रों के सिद्धान्तों को जैसा लिखा गया है वे उसी भांति पूर्णरूप से खरे उतरते हैं, जबकि प्रबंधन के सिद्धान्त सामान्य मार्ग–निर्देशन के रूप में होते हैं और इनको कठोरता से लागू नहीं किया जा सकता।

(iii) **अभ्यास एंव प्रयोगों द्वारा निर्धारण** : प्रबंधन के सिद्धान्त पेशेवर लोगों के सामने उपस्थित हुई अनेक समस्याओं के परिणाम हैं। पहले समस्याएँ उत्पन्न हुई, फिर

उनके समाधान का प्रयास किया गया तथा इसी प्रयास में अनेक शोधकार्य सम्पन्न हुए और अंततः समाधान ढूंढ लिए गए। इस प्रकार अभ्यास द्वारा ढूंढे गए समाधानों को ही हम प्रबंधन के सिद्धान्त के रूप में जानते हैं।

(iv) **लोचशीलता** : प्रबंधन के सिद्धान्त जो आज उपलब्ध हैं वे अन्तिम सत्य के रूप में नहीं हैं। जैसे–जैसे राजनैतिक व सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं और नई– नई समस्याएँ सामने आ रही हैं तो पुराने सिद्धान्तों में सुधार किए जा रहे हैं और नए सिद्धान्तों का जन्म हो रहा है। अतः प्रबंधन के सिद्धान्त गतिशील प्रकृति के हैं अर्थात उन्हें स्थाई नहीं कहा जा सकता।

(v) **मुख्यतः व्यवहारात्मक**ः प्रबंधन के सिद्धान्तों का सीधा संबंध मानवीय व्यवहार से है। प्रबंधन के अंतर्गत मुख्य रूप से मानव का ही प्रबंधन किया जाता है और मानव एक सामाजिक प्राणी है जिसकी अपनी इच्छाएँ, स्वभाव व अपेक्षाएँ होती हैं। अर्थात उसे किसी बंधन में नहीं बांधा जा सकता है। यही कारण है कि प्रबंधन के सिद्धान्त मानवीय व्यवहार से प्रभावित होते हैं और कई बार यही मानवीय व्यवहार प्रबंधन के सिद्धान्तों के बीच में अवरोध बन कर खड़ा हो जाता है। उदाहरण के लिए कार्य–विभाजन का सिद्धान्त कुशलता वृद्धि के लिए अपनाया जाता है लेकिन एक ही काम को बार–बार करते रहने से व्यक्ति ऊबने लगता है (यही मानवीय व्यवहार है) और कार्यकुशलता कम हो जाती है। अतः प्रबंधन के सिद्धान्तों के सीमित उपयोग होने की प्रकृति है।

(vi) **कारण व परिणाम संबंध** : प्रबंधन के सिद्धान्त कारण व परिणाम में संबंध स्थापित करते हैं। अर्थात ये स्पष्ट करते हैं कि यदि किसी विशेष परिस्थिति में एक विशेष ढंग से काम किया जाए तो उसके ये परिणाम होंगे। उदाहरण के लिए, यदि कार्य–विभाजन के सिद्धान्त के अनुसार, सम्पूर्ण कार्य को अनेक भागों में बांट दिया जाए और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रुचि एवं योग्यता के अनुसार कार्य सौंपा जाए तो कार्यकुशलता में वृद्धि होगी। यहां काम का बंटवारा कारण है और कार्यकुशलता में वृद्धि परिणाम। प्रबंधन के अन्य सिद्धान्त भी इसी प्रकार कारण व परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

(vii) **अनिश्चित** : प्रबंधन के सिद्धान्त निश्चित नहीं हैं। इन पर परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। अतः परिस्थितियों के अनुसार ही इन्हें लागू करने अथवा न करने का निर्णय लिया जाता है। उदाहरण के लिए, कार्य–विभाजन के सिद्धान्त के अनुसार एक कर्मचारी को कुल काम का एक विशेष हिस्सा ही बार –बार सौंपना चाहिए ताकि उसकी कुशलता में वृद्धि हो। लेकिन यदि एक ही काम को बार–बार करने में वह तंग आ चुका है तो इस सिद्धान्त को लागू करने से लाभ नहीं होता। अतः इसमें परिवर्तन की आवश्यकता होगी।

प्रबंधन के आधारभूत सिद्धान्त

अपने–अपने अनुभव एवं शोधकार्यों के आधार पर विभिन्न विशेषज्ञों ने प्रबंधन के अलग–अलग सिद्धान्तों की व्याख्या की है। फ्रांस के **हेनरी फेयोल** ने अपनी पुस्तक '**जनरल एण्ड इन्डस्ट्रीयल मैनेजमैंट**' में प्रबंधन के 14 सिद्धान्तों का वर्णन किया है। उसने प्रबंधन के सिद्धान्तों तथा तत्वों में अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रबंधन के सिद्धान्त आधारभूत सत्य हैं और कारण एवं परिणाम में संबंध स्थापित करते हैं जबकि प्रबंधन के तत्व इसके कार्यों की ओर संकेत करते हैं। प्रबंधन सिद्धान्तों को प्रस्तुत करते हुए **फेयोल** ने दो बातों पर अधिक जोर दिया है। प्रथम, प्रबंधन के सिद्धान्तों की सूची बहुत बड़ी नहीं होनी चाहिए, बल्कि सुझावात्मक होनी चाहिए तथा केवल ऐसे सिद्धान्तों की व्याख्या की जानी चाहिए जो अधिकतर परिस्थितियों में लागू होते हों। द्वितीय, प्रबंधन के सिद्धान्त कठोर नहीं बल्कि लचीले होने चाहिए, अर्थात आवश्यकता पड़ने पर उनमें आसानी से परिवर्तन किया जा सके। **फेयोल** द्वारा प्रमुख 14 सिद्धान्त निम्न हैं :

(i) **कार्य–विभाजनः** फेयोल का यह सिद्धान्त बताता है कि यथासम्भव संपूर्ण कार्य को विभिन्न भागों में बांट देना चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता एवं रुचि के अनुसार कार्य का एक भाग ही सौंपा जाना चाहिए, न कि एक व्यक्ति को संपूर्ण कार्य। जब एक व्यक्ति बार–बार संपूर्ण कार्य के एक हिस्से को करेगा तो धीरे–धीरे वह उस कार्य का विषेशज्ञ बन जाएगा और परिणाम स्वरूप विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होंगे।

(ii) **अधिकार एवं उत्तरदायित्वः** इस सिद्धान्त के अनुसार, अधिकार एवं उत्तरदायित्व साथ–साथ चलते हैं। अधिकार एवं उत्तरदायित्व के साथ–साथ चलने का अभिप्राय यह है कि जब किसी व्यक्ति को कोई भी कार्य सौंपा जाता है और हम उस कार्य के परिणाम के प्रति उसको उत्तरदायी भी ठहराना चाहते हैं, तो ऐसा तभी संभव है यदि उत्तरदायित्व को निभाने के लिए पर्याप्त अधिकार भी उसे सौंपे गए हों। अधिकारों के अभाव में किसी व्यक्ति का कार्य के प्रति उत्तरदायी ठहराना उचित नहीं होगा। **फेयोल** के शब्दों में, ''अधिकारों का परिणाम ही उत्तरदायित्व है। यह अधिकार का स्वाभाविक परिणाम और आवश्यक रूप में अधिकार का ही दूसरा पहलू है तथा जब भी अधिकारों का प्रयोग किया जाता है, उत्तरदायित्व का जन्म स्वतः ही हो जाता है''।

(iii) **अनुशासन** : किसी भी कार्य का सफलतापूर्वक निष्पादन करने के लिए अनुशासन होना आवश्यक है। **फेयोल** के अनुसार, अनुशासन से अभिप्राय आज्ञाकारिता, अधिकारों के प्रति श्रद्धा तथा निर्धारित नियमों का पालन करने से है। सभी स्तरों पर अच्छी पर्यवेक्षण व्यवस्था प्रदान करके, नियमों की स्पष्ट व्याख्या करके एवं पुरस्कार एवं दण्ड पद्धति को लागू करके अनुशासन स्थापित किया जा सकता है। प्रबंधन स्वयं को अनुशासित करके अधीनस्थों के लिए एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं।

(iv) **आदेश की एकता** : प्रबंधन के इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक कर्मचारी को एक समय पर केवल एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त होने चाहिए और वह कर्मचारी उसी अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। यदि एक व्यक्ति को आदेश देने वाले कई अधिकारी होंगे तो वह यह समझ नहीं पायेगा कि किसके आदेश को प्राथमिकता दे और इस प्रकार अपने–आप को भ्रमित स्थिति में पाता है। ऐसी व्यवस्था के चलते अधीनस्थों की कार्यकुशलता कम होती है। दूसरी ओर, एक से अधिक अधिकारी होने पर प्रत्येक चाहेगा कि उसके आदेश का पालन हो। ऐसी स्थिती में उनमें झगड़े की संभावना रहती है। परिणामतः उनकी कार्यकुशलता में भी कमी आती है।

आदेश की एकता के सिद्धान्त को निम्न चित्र में स्पष्ट किया गया है:

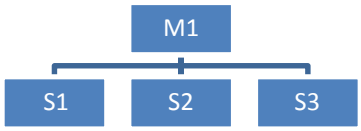

चित्र 1.3 आदेश की एकता

प्रथम चित्र में S_1,S_2 व S_3 तीनों अधीनस्थों का एक ही प्रबंधन M_1 है। S_1 को केवल M_1 से आदेश प्राप्त होता है और इसी तरह S_2 व S_3 को भी। यहां आदेश की एकता के सिद्धान्त का पालन किया जा रहा है। अतः यह सही दृष्टिकोण है।

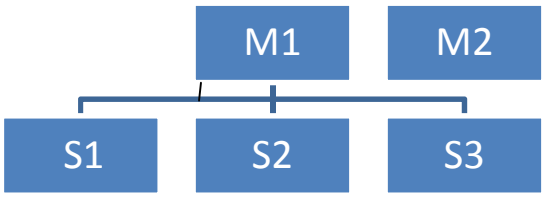

चित्र 1.3 आदेश की एकता की अवहेलना

द्वितिय चित्र में S_1,S_2 व S_3 तीनों अधीनस्थों को आदेश देने वाले M_1व M_2 दो प्रबंधन हैं। जैसे S_1 को एक ही समय पर M_1 व M_2 दोनों से आदेश प्राप्त होते हैं। (यही स्थिति S_2 व S_3 की भी है) वह समझ नहीं पाएगा कि किसके आदेश को प्राथमिकता दे। दोनों ही प्रबंधन चाहेंगे कि पहले उसके आदेश का पालन हो। इसी बात को लेकर उनमें भी मनमुटाव होगा। यहां आदेश की एकता के सिद्धान्त की अवहेलना हो रही है। अतः यह एक गलत दृष्टिकोण है।

धनात्मक प्रभाव

- अधीनस्थों के लिए भ्रमित स्थिति पैदा नहीं होती।
- अधीनस्थों की कार्यकुशलता में वृद्धि।
- अधिकारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि।
- उत्तरदायित्व निर्धारण में आसानी।

- सौहार्दपूर्ण वातावरण।

टूल बाक्स – 1
आदेश की एकता एवं निर्देश की एकता

इस संबंध में फेयोल ने कहा है कि, ''एक संगठन के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए निर्देश की एकता महत्वपूर्ण है जबकि कर्मचारियों की कुशलता को बढ़ाने के लिए आदेश की एकता आवश्यक है''।

5. **निर्देश की तुलना** : इस सिद्धान्त का अभिप्राय है कि संगठन में सभी कार्यों का लक्ष्य एक ही होना चाहिए। सभी क्रियाएं एक ही उद्देश्य को पाने के लिए हों।

यहां आदेश की एकता तथा निदेश की एकता में अंतर स्पष्ट करना जरुरी है। आदेश की एकता से अभिप्राय यह है कि एक कर्मचारी को आदेश देने वाला एक समय पर एक ही व्यक्ति होना चाहिए तथा निर्देश की एकता का अर्थ है कि समान उद्देश्यों वाली सभी क्रियाओं पर नियंत्रण करने वाला एक ही व्यक्ति होना चाहिए। इस संबंध में फेयोल ने कहा है, ''एक संगठन के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए आदेश की एकता आवश्यक है''।

धनात्मक प्रभाव

- एक अधिकारी के एक जैसी क्रियाओं से संबंधित होने के कारण विशिष्टीकरण से लाभ।
- संगठन की कार्यकुशलता में वृद्धि।
- उदेश्य प्राप्ति में आसानी।
- क्रियाओं में एकरूपता से समन्वय में मदद।

आदेश की एकता तथा निर्देश की एकता में अंतर

अंतर का आधार	आदेश की एकता	निर्देश की एकता
1. अर्थ	इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक कर्मचारी को एक समय पर केवल एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त होने चाहिए और वह कर्मचारी उसी अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।	इस सिद्धान्त के अनुसार, समान उद्देश्य वाली विभिन्न क्रियाएँ एक ही अध्यक्ष के अधीन पूरी की जानी चाहिए और उनके लिए एक ही योजना बनाई जानी चाहिए।
2. उदेश्य	इसका उद्देश्य दोहरी अधीनस्थता को रोकना है	इसका उद्देश्य क्रियाओं के अनदेखा होने को रोकना है।

3. प्रभाव	इससे कर्मचारी व्यक्तिगत रूप से प्रभावित होते हैं।	इससे पूरा संगठन प्रभावित होता है।

(6) **व्यक्तिगत हित सामान्य हित के अधीन**: इस सिद्धान्त को 'व्यक्तिगत हित पर सामान्य हित की प्राथमिकता' का नाम दिया जा सकता है। इस दृष्टि सामान्य हित अथवा संस्था का हित ही सर्वोपरि है। यदि सामान्य हित व व्यक्तिगत हित को प्राथमिकता के क्रम में रखने के लिए कहा जाए तो निश्चित रूप से सामान्य हित को ऊपर रखा जाएगा : जैसे– एक प्रबंधन को काई भी निर्णय लेने से व्यक्तिगत रूप से हानि होती है लेकिन संस्था को भारी लाभ–तो संस्था के लाभ को प्राथमिकता देते हुए निर्णय लेना चाहिए। इसके विपरीत, यदि किसी निर्णय से प्रबंधन को व्यक्तिगत लाभ होता है लेकिन संस्था को भारी हानि–तो ऐसा निर्णय नहीं लेना चाहिए।

उदाहरण के लिए, एक कम्पिनी के क्रय प्रबंधन को 100 टन कच्चा माल क्रय करना है। बाज़ार में अन्य पूर्तिकर्ताओं के साथ ही उसका बेटा भी उस कच्चे माल की पूर्ति करता है। प्रबंधन कच्चे माल को अपने बेटे की फर्म से बाजार भाव से अधिक पर क्रय कर लेता है। इससे प्रबंधन को व्यक्तिगत रूप से लाभ होगा लेकिन कम्पिनी को भारी हानि। यह अवांछनीय स्थिति है।

धनात्मक प्रभाव

- मानवता का पालन
- संस्था के लाभ से सभी को लाभ।
- संस्थागत उद्देश्यों की प्राप्ति।
- व्यक्तिगत एवं संस्थागत उद्देश्यों में समन्वय।

(7) **कर्मचारियों का पारिश्रमिक** : **फेयोल** का मत है कि कर्मचारियों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक उचित होना चाहिए ताकि कर्मचारियों व मालिकों दोनों को अधिकतम संतुष्टि मिल सके। प्रबंधन का कर्तव्य है कि वह सुनिश्चित करे कि सभी को कार्य के अनुसार पारिश्रमिक दिया जा रहा है। यदि कर्मचारियों को उनकी सेवाओं का उचित प्रतिफल नहीं दिया जाता है तो वे कार्य को अपनी पूरी क्षमता, लगन व ईमानदारी से नहीं करेंगे। परिणामस्वरूप संस्था को असफलता का सामना करना पड़ेगा। उचित प्रतिफल अनेक तत्वों, जैसे–जीवन–स्तर की लागत, श्रमिकों की मांग, उनकी योग्यता आदि पर निर्भर करता है। फेयोल का कहना है कि कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए सामान्य पारिश्रमिक के अतिरिक्त मौद्रिक एवं अमौद्रिक प्रेरकों का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।

उदाहरण के लिए, माना कि महंगाई दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। दूसरे, कम्पनी अच्छे लाभ अर्जित कर रही है। ऐसी स्थिति में बिना मांगे ही कर्मचारियों के पारिश्रमिक में वृद्धि कर देनी चाहिए। ऐसा न करने पर कर्मचारी मौका मिलते ही कम्पनी को छोड़ देंगे। पुनः भर्ती पर खर्च करना पड़ेगा जिससे कम्पनी को हानि होगी।

धनात्मक प्रभाव

- कर्मचारियों के प्रोत्साहन व संतुष्टि में वृद्धि।
- कर्मचारियों में समर्पण भावना का विकास।
- श्रम–परिवर्तन दर में कमी।

(8) **केंद्रीकरण तथा विकेंद्रीकरण** : इस सिद्धान्त के अनुसार, अधिकारियों को चाहिए कि पूर्ण केंद्रीकरण के स्थान पर प्रभावी केंद्रीकरण को अपनाएं। प्रभावपूर्ण केंद्रीकरण से फेयोल का अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि अधिकारों को पूर्ण रूप से केंद्रित कर दिया जाए, बल्कि उनका मानना यह है कि महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार अधिकारियों को अपने पास रखने चाहिएं जबकि दैनिक व कम महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार अधीनस्थों को सौंप देना चाहिए। केंद्रीकरण व विकेंद्रीकरण का अनुपात विभिन्न परिस्थितियों में अलग–अलग हो सकता है। जैसे–एक छोटे व्यवसाय में केंद्रीकरण व बड़े व्यवसाय में विकेंद्रीकरण की मात्रा अधिक रखना लाभदायक रहता है।

उदाहरण के लिए, उद्देश्यों एवं नितीयों के निर्धारण, व्यवसाय के विस्तार, आदि के निर्णय लेने के अधिकार अधिकारियों के पास सुरक्षित रहने चाहिए, दूसरी ओर, कच्चा माल क्रय करने, कर्मचारियों को छुटटी देने, आदि के अधिकार अधीनस्थों को सौंप देने चाहिए।

धनात्मक प्रभाव

- अधिकारियों के कार्यभार में कमी।
- बेहतर एवं शीघ्र निर्णय।
- अधीनस्थों के प्रोत्साहन में वृद्धि।

अवहेलनात्मक प्रभाव

- पूर्ण केंद्रीकरण से अधिकारियों तथा पूर्ण विकेंद्रीकरण से अधीनस्थों के कार्यभार में अनावश्यक वृद्धि।
- पूर्ण केंद्रीकरण में अधिकारियों द्वारा उतावले व गलत निर्णय तथा पूर्ण विकेंद्रीकरण में अधीनस्थों द्वारा कमजोर निर्णय लेना।
- पूर्ण केंद्रीकरण से अधीनस्थों के प्रोत्साहन में कमी।

(9) **सोपान श्रृंखला** : इसका अभिप्राय एक औपचारिक अधिकार रेखा से है जो उच्चतम अधिकारी से निम्नतम अधीनस्थ तक एक सीधी रेखा में चलती है। **फेयोल के विचार** में इस श्रृंखला का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। अर्थात प्रत्येक संदेशवाहनक ऊपर से नीचे व नीचे से ऊपर एक सीधी रेखा में चलना चाहिए। यहां मुख्य शर्त यह है कि संदेशवाहन के दौरान सोपान श्रृंखला की किसी कड़ी अथवा पद को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।

फेयोल की सीढ़ी : फेयोल के इस सिद्धान्त को एक सीढ़ी अथवा दोहरी श्रृंखला द्वारा स्पष्ट किया है।

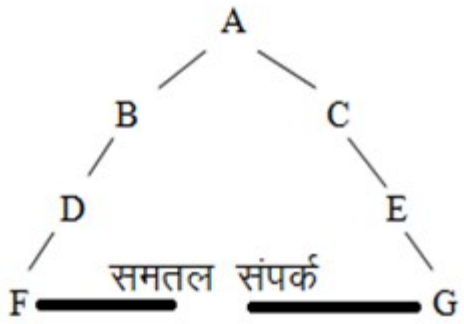

चित्र 1.4 सोपान श्रृंखला

उदाहरण के लिए, चित्र में दर्शाये गए विभिन्न कर्मचारियों में से एफ कर्मचारी से सम्पर्क करना चाहता है। सोपान श्रृंखला सिद्धान्त के अनुसार एफ को पहले ई के माध्यम से ए तक पहुंचना होगा। किंतु यदि एफ को सी से सम्पर्क करना है तो समतल संपर्क के अनुसार वो सीधा संपर्क कर सकता है। यह इसलिए मुमकिन है क्योंकि सी तथा एफ एक हा स्तर पर हैं।

समतल संपर्क : यह सोपान श्रृंखला के सिद्धान्त का अपवाद है। इस अवधारणा का विकास आकस्मिकता के समय समान स्तर के कर्मचारियों द्वारा सीधा संपर्क स्थापित करने के लिए किया गया ताकि संदेश पहुँचने में देरी न हो।

धनात्मक प्रभाव

- सूचनाओं का व्यवस्थित प्रवाह।
- अधिकारों के पूर्ण आदर से बेहतर संबंध।
- समस्याओं का शीघ्र हल।

अवहेलनात्मक प्रभाव

- निकटस्थ अधिकारियों को अनदेखा करने से संबंधों में कटुता।

- सूचनाएं समय पर उपस्थित न होने से समस्याओं में वृद्धि।

टूल बाक्स – 2

समतल संपर्क

केवल समान स्तर के कर्मचारियों से ही समतल सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

(10) **व्यवस्था अथवा क्रमबद्धता**: व्यवस्था अथवा क्रमबद्धता के सिद्धान्त के अनुसार, सही व्यक्ति को सही कार्य पर लगाया जाना चाहिए तथा सही वस्तु को सही स्थान पर रखा जाना चाहिए। फेयोल के शब्दों में प्रत्येक उपक्रम में दो अलग–अलग व्यवस्थाएं होनी चाहिए: जैसे–भौतिक साधनों के लिए भौतिक व्यवस्था तथा मानवीय साधन के लिए सामाजिक व्यवस्था, भौतिक साधनों को व्यवस्थित करने का अर्थ यह है कि हर वस्तु के लिए एक उचित स्थान होना चाहिए और हर वस्तु अपने उचित स्थान पर ही होनी चाहिए। इसी तरह मानवीय साधनों का व्यवस्थित कराने का अर्थ यह है कि हर व्यक्ति के लिए एक उचित स्थान होना चाहिए और हर व्यक्ति अपने निश्चित स्थान पर ही होना चाहिए। इन दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं को लागू करने से हर व्यक्ति को यह पता होगा कि उसका कार्य स्थल कहां है, उसे क्या करना है और उसकी जरुरत की वस्तुएँ किस स्थान पर मिलेंगी। परिणामतः संस्था में उपलब्ध सभी साधनों का अनूकूलतम उपयोग हो सकेगा।

उदाहरण के लिए कारखाने में काम करने वाले प्रत्येक कर्मचारी को यह पता होना चाहिए कि आवश्यकता पड़ने पर औज़ार कहां उपलब्ध होंगे। इसी प्रकार उन्हे पता होना चाहिए कि पर्यवेक्षक जरूरत पड़ने पर कहां उपलब्ध होगा। यहां मुख्य बात यह है कि केवल टूल बाक्स व पर्यवेक्षक का स्थान निश्चित होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि आवश्यकता पड़ने पर दोनों का अपने–अपने निर्धारित स्थान पर पाया जाना अति आवश्यक है। ऐसा न होने पर मशीनों में टूट–फूट से भारी हानि हो सकती है।

धनात्मक प्रभाव

- भौतिक संसाधनों व मानव–शक्ति का प्रभावपूर्ण उपयोग।
- आवश्यकता पड़ने पर संसाधनों को खोजने में समय की बर्बादी नहीं।
- बेहतर अनुशासन।

(11) **समता**: यह सिद्धान्त बताता है कि प्रबन्धकों को अपने अधीनस्थों के साथ व्यवहार करते समय न्याय एवं उदारता का प्रदर्शन करना चाहिए, जिससे उनमें अपने कार्य के प्रति समर्पण एवं अपनेपन की भावना का संचार हो। किसी भी कर्मचारी के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार न करके सबके साथ समान व्यवहार का प्रदर्शन करना चाहिए।

फेयोल ने इस सिद्धान्त के संबंध में यह स्पष्ट किया है कि यदि एक कर्मचारी बहुत अच्छा काम करता है और दूसरा कामचोर प्रकृति का है तो दोनों के साथ समान व्यवहार नहीं होना चाहिए, बल्कि दूसरे के साथ निश्चित रूप से सख्त रवैया अपनाया जाना चाहिए। ऐसा करना ही अपने आप में समता होगी। इस विचारधारा को मददे नज़र रखते हुए ही टेलर ने विभेदात्मक पारिश्रमिक पद्धति प्रस्तुत की है।

उदाहरण के लिए, एक श्रमिक एक दिन में 10 इकाइयां माल को तैयार करता है। एक दूसरा श्रमिक जो कि प्रबंधन का रिश्तेदार है 8 इकाइयां तैयार करता है और दोनों को बराबर की मजदूरी दी जाती है। यह समता के सिद्धान्त का उल्लंघन है। दूसरे श्रमिक को पहले से कम मजदूरी प्राप्त होनी चाहिए।

धनात्मक प्रभाव

- कर्मचारी संतुष्ट रहते हैं।
- संगठन के प्रति समपर्ण भावना में वृद्धि होती है।
- कुशल कर्मचारी अपनी कुशलता को और बढ़ाने का प्रयास करते हैं।
- अकुशल कर्मचारी कुशलता प्राप्ति का प्रयास करते हैं।

(12) **कर्मचारियों में स्थायित्व**: प्रबंधकी दृष्टि से कर्मचारियों का दिन–प्रतिदिन बदला जाना सर्वथा अहितकर है और यह अकुशल प्रबंधव्यवस्था का संकेत है। इसलिए इस सिद्धान्त के अनुसार, कर्मचारियों में स्थायित्व बना रहना चाहिए ताकि कार्य व्यवस्थित रूप से चलता रहे। फेयोल का मत है कि कर्मचारियों के कार्यकाल में अस्थायित्व बुरे प्रबंधका कारण भी है और परिणाम भी। ऊँची श्रम–परिवर्तन दर से कर्मचारियों को बार–बार चुने जाने व उनको प्रशिक्षण देने की लागतें बढ़ जाती है, और संस्था की साख में कमी आती है। संस्था की इस तरह की साख कर्मचारियों में अनिश्चितता की भावना पैदा करती है और वे हर समय नये कार्यों की खोज में व्यस्त रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उनमें संस्था के प्रति समर्पण की भावना जागृत नहीं हो पाती।

उदाहरण के लिए, माना कि एक कम्पनी में कर्मचारियों के साथ दुर्व्यहार किया जाता है और कम्पनी का वातावरण भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। ऐसी स्थिति में कर्मचारी लम्बे समय तक कम्पनी में नहीं रुकेंगे। अर्थात अवसर मिलते ही वे कम्पनी को छोड़कर चले जाएंगे। यह स्थिति सर्वथा अहितकर है।

धनात्मक प्रभाव

- कर्मचारियों के विश्वास में वृद्धि।
- संस्था की साख में वृद्धि।
- कुशल कर्मचारियों का संस्था की ओर झुकाव।

- कम प्रशिक्षण लागत।

(13) **पहल–क्षमता** : पहल–क्षमता का अभिप्राय अपने विचारों को प्रकट करते हुए कार्य करने की क्षमता से होता है। फेयोल के अनुसार, प्रबंधन का कर्तव्य है कि वह अपने कर्मचारियों में अधिकारों की सीमा तथा अनुशासन के अंतर्गत रहते हुए किसी कार्य को करने या निर्णय लेने से पहले उस कार्य को करने की भावना को उत्प्रेरित करे। ऐसा तभी सम्भव होगा जब प्रबंधन अधीनस्थों के विचारों का स्वागत करेगा। एक बार ऐसा करने से अधीनस्थ बार–बार नये व उपयोगी विचारों के साथ अपने–आप को प्रस्तुत करेंगे और धीरे–धीरे वे संगठन के अटूट अंग बन जाएंगे। इस प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए प्रबंधन को अपनी निष्ठा प्रतिष्ठा को भी त्याग देना चाहिए।

उदाहरण के लिए, एक सेल्समैन बिक्री प्रबंधन को एक नई विज्ञापन विधि को लागू करने का सुझाव देता है। बिक्री प्रबंधन उसे यह कह कर डांट देता है कि जाओ तुम्हारे बस की बात नहीं है। ऐसी स्थिति में वह भविष्य में कभी कोई सुझाव देने की नहीं सोचेगा, क्योंकि उसकी पहल–क्षमता को दबा दिया गया है। इसके विपरीत, यदि उसके सुझाव को ध्यान से सुन लिया जाता (भले ही लागू न करें) तो वह भविष्य में कोई बेहतर सुझाव देने की हिम्मत कर सकता है, क्योंकि ऐसा करने से उसकी पहल–क्षमता में वृद्धि होगी।

धनात्मक प्रभाव

- कर्मचारियों की सोच शक्ति में वृद्धि।
- कर्मचारियों का निर्णयों को लागू करने में सहयोग।
- कर्मचारियों की संस्था के प्रति अपनेपन की भावना में वृद्धि।

(14) **सहयोग की भावना** : इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रबंधन को लगातार कर्मचारियों में टीम भावना के विकास का प्रयास करते रहना चाहिए। ऐसा करने के लिए प्रबंधन को अपने अधीनस्थों से वार्तालाप के दौरान 'मैं' के स्थान पर 'हम' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

उदाहरण के लिए, प्रबंधन को अधीनस्थों के सामने हमेशा यह कहना चाहिए कि 'हम यह काम करेंगे' न कि 'मैं यह काम करूँगा'। प्रबंधन के इस व्यवहार से अधीनस्थों में टीम की भावना का संचार होगा।

धनात्मक प्रभाव

- टीम भावना से काम करने की प्रेरणा।
- उद्देश्य प्राप्ति में आसानी।

- मधुर संबंध।

फेयोल ने अपने प्रबंधन के सिद्धान्तों के बारे में स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रबंधन का संबध मानव से होने के कारण इसमें कुछ भी अंतिम नहीं कहा जा सकता। किन सिद्धान्तों को किस समय और किस परिस्थिति में, कितनी मात्रा में प्रयुक्त किया जाए, यह प्रबंधन के अनुभव, कुशलता एवं निर्णय–शक्ति पर निर्भर करता है। अतः फेयोल द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों में लोचशीलता का तत्व विद्यमान है।

अपनी प्रगति जांचिए

प्र.9		प्रबंधन के सिद्धान्तों के अर्थ व प्रकृति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
प्र.10		प्रबंधन के सिद्धान्तों का महत्व संक्षेप में समझाईये।
प्र11		प्रबंधन के सिद्धान्तों को उचित रूप से समझाना क्यों आवश्यक है? पांच कारण बताइए।
प्र12		फेयोल द्वारा दिए गए प्रबंधन के निम्नलिखित सिद्धान्तों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
	(क)	निर्देश की एकता
	(ख)	समता
	(ग)	सहयोग की भावना
	(घ)	व्यवस्था
	(ङ)	केंद्रीकरण तथा विकेंद्रीकरण
	(च)	पहल–क्षमता

1.7 प्रबंधन के स्तर

प्रबंधन के स्तर

प्रबंधन के स्तरों की कोई निश्चित संख्या नहीं है। इनकी संख्या व्यवसाय की प्रकृति, आकार आदि द्वारा निर्धारित होती है। ब्रेच ने प्रबंधन के स्तरों का निम्नलिखित तीन भागों में बांटा है :–

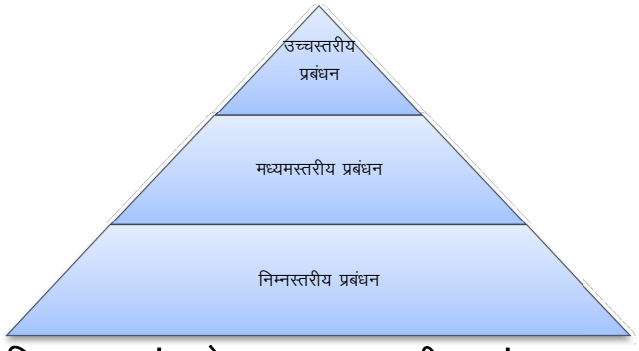

चित्र 1.5 प्रबंध के स्तर– उच्चस्तरीय प्रबंध

उच्चस्तरीय प्रबंधन :

उच्चस्तरीय प्रबंधन में संचालक मण्डल, मुख्य कार्यकारी अधिकारी आदि को सम्मिलित किया जाता है। मुख्य कार्यकारी अधिकारी एक अकेला व्यक्ति भी हो सकता है अथवा कुछ अधिकारी भी और एक समिति भी। मुख्य कार्यकारी अधिकारी को अनेक नामों से पुकारा जाता है– जैसे प्रबंध संचालक, मुख्य प्रबन्धक, प्रधान आदि। उच्चस्तरीय प्रबंधक के पास सभी प्रबन्धकीय अधिकारी होते हैं और इस आधार पर ही उच्च स्तर के अधिकारी व्यवसाय के स्वामियों अथवा अंशधारियों के प्रति उत्तरदायी हैं।

मध्यस्तरीय प्रबंधन :

मध्यस्तरीय प्रबन्धन, उच्चस्तरीय तथा निम्नस्तरीय प्रबंधन के मध्य स्थित होता है। इसके मध्यस्तरीय प्रबंधन उच्चस्तरीय प्रबंधन से आदेश लेते हैं और निम्नस्तरीय प्रबंधन से कार्य करवाते हैं। ये अपने कार्य के लिए उच्चस्तरीय प्रबंधन के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

निम्नस्तरीय प्रबंधन :

यह प्रबंधन का सबसे नीचा का स्तर है और इसका श्रमिकों से सीधा संबंध होता है। ये उनकी साधारण समस्याओं को तो स्वयं ही निपटा देते हैं और गम्भीर समस्याओं को मध्यस्तरीय प्रबन्धकों तक पहुँचाते हैं। ये अधीनस्थ से काम को और बेहतर ढंग से करवाते हैं और बेहतर ढंग से करने का सुझाव भी देते हैं।

प्रबंध के स्तर

उच्चस्तरीय प्रबन्धन	मध्यस्तरीय प्रबन्धन	निम्नस्तरीय प्रबन्धन
• संचालक मंडल • मुख्य कार्यकारी • अध्यक्ष • प्रबंधसंचालक • मुख्यप्रबन्धक	• विभागीय प्रबन्धक • उप–विभागीय प्रबन्धक • कार्यात्मक प्रबन्धक	• फोरमैन • पर्यवेक्षक

अपनी प्रगति जांचिए
प्र13. प्रबंधन के तीन स्तर क्या हैं?
प्र.14 प्रबंधन का निम्न स्तर कौन सा है?

1.6 प्रशासन और प्रबन्धन

प्रशासन और प्रबन्धन

प्रशासन और प्रबंधन दोनो का अर्थ समान समझा जाता है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। यहां पर प्रबंधन और प्रशासन को भिन्न स्वीकारा गया है। इन्हें ठीक से समझना आवश्यक है।

प्रबंधन और प्रशासन में अन्तर

ओलिवर शैल्डन के अनुसार, प्रशासन संगठन का निर्माण करता है, प्रबंधन इनका प्रयोग करता है। प्रशासन लक्ष्य निर्धारित करता है, प्रबंधन इन्हें पूरा करने का प्रयत्न करता है। प्रशासन द्वारा निर्धारित संगठन–तन्त्र का प्रयोग प्रबंधन निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए करता है।

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि प्रशासन लक्ष्य व नीतियाँ निर्धारित करता है तथा प्रबंधन उन्हें प्राप्त करने एवं लागू करने का प्रयास करता है अर्थात प्रशासन का कार्यक्षेत्र प्रबंधन से व्यापक है।

विलियम आर. स्पीगल के अनुसार, 'प्रशासन किसी व्यवसायिक संस्था का वह भाग है जिसका सम्बन्ध संस्थागत उद्देश्य निश्चित करना तथा नीतियों का निर्धारण करना है जिसका अनुसरण करना उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

प्रशासन प्रबन्धन में शामिल

ब्रैच के अनुसार 'प्रबन्धन सामाजिक क्रिया है जो किसी उपक्रम के निर्धारित उद्देश्य अथवा कार्य को सम्पन्न करने के लिए क्रियाओं का प्रभावपूर्ण नियोजन एवं नियमन करने के उत्तरदायित्व को आवश्यक मानता है।

'प्रशासन प्रबंधन का भाग है एवं व्यावसायिक प्रक्रियाओं की प्रगति को योजना के अनुरूप नियमित एवं नियंत्रित कार्य के लिए कार्य–विधियों के निर्धारण एवं पालन करने से संबंधित है'।

प्रबन्धन और प्रशासन में कोई भेद नहीं

आधुनिक विचारधारा के अनुसार प्रबन्धन और प्रशासन में कोई भेद नहीं किया जा सकता।

थियो हैमन के अनुसार– 'प्रशासनिक तथा प्रबन्धकीय कार्यों का निष्पादन करने के लिए भिन्न–भिन्न वर्गीय पक्षों की आवश्यकता नहीं पड़ती है। प्रत्येक प्रबंधक को दोनों प्रकार

की क्रियायों का निष्पादन करना पड़ता है तथा वे अपना कुछ समय प्रशासकीय व कुछ प्रबन्धकीय कार्यों में लगाते हैं।

किम्बल एवं किम्बल के अनुसार– 'यह अन्तर बहुत भ्रमात्मक है। प्रबंधन एवं प्रशासन एक दूसरे के पर्यायवाची हैं'।

उपरोक्त दृष्टिकोण के संज्ञान से ऐसा कहा जा सकता है कि इन दोनों क्रियाओं का संगठनात्मक स्तर से सम्बन्ध है।

पहले स्तर के प्रबन्धकीय कार्य कम एवं प्रशासकीय कार्य अधिक होते हैं। दूसरे स्तर में प्रशासकीय व प्रबन्धकीय कार्य लगभग बराबर मात्रा में होते हैं। तीसरे स्तर में प्रशासकीय कार्य कम एवं प्रबन्धकीय कार्य अधिक करते हैं।

प्रबंधन– एक पेशे के रूप में

पेशे का अर्थ

प्रबंधन की प्रकृति के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रबंधन एक पेशा है? यह निश्चित करने के लिए सर्वप्रथम पेशे का अर्थ एवं इसकी विशेषताओं का अध्ययन करना आवश्यक है। पेशे का अर्थ समझने के लिए निम्नलिखित परिभाषाओं का अध्ययन सार्थक सिद्ध होगा।

(1) **वेकस्टर शब्दकोश के अनुसार** – ''पेशा वह व्यवसाय है जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करके दूसरे व्यक्तियों को निर्देश, मार्ग–दर्शन या परामर्श देता है''।

(2) **हॉज तथा जानसन के अनुसार** – 'व्यवसाय एक पेशा है जिसके लिए कुछ विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है जिसे उच्च स्तरीय समानता द्वारा समाज में एक सम्बन्धित वर्ग की सेवार्थ प्रयुक्त किया जाता है''।

(3) **प्रो. डाल्टन ई. मेक फारलैण्ड**ः ने पेशे की निम्नलिखित पांच विशेषताओं का उल्लेख किया हैः–

(i) विशिष्ट ज्ञान एवं तकनीकी कौशल का होना
(ii) प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त करने की औपचारिक व्यवस्था
(iii) पेशे का विकास करने के लिए एक प्रतिनिधि संस्था का होना
(iv) व्यवहार को नियन्त्रित करने के लिए आचार–संहिता का होना
(v) आर्थिक स्वार्थ के स्थान पर सेवा भावना को प्राथमिकता देना

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि पेशे के अंतर्गत एक व्यक्ति लम्बे प्रशिक्षण एवं अनुभव द्वारा प्राप्त व्यक्तिगत निपुणता का प्रयोग समाज के भिन्न – भिन्न वर्गों की सेवा में निष्पक्ष रूप से करता है।

- क्या प्रबंधन एक पेशा है?

पेशे का अर्थ समझने के बाद अब प्रश्न उठता है कि क्या प्रबंधन को पेशे के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए अथवा नहीं? इस प्रश्न के उत्तर के लिए यह देखना होगा कि

क्या पेशे वाली सभी विशेषताएँ प्रबंधन में हैं? पेशे की विभिन्न विशेषताओं और उनके प्रबंधन में विद्यमान होने के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवेचन महत्वपूर्ण हैं:

(1) **विशिष्ट ज्ञान एवं तकनीकी कौशलः** पेशे की पहली विशेषता यह है कि एक पेशेवर व्यक्ति में विशिष्ट ज्ञान एंव तकनीकी चातुर्य होना चाहिए। प्रबंधन एक विशिष्ट ज्ञान एवं निपुणता है जिसके अपने प्रयोगों पर आधारित सिद्धान्त एवं नियम हैं, जिन्हें व्यावहारिक प्रयोग में लाने के लिए विशेष चातुर्य की जरुरत पड़ती है। इस विशेषता के आधार पर प्रबंधन को पेशा माना जा सकता है।

(2) **प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त करने का औपचारिक व्यवस्थाः** प्रबंधन के विशिष्ट ज्ञान प्राप्ति के लिए शिक्षण एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था आज अनेक संस्थाओं द्वारा उपलब्ध करा दी गई है। भिन्न–भिन्न विश्वविद्यालयों एवं प्रशिक्षण केन्द्रों में प्रबंधन के सिद्धान्तों को निपुणता के साथ सिखलाया जा रहा है। आजकल अधिकतर प्रबंधन या तो इन प्रशिक्षण केन्द्रों में प्रबंधन की शिक्षा ग्रहण करके इस पेशे में प्रवेश लेते हैं अथवा प्रबंधन साहित्य को पढ़कर, प्रबंधन गोष्ठियों में हिस्सा लेकर व प्रबंधन पाठयक्रम सम्बन्धी कार्यक्रम जो कम्पनी या विश्वविद्यालय द्वारा संचालित किए गए हों, में हिस्सा लेकर यह ज्ञान प्राप्त करते हैं। व्यवसायिक संस्थायें भी उन्हीं लोगों को प्रबंधक के रूप में चुनाव करती हैं जो प्रशिक्षित एवं अनुभवी हें। यद्यपि यह सही है कि अभी भी अनेक व्यक्ति प्रबन्धकीय योग्यता के इस औपचारिक प्रशिक्षण के बिना ही इस पद पर कार्यरत हैं, लेकिन इन प्रबन्धकों की प्रबन्धकीय क्षमता को भी कम करके नहीं आंका जा सकता, क्योंकि इस पद पर पहुंचने के लिए उन्होंने अनेक संस्थाओं में विभिन्न छोटे–बड़े पदों पर काम करके अनुभव प्राप्त किया होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दोनों प्रकार के प्रबन्धकों में लगभग एक–सी योग्यता होती है। अतः पेशे की इस विशेषता के आधार पर प्रबंधन को पेशा माना जा सकता है।

(3) **प्रतिनिधि पेशेवर संघ का होना** : पेशे की तीसरी विशेषता के रूप में इसके लिए एक प्रतिनिधि संघ का होना आवश्यक है, जिसके निम्नलिखित मुख्य कार्य होते हैं:–

(i) अपने सदस्यो के व्यवहार को नियन्त्रित करना
(ii) पेशे की विभिन्न क्रियाओं का मार्ग–दर्शन करने के लिए आचार–संहिता तैयार करना।
(iii) अपने सदस्यों की छवि को एक पेशेवर के रूप में बनाना एवं विकास करना
(iv) अपने सदस्यों की न्यूनमत योग्यता निर्धारित करना
(v) पेशे के प्रवेश को नियमित करना

भारत में दूसरे पेशों में इस तरह के प्रतिनिधि संघ स्थापित हो चुके हैं– जैसे–वकालत के पेशे के लिए बार काउन्सिल ऑफ इन्डिया, चिकित्सा के पेशे के लिए मैडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया, तथा लेखाशास्त्र के पेशे के लिए इन्स्टीच्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टैंटस। इसी तरह के संघों की स्थापना प्रबंधन के सम्बन्ध में भी भारत तथा विदेशों में

हो चुकी है। भारत में ऑल इंडिया मैनेजमैंट एसोसिएशन के नाम से प्रबंधन संघ की स्थापना की गई है, तथा देश के विभिन्न भागों में स्थानीय प्रबंधन संघ बनाए गए हैं, जो ए.आई.एम.ए से संबंधित है। इन प्रबंधन संघों द्वारा प्रबन्धकों के सामाजिक दायित्व की ओर विशेष ध्यान देने के साथ–साथ पेशेवर आचार–संहिता को भी तैयार किया जा रहा है।

भारत में प्रबंधन संघ पेशेवर संघों के निर्धारण की ओर अग्रसर तो है लेकिन आज इनका मुख्य कार्य प्रबंधन के विभिन्न क्षेत्रों में शोध करना ही है। यह भी सच है कि प्रबन्धकीय व्यवहार को नियमित बनाने के लिए कोई विशेष नियम नहीं बनाए गए हैं और न ही प्रबंधन पेशे में प्रवेश करने के बारे में कोई समानता है। उदाहरण के लिए, वकालत का कार्य करने के लिए कानून की उपाधि का होना आवश्यक है लेकिन प्रबंधक बनने के लिए ऐसी कोई उपाधि निश्चित नहीं की गई है। इसी प्रकार एक चार्टर्ड एकाउण्टैंट का काम करने के लिए इन्स्टीच्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउण्टैंटस का सदस्य होना आवश्यक है लेकिन प्रबंधक बनने के लिए ए.आई.एम.ए. का सदस्य होना आवश्यक नहीं है। अतः कहा जा सकता हे कि भारत में प्रबंधन के संदर्भ में पेशे की यह विशेषता खरी साबित नहीं होती तथा इस आधार पर प्रबंधन को पूर्णतः पेशा स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(4) **आचार–संहिता** : एक पेशे के सदस्य निर्धारित आचार–संहिता का पालन करने के लिए बाध्य होते हैं। आचार–संहिता के अंतर्गत पेशे से समबन्धित नियम ईमानदारी, सत्यनिष्ठा एवं नैतिकता के पैमाने को सम्मिलित किया जाता है। पहले से स्वीकृत पेशों– जैसे कानून, चिकित्सा, लेखाशास्त्र आदि के लिए आचार–संहिता निश्चित कर दी गई है लेकिन प्रबंधन के सम्बन्ध में इस तरह की कोई समान आचार–संहिता निश्चित नहीं की गई है और न ही प्रबन्धकीय कार्यों में प्रवेश के लिए किसी लाईसैंस की आवश्यकता है। इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रबंधन पूर्ण रूप से एक पेशा नहीं है। प्रबंधन के सम्बन्ध में जो आचार–संहिता विकसित हो रही है उसमें मुख्यतः संस्था के गोपनीय रहस्यों को गुप्त रखना, संस्था की आंतरिक जानकारी को अपने हित के लिए उपयोग न करना, संस्था के उपलब्ध साधनों का संस्था के दीर्घकालीन कल्याण के लिए उपयोग करना आदि को सम्मिलित किया जा रहा है।

(5) **आर्थिक स्वार्थ के स्थान पर सेवा भावना को प्राथमिकता** : अन्य धन्धों एवं व्यापार की भांति ही पेशा करना भी जीवित रहने के लिए धन अर्जित करने का एक साधन है, जिसमें विशेष ज्ञान के आधार पर उचित पारिश्रमिक लेकर समाज की सेवा की जाती है। यही कारण है कि पेशेवर लोगों को समाज में सम्मान प्राप्त होता हे। उदाहरण के लिए, एक डॉक्टर चिकित्सा के पेशे से अपनी आजीविका चलाता है लेकिन समाज सेवा उसका मुख्य उदेश्य होता है। यद्यपि प्रबंधन के सम्बन्ध में इस तरह की कोई आचार– संहिता नहीं है, फिर भी प्रबन्धकों के सामाजिक दायित्व पर बहुत जोर दिया जा रहा है और उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे कम से कम लागतों से अधिक कुशलता अर्जित करके कर्मचारियों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं, समाज और देश की सेवा

करेंगे और अपने आर्थिक लाभ को भुलाकर संस्था के कल्याण के लिए अपनी समस्त योग्यता एवं अनुभव को दाव पर लगा देंगे। इस दृष्टिकोण से प्रबंधन को पेशे के रूप में स्वीकार करने में अधिक संकोच नहीं होना चाहिए।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रबन्धन, पेशे की कुछ विशेषताओं को पूरा करता है तथा कुछ अन्य विशेषताओं का इसमें अभी पूरा विकास नहीं हुआ है। प्रबंधन को पेशे के रूप में विकास की धीमी गति का मुख्य कारण अधिकतर औद्योगिक उपक्रमों का संचालन कुछ प्रमुख औद्योगिक घरानों द्वारा किया जाना है जिससे पेशेवर प्रबन्धको का विकास अधिक गति से नहीं हो सका है। परन्तु फिर भी शनैः शनैः पेशेवर प्रबन्धकों की मांग बढ़ रही है। सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि भारत में प्रबंधन का पेशे के रूप में विकास हो रहा है। जैसे–जैसे विकास की गति में तेज़ी आयेगी, वैसे–वैसे प्रबंधन को पेशे के रूप में स्वीकृति मिलती रहेगी।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.15	प्रबन्धन एवं प्रशासन में क्या संबंध है?
प्र.16	क्या प्रबन्धन एक पेशा है?

1.7 प्रबंधकीय भूमिकाएं

प्रबन्धकीय भूमिकाएँ

प्रबन्धकीय भूमिकाओं के संबंध में मुख्य प्रश्न यह उठता है कि क्या उसके अंतर्गत प्रबंधन प्रक्रिया में उपरोक्त बताए गए पांच ही कार्य किए जाते हैं? और क्या इसी क्रम में उन्हें पूरा किया जाता है? हेनरी मिंज़बर्ग ने इस संबंध में गहन अध्ययन किया। मिज़बर्ग अपने शोधकार्यों के आधार पर इस नतीजे पर पहुंचे कि एक प्रबंधन इन पांचों कार्यों के स्थान पर कुछ अलग तरह की भूमिकाएँ अदा करता है। उन्होंने प्रबंधन की दस भूमिकाओं का विकास किया जिन्हें तीन श्रेणियों में बांटा गया है। इन सभी दस भूमिकाओं का कोई विशेष क्रम नहीं है। ये भूमिकाएँ निम्नलिखित हैं :–

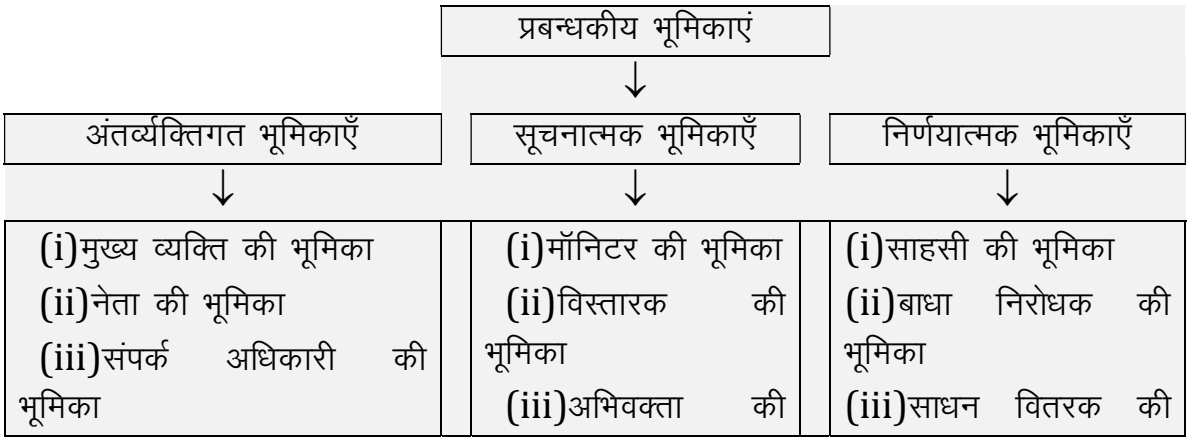

		भूमिका		भूमिका (iv)सौदेबाज की भूमिका

चित्र – 1.6 प्रबन्धकीय भूमिकाएँ

(A) **अंतर्व्यक्तिगत भूमिकाएं**

प्रबंधन के अर्न्तगत एक व्यक्ति (अर्थात प्रबन्धक) द्वारा अन्य व्यक्तियों के माध्यम से संगठन के उद्देश्यों को पूरा किया जाता है। इसलिए इसे अंतर्व्यक्तिगत क्रिया कहा जाता है। अन्य शब्दों में, प्रबंधन क्रिया को सार्थक बनाने के लिए एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों से संबंध स्थापित होना जरुरी है। इस संबंध में एक प्रबंधन निम्नलिखित तीन भूमिकाएँ अदा करता है:

(i) **मुख्य व्यक्ति की भूमिका** : संगठन में प्रबंधक एक मुख्य व्यक्ति के रूप में होता है। इस भूमिका में प्रबंधन को निम्नलिखित कार्य करने होते हैं:

– संगठन की ओर से सामाजिक उत्सवों में उपस्थित होना
– भ्रमणकारियों का स्वागत करना
– कर्मचारियों की शादियों में उपस्थित होना
– किसी महत्वपूर्ण ग्राहक के साथ भोजन करना

(ii) **नेता की भूमिका** : एक नेता की भूमिका में प्रबंधक अपने अधीनस्थों का मार्ग–दर्शन करता है। वह उन्हें यह बताता है कि किस कार्य को, किस विधि में कम से कम समय में किया जा सकता है।

(iii) **संपर्क अधिकारी की भूमिका** : इस भूमिका के अर्न्तगत प्रबंधक संगठन में अन्य विभागों के प्रबन्धकों के साथ संपर्क स्थापित करके अनेक जानकारियां प्राप्त करता है। प्रबन्धकों की यह भूमिका संगठन के सभी विभागों के साथ मधुर संबंध स्थापित करने में सहायक होती है।

(B) **सूचनात्मक भूमिकाएँ**

प्रबंधक की यह भूमिका संदेशवाहन से संबंधित है। प्रबंधक अपने बॉस तथा अधिनस्थाओं के साथ आवश्यक सूचनाओं का आदान–प्रदान करता है। अपने अधीनस्थों को यह आदेश व निर्देश देता है तथा उनसे सुझाव, शिकायत आदि प्राप्त करता है। इसी प्रकार वह अपने बॉस से आदेश व निर्देश प्राप्त करता है और अपने सुझाव, शिकायतें आदि उसके पास भेजता है। मिज़बर्ग ने निम्नलिखित सूचनात्मक भूमिकाओं का वर्णन किया है:

(i) **मॉनीटर की भूमिका**: एक मॉनीटर की भूमिका में प्रबंधक संगठन के आंतरिक व बाहरी वातावरण पर निगाह रखता है। वातावरण का अभिप्राय संगठन के निर्णयों को प्रभावित करने वाले आंतरिक व बाध्य तत्वों से है। प्रबंधक इन तत्वों से संबंधित सूचनाएँ एकत्रित करता है तथा उनका विश्लेषण करता है।

(ii) **विस्तारक की भूमिका**: एक विस्तारक की भूमिका में प्रबंधक अपने अधीनस्थों को उन सूचनाओं से अवगत करवाता है जो उनकी पहुंच में नहीं हैं। ये सूचनाएँ आंतरिक व बाध्य वातावरण से संबंधित हो सकती हैं।

(iii) **अधिवक्ता की भूमिका**: अधिवक्ता की भूमिका में प्रबंधक संगठन के बाहर के लोगों के साथ संगठन के प्रतिनिधि के रूप में बात–चीत करता है। जैसे, अंशधारकों को कम्पनी की वित्तीय स्थिति की जानकारी देना, प्रेस के लोगों के संगठन के बारे में बातचीत करना, उपभोक्ताओं को सामाजिक उत्तरदायित्व पूरा करने का आश्वासन देना, सरकार को नियमों के पालन का आश्वासन देना, आदि।

(C) **निर्णयात्मक भूमिका**: प्रबंधक की इस भूमिका के बारे में कहा जाता है कि यदि प्रबंधन में से निर्णय को घटा दिया जाए तो शेष कुछ नहीं बचता। इसका अभिप्राय यह है कि प्रबंधक को निर्णय ही तो लेने होते हैं। यदि वह निर्णय नहीं लेता तो फिर उसका कोई औचित्य शेष नहीं रह जाता। अतः प्रबंधन को अनेक दैनिक व अन्य महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं। प्रबंधक की निर्णयात्मक भूमिकाएं निम्नलिखित हैं:

(i) **साहसी की भूमिका** : इस भूमिका में प्रबंधक आधुनिक व्यवसायिक वातावरण का सामना करने के लिए काम करने की नई–नई विधियों की खोज करता है व उन्हें लागू करता है।

(ii) **बाधा–रोधक की भूमिका**: इस भूमिका में प्रबंधक संगठन में उपस्थित किसी भी बाधा को अतिशीघ्र दूर करने का प्रयास करता है, जैसे, बिजली का फेल होना, मशीन का अचानक खराब हो जाना, अधीनस्थों में झगड़ा हो जाना, किसी देनदार का दिवालिया हो जाना, कच्चे माल की पूर्तीकर्ता द्वारा हड़ताल की धमकी देना, आदि ऐसी समस्याएँ हैं जिनका अतिशीघ्र निपटारा करना होता है।

(iii) **साधन वितरक की भूमिका**: प्रत्येक संगठन में साधन (जैसे–धन, माल, मशीन आदि) सीमित मात्रा में उपलब्ध होते हैं। प्रबंधक का यह कर्तव्य होता है कि वह सीमित साधनों का अधिकतम उपयोग करे। ऐसा तभी संभव है यदि साधनों का उचित वितरण किया जाये, अर्थात जिस स्थान पर जितने साधनों की आवश्यकता हो, वहां उतने ही दिए जाने चाहिए। प्रबंधक इस भूमिका के अंतर्गत साधनों के उचित बंटवारे की व्यवस्था करता है।

(iv) **सौदेबाज की भूमिका** : इस भूमिका के अंतर्गत प्रबंधक अनेक आंतरिक एवं बाध्य लोगों से विभिन्न मुद्दों पर सौदेबाजी करता है: जैसे– हड़ताल के मुद्दे को लेकर संघ के प्रधान से सौदेबाजी करना, अर्थात श्रमिक संघ के प्रधान के साथ यह निश्चित करना कि उन्हें क्या सुविधा प्रदान करने से हड़ताल समाप्त हो सकती है।

1.8 प्रबंधन की विभिन्न विचारधाराएँ

प्रबंधन की विभिन्न विचारधाराएँ

प्रबंधन का प्रचलन उतना ही पुराना है जितनी कि मानव सभ्यता। विशेषकर जब से मनुष्य समूहों में काम करने लगे हैं, इसकी आवश्यकता महसूस की जाने लगी है। जब अनेक व्यक्ति समूह में काम करते हैं तो उनकी क्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए उनका प्रबंधन करना आवश्यक है। प्रबंधन का जो स्वरूप हम आज देख रहे हैं, यह प्रारम्भ से ही ऐसा नहीं था। समय–समय पर अनेक प्रबंधन विशेषज्ञों ने अपने प्रयोगों एवं अनुभव के आधार पर प्रबंधन के बारे में अलग– अलग विचार व्यक्त किए हैं। कुछ प्रबंधन विशेषज्ञों ने भौतिक साधनों को अधिक महत्व दिया है तो कुछ ने मानवीय साधन को। इसके अतिरिक्त कुछ प्रबंधन विशेषज्ञों ने प्रणाली अध्ययन पर जोर दिया है। प्रबंधन के संबंध में व्यक्त किए गए इन तीनों विचारों का संबंध निर्णय से है। अर्थात पहले विचार के अनुसार, प्रबन्धकों द्वारा निर्णय लेते समय भौतिक साधनों पर प्राथमिकता दी जाती है। दूसरे विचार के अनुसार, मानवीय साधनों पर प्राथमिकता दी जाती है, तीसरे विचार के अनुसार निर्णय लेते समय प्रबन्धकों द्वारा सभी संबंधित तत्वों को ध्यान में रखा जाता है।

जैसे–जैसे प्रबंधन के बारे में नये–नये विचार प्रस्तुत किए जा रहे प्रबंधन विचारधारा का विकास होता रहा। प्रबंधन विचारधारा के विकास की प्रक्रिया को निम्नलिखित तीन शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है:

क. परंपरागत दृष्टिकोण
ख. नव–परंपरागत दृष्टिकोण
ग. आधुनिक दृष्टिकोण

प्रत्येक दृष्टिकोण को पुनः शाखाओं में विभक्त किया जा सकता है। प्रबंधन विचारधारा के विकास की कहानी को निम्न चित्र में स्पष्ट किया गया है।

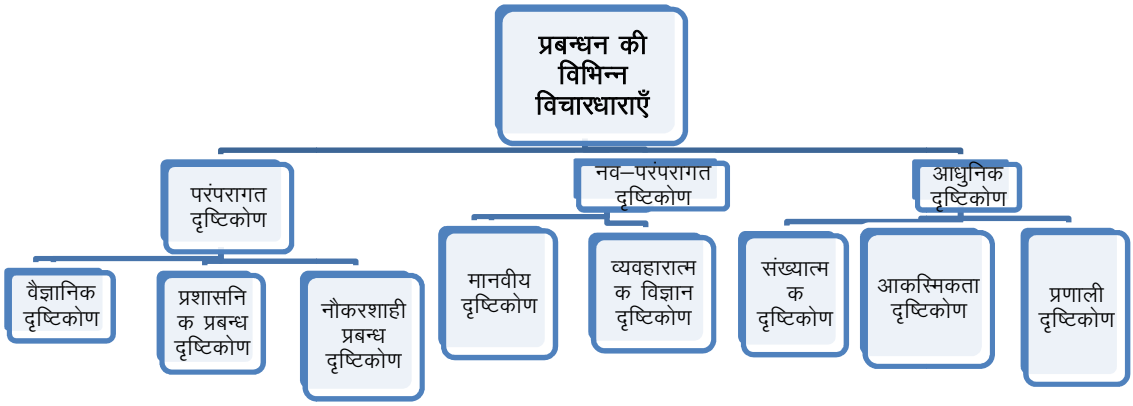

चित्र – 1.7 प्रबंधन की विभिन्न विचारधाराएँ

परंपरागत दृष्टिकोण:

प्रबंधन का परंपरागत दृष्टिकोण सन 1940 के आस–पास विकसित हुआ। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत विकसित हुए सिद्धांतों को आज भी स्वीकार किया जाता है। इस दृष्टिकोण की यह मान्यता है कि मानव उत्पादन का एक निष्क्रिय संसाधन है और इसे नियंत्रित किया जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त इसकी यह भी मान्यता है कि कर्मचारी आर्थिक प्रेरणाओं से अभिप्रेरित होते हैं। इस दृष्टिकोण की तीन शाखाएँ हैं–

(i) वैज्ञानिक प्रबन्ध

(ii) प्रशासनिक प्रबन्ध

(iii) नौकरशाही प्रबन्ध।

इन्हें परंपरागत दृष्टिकोण के स्तंभ भी कहा जाता है। अब हम इनका विस्तृत अध्ययन करेंगे।

(i) **वैज्ञानिक प्रबंध**

वैज्ञानिक प्रबंधन दृष्टिकोण के जन्मदाता **फ्रेडरिक डब्लयु. टेलर** है। वैज्ञानिक प्रबंधन के सिद्धांतों को विकसित करने में टेलर के अतिरिक्त **फ्रैंक व लिलियन गिलब्रेथ, हेनरी एल.गैट, तथा हेरिंगटन इमरसन** का भी महत्वपूर्ण योगदान है। अब हम इन चारों प्रबंधन विशेषज्ञों के वैज्ञानिक प्रबंधन में योगदान की व्याख्या करेंगे।

(क) टेलर का योगदान

एफ.डब्लयू.टेलर एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है जो थोड़े ही समय (1878–1884) में एक साधारण श्रमिक से मुख्य इंजीनियर के पद पर पहुंचे। सन 1878 में ये एक

श्रमिक के रूप में अमेरिका की मिडवेल स्टील कम्पनी में भर्ती हुए और अपनी लगन एवं मेहनत के कारण 6 वर्ष की अल्प अवधि में (सन 1884) में इसी कम्पनी में मुख्य इंजीनियर के पद पर पहुंच गए। इस अवधि में टेलर ने अनेक प्रयोग किए और यह पाया कि एक श्रमिक को जितना काम करना चाहिए वह उससे बहुत कम काम करता है। इस समस्या को दूर करने के लिए उन्होंने अनेक सुझाव दिए और अंततः प्रबंधन को वैज्ञानिक रूप दिया। सन 1901 तक बीथलहैम स्टील वर्क्स में काम करने के उपरांत उन्होंने प्रबंधन परामर्शदाता के रूप में अपनी सेवाएँ देनी प्रारम्भ की। सन 1903 में उनका एक शोध–पत्र **कारखाना प्रबंधन** के नाम से प्रकाशित हुआ। सन 1911 में इनकी '**वैज्ञानिक प्रबंधन के सिद्धांत**' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसने प्रबंधन जगत में तहलका मचा दिया था।

- **वैज्ञानिक प्रबंधन का अर्थ**

वैज्ञानिक प्रबंधन का शाब्दिक अर्थ प्रबंधन को वैज्ञानिक ढंग से करना है। अर्थात प्रबंधन की रुढ़िवादी विचारधाराओं को छोड़कर आधुनिक वैज्ञानिक विचारधाराओं का प्रयोग करना ही वैज्ञानिक प्रबंधन है। इस संबंध में टेलर ने कहा है कि प्रबन्धक कों को कोई भी काम करने से पहले उसका गहन विश्लेषण करना चाहिए और उसी के आधार पर निर्णय लेना चाहिए।

- **वैज्ञानिक प्रबंधन के सिद्धान्त**

एफ.डब्लयू. टेलर द्वारा प्रतिपादित प्रबंधन की वैज्ञानिक विचारधारा निम्नलिखित पांच सिद्धान्तों पर आधारित है:

(i) **रुढ़िवादी के स्थान पर विज्ञान के प्रयोग का सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त के अनुसार, एक संस्था के अंदर जो भी काम किया जाए उसके प्रयोग हिस्से की गहन जांच करनी चाहिए ताकि काम करने की एक ऐसी पद्धति का विकास किया जा सके जिससे अधिक व बढ़िया काम न्यूनतम लागतों पर संभव हो। यह सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि हमें लकीर का फकीर बन कर काम की पुरानी पद्धतियों को ही नहीं अपनाते रहना चाहिए बल्कि हर समय नये–नये उपयोगों द्वारा नवीनतम पद्धतियों की खोज करके अपने काम को सरल बनाने का प्रयास करना चाहिए।

(ii) **श्रमिकों के वैज्ञानिक चयन एवं प्रशिक्षण का सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त के अनुसार, श्रमिकों का चयन एवं प्रशिक्षण वैज्ञानिक रीति से किया जाना चाहिए। संस्था में किए जाने वाले सभी कार्यों में से श्रमिकों के चयन का कार्य अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि एक गलत नियुक्ति संस्था के पूरे वातावरण को दूषित कर सकती है। श्रमिकों के वैज्ञानिक चयन का अभिप्राय किसी काम के लिए वांछित योग्यता रखने वाले व्यक्तियों का चयन करना है। श्रमिकों का ठीक ढंग से चयन कर लेना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसको समय–समय पर आवश्यक प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

उत्तम तरीकों से दिया गया प्रशिक्षण श्रमिकों की कार्यकुशलता में निखार लाता है। जिसका लाभ स्वयं श्रमिकों को व संस्था दोनों को प्राप्त होता है।

(iii) **श्रम एवं प्रबंधक के मध्य सहयोग का सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त के अनुसार, संस्था के अंदर ऐसा वातावरण बनाना चाहिए जिसमें श्रम (उत्पादन का मुख्य साधन) एवं प्रबंधक दोनों एक–दूसरे को अपना पूरक समझें। अर्थात श्रमिक वर्ग यह समझे कि प्रबंधन वर्ग के सहयोग के बिना उसका काम नहीं चल सकता और प्रबंधन वर्ग यह समझे कि श्रमिक वर्ग के सहयोग के बिना उसका अस्तित्व खतरे में है। ऐसी भावना जागृत हो जाने पर दोनों वर्ग एक ही लक्ष्य (अर्थात अधिक व अच्छा उत्पादन) का पीछा करें और सफलता निश्चित रूप से उनके कदमों में होगी। टेलर ने ऐसी अवस्था को मानसिक क्रान्ति का नाम किया है। उनका विश्वास है कि यदि दोनों पक्षों में मानसिक क्रान्ति आ जाये तो उनके सभी झगड़े समाप्त हो जाएंगे। परिणामस्वरुप, दोनों वर्गों को अधिक लाभ की प्राप्ति होगी।

(iv) **अधिकतम उत्पादन का सिद्धान्त** : इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रबंधन वर्ग एवं श्रमिक वर्ग दोनों को अधिकतम उत्पादन करने का पूरा प्रयास करना चाहिए, अर्थात संस्था में उपलब्ध साधनों से जितना अधिक से अधिक उत्पादन हो सके उस लक्ष्य तक पहुंचने में कोई कमी नहीं छोड़नी चाहिए। इसका सीधा प्रभाव संस्था के लाभों पर पड़ेगा अर्थात लाभ अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाएगा अधिक लाभ होने के कारण संस्था में काम करने वाले सभी व्यक्तियों को अधिक पारिश्रमिक प्राप्त होगा और परिणाम स्वरूप वे संस्था के प्रति अधिक वफादार होंगे।

(v) **समान उत्तरदायित्व विभाजन का सिद्धान्त** : इस सिद्धान्त के अनुसार संस्था को दो मुख्य वर्गों (प्रबंधन वर्ग एवं श्रमिक वर्ग) में काम एवं उससे संबंधित दायित्वों का स्पष्ट बंटवारा कर देना चाहिए। जो वर्ग जिस काम को अधिक कुशलता से कर सके उसे वही काम सौंपना चाहिए। जैसे–एक काम को पूरा करने का समय प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिए जबकि इसको कार्यरूप देने का उत्तरदायित्व श्रमिकों को सौंपना चाहिए। इस प्रकार यदि समय का ठीक से निर्धारण न किया गया तो इसके लिए प्रबंधक उत्तरदायी होगा और यदि काम को ठीक से प्रकार पूरा न किया गया तो इसके लिए श्रमिक उत्तरदायी होंगे। इस सिद्धान्त को लागू करने पर न तो सारा श्रेय किसी एक वर्ग को मिलेगा और न ही सारा उत्तरदायित्व किसी एक वर्ग पर थोपा जा सकेगा।

(ख) **फ्रैंक व लिलियन गिलब्रेथ का योगदान**

वैज्ञानिक प्रबंधन के विकास में **फ्रैंक गिलब्रेथ** तथा उसकी पत्नी **लिलियन गिलब्रेथ** के योगदान का बहुत महत्व है। इन्होंने गति अध्ययन में विशेष योगदान दिया। गति अध्ययन के अंतर्गत व्यक्तियों एवं मशीनों द्वारा काम के दौरान की जाने वाली हरकतों (जैसे उठाना, रखना, पकड़ना, दबाना, घुमाना, जोड़ना, छेद करना आदि) का गहन अध्ययन किया गया। अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि अनेक ऐसी अनावश्यक

हरकतें हैं, जिन्हें खत्म किया जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि आवश्यक हरकतों को भी न्यूनतम किया जा सकता है। इस प्रकार काम करने के तरीकों में सुधार करके कार्यकुशलता में असंभावित वृद्धि की जा सकती है।

एक प्रयोग के दौरान जोकि फ्रैंक गिलब्रेथ ने किया था, यह पाया गया कि भवन निर्माण का काम करने वाला एक राज एक ईंट लगाने में 18 बार हरकतें करता है। लेकिन अनावश्यक हरकतों को कम करके इनको केवल 5 तथा कुछ दशाओं में केवल 2 तक सीमित किया जा सकता है।

इन्होंने गति अध्ययन के साथ–साथ समय अध्ययन भी किया। समय अध्ययन के अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि एक काम को पूरा करने में कितना प्रमापित समय लगना चाहिए। प्रमापित समय का अभिप्राय किसी काम को पूरा करने में लगने वाले ऐसे समय से है, जो सामान्य परिस्थितियों में एक औसत श्रमिक को लगाना चाहिए।

श्रीमति गिलब्रेथ जोकि मनोविज्ञान में पी.एच.डी. थीं, ने उद्योग में मानवीय तत्व पर विशेष जोर दिया। उन्होंने थकान के मनोवैज्ञानिक प्रभावों की व्याख्या की। इस प्रकार **गिलब्रेथ दंपति** ने वैज्ञानिक प्रबंधन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(ग) **हेनरी एल.गैंट का योगदान**

गैंट ने मजदूरी निर्धारण की कार्य एवं बोनस योजना प्रारम्भ की। इस योजना में समय, कार्य एवं मजदूरी दर प्रति इकाई प्रमापित कर दी जाती है। कार्य क्षमता के आधार पर दी जाती है और कार्यक्षमता के आधार पर श्रमिकों को तीन श्रेणियों में बांट दिया जाता है, जैसे –

(i) प्रमापित कार्य से कम काम करने वाले श्रमिक – इन्हें समयानुसार मजदूरी का भुगतान किया जाता है।

(ii) प्रमापित कार्य के बराबर काम करने वाले श्रमिक – इन्हें समयानुसार अथवा कार्यानुसार (दोनों से बराबर मजदूरी आती है) मजदूरी के अतिरिक्त 20 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक बोनस दिया जाता है।

(iii) प्रमापित कार्य से अधिक काम करने वाले श्रमिक– इन्हें कार्यानुसार मजदूरी के अतिरिक्त, कार्यानुसार मजदूरी पर 20 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक बोनस दिया जाता है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मजदूरी निर्धारण की इस योजना में न्यूनतम मजदूरी की गारंटी होती है और कुशल श्रमिकों को अकुशल श्रमिकों की अपेक्षा अधिक मजदूरी प्राप्त होती है। इस योजना में बोनस की अच्छी दर होने के कारण यह सभी श्रमिकों को अधिक काम करने के लिए प्रेरित करती है।

गैंट ने यह भी कहा था कि उन पर्यवेक्षकों को भी बोनस दिया जाना चाहिए जो अपने श्रमिकों से वांछित स्तर तक काम लेने में सफल रहते हैं।

गैंट ने श्रमिकों की कुशलता के स्तर को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने की सलाह भी दी। प्रत्येक श्रमिक के काम को एक बार चार्ट पर प्रदर्शित किया जाता था। जो श्रमिक अपने काम को पूरा कर लेते उनके बार चार्ट को काली स्याही से और जो अपना काम पूरा न कर पाते, उनके बार चार्ट को लाल स्याही से भरा जाता था। गैंट का मानना था कि ऐसा करने से श्रमिकों पर प्रतिपादित काम को पूरा करने का मनोवैज्ञानिक दबाव रहता है और परिमाणतः वे अधिक से अधिक काम करने का प्रयास करते हैं।

(ii) **प्रशासनिक प्रबन्धन**

प्रबंधन की प्रशासनिक प्रबंधन विचारधारा का प्रतिपदान **हेनरी फेयोल** ने किया। इस विचारधारा को प्रक्रिया प्रबंधन भी कहा जाता है। जिस प्रकार टेलर को 'वैज्ञानिक प्रबंधन का पिता कहा जाता है, ठीक उसी प्रकार फेयोल को 'प्रशासनिक प्रबन्ध' का पिता कहा जाता है। इन्होंने प्रबंधन का ज्ञान फ्रांस की कई बड़ी कम्पनियों में प्रबंधक के रूप में काम करके प्राप्त किया।

फेयोल ने अपना कैरिअर 1860 में फ्रांस के एक कम्पनी में जूनियर इंजीनियर के रूप में प्रारंभ किया। सन 1872 मे उन्हें वरिष्ठ प्रबंधक तथा 1888 में उसी कम्पनी में मुख्य कार्यकारी अधिकारी नियुक्त कर लिया गया। जब वे इस कम्पनी में आये तब कम्पनी की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी और कम्पनी दिवालीयापन के कगार पर थी। उन्होंने अपनी योग्यता के बल पर न केवल इस कम्पनी को दिवालिया होने से बचाया बल्कि उसे एक समृद्ध कम्पनी में बदल दिया।

फेयोल अनेक प्रयोगों के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रबंधन क्रिया, लेखांकन, विक्रय, उत्पादन, तथा वित्त संबंधी क्रियाओं से भिन्न एक ऐसी विशेष क्रिया है जिसको सभी संगठनों (व्यवसायिक तथा गैर–व्यवसायिक) में एक ही तरह से पूरा किया जाता है।

फेयोल ने इस निष्कर्ष से प्रबंधन की दो विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं–

(1) प्रबंधन एक क्रिया है जो अन्य व्यवसायिक क्रियाओं से भिन्न है तथा

(2) प्रबंधन में सार्वभौमिकता का गुण है।

प्रथम विषेशता का स्पष्टीकरणः फेयोल ने सभी व्यवसायिक क्रियाओं को 6 भागों में विभक्त किया है जिसमें से प्रबंधक्रिया भी एक है। ये 6 क्रियाएँ निम्नलिखित हैंः

(i) तकनीकी क्रियाएँः उत्पादन संबंधी क्रियाएँ।

(ii) वाणिज्यिक क्रियाएँः क्रय विक्रय संबंधी क्रियाएँ।

(iii) वित्तिय क्रियाएँः वित संबंधी क्रियाएँ

(iv) सुरक्षा क्रियाएँः सम्पत्ति एवं लोगों की सुरक्षा संबंधी क्रियाएँ।

(v) लेखांकन क्रियाएँ : लेखे रखने संबंधी क्रियाएँ।

(vi) प्रबन्धकीय क्रियाएँः प्रबन्धकीय क्रियाओं में नियोजन, संगठन, समन्वय, आदेश देना एवं नियंत्रण आदि को सम्मिलित किया जाता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रबंधन एक क्रिया है जिसे पूरा करने के लिए नियोजन, संगठन, नियुक्तियां, निर्देशन, नियंत्रण आदि उप–क्रियाओं को सम्पन्न किया जाता है।

दूसरी विशेषता का स्पष्टीकरणः फेयोल ने यह स्पष्ट किया कि प्रबंधन एक ऐसी क्रिया है जो व्यावसायिक तथा गैर–व्यावसायिक सभी संगठनों में समान रूप से लागू होती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि प्रबंधन के अंतर्गत जो भी किया जाता है वह सभी संगठनों में समान रूप से किया जाता है। फेयोल ने प्रबंधन के पांच कार्य और चौदह सिद्धान्त प्रस्तुत किये, और कहा कि जो संगठन इनकी पालना करेगा, उसे सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

- **फेयोल के अनुसार प्रबंधन के कार्य**
  नियोजन, संगठन, समन्वय, आदेश देना तथा नियंत्रण
- **फेयोल के अनुसार प्रबंधन के सिद्धान्त**
  - कार्य विभाजन
  - अधिकार एवं दायित्व
  - अनुशासन
  - आदेश की एकता
  - निर्देश की एकता
  - व्यक्तिगत हित पर सामान्य हित को प्राथमिकता
  - कर्मचारियों को उचित पारिश्रमिक
  - प्रभावपूर्ण केन्द्रिकरण
  - व्यवस्था अथवा क्रमबद्धता
  - समता
  - कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व
  - पहल–शक्ति
  - सोपान की श्रृंखला तथा समतल संपर्क
  - सहयोग की भावना
  - प्रशासनिक प्रबंधन का मूल्यांकन

महत्व : फेयोल ने प्रबंधन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके द्वारा प्रस्तुत कुछ मुख्य विचार, जिनसे प्रबंधन जगत को बहुत लाभ हुआ है निम्नलिखित हैंः

- प्रबंधन की सार्वभौमिकता
- प्रबंधक पैदा नहीं होते, बनाए जाते हैं
- केवल अधिकारों को सौंपा जा सकता है उत्तरदायित्व को नहीं
- एक प्रबंधक के नियंत्रण का विस्तार चार या छः से अधिक नहीं होने चाहिए
- एक व्यक्ति को केवल एक ही कार्य करना चाहिए।

- ऊपर से नीचे तक अधिकारों का स्पष्ट बंटवारा होना चाहिए

आलोचना : कुछ प्रबंधन विषेशज्ञों ने फेयोल के विचारों का विरोध किया है। विरोध के समर्थन में उन्होंने निम्नलिखित बातें कहीं हैः–

- फेयोल द्वारा प्रस्तुत किए गए सिद्धान्तों में विरोधाभास है।
- ये सिद्धान्त अध्ययन पर आधारित नहीं हैं।
- ये सिद्धान्त संगठन का मशीनीकरण करते हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि प्रशासनिक प्रबंधन की आलोचना अधिक व्यावहारिक नहीं है। फेयोल द्वारा प्रस्तुत किए गए सिद्धान्त आज भी अटल हैं और प्रबन्धकों का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

- **टेलर एवं फेयोल का तुलनात्मक अध्ययन**

टेलर एवं फेयोल दोनों ही प्रख्यात विशेषज्ञ हुए हैं। प्रबंधन के क्षेत्र में दोनों का अमूल्य योगदान रहा है। टेलर एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है जिन्होंने अपना जीवन एक श्रमिक के रूप में प्रारंभ किया था। यही कारण है कि उन्होंने श्रमिकों को काम करते हुए नज़दीक से देखा है। उनकी समस्याओं को समझा है तथा उनकी कार्यकुशलता के स्तर को पहचाना है। श्रमिकों की कार्यकुशलता के संबंध में टेलर ने अनेक प्रयोग किए और अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि एक श्रमिक को जितना काम करना चाहिए उससे बहुत कम काम करता है। श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए टेलर ने अनेक सुझाव दिए। टेलर के अध्ययन का केन्द्र श्रमिकों की कार्यकुशलता था। यही कारण है कि इन्हें कुशलता विशेषज्ञ के नाम से जाना जाता है।

इसके विपरीत, फेयोल ने अपना जीवन एक उच्च प्रबंधक के रूप में आरंभ किया। यही कारण है कि उन्होंने उच्च प्रबन्धकों की समस्याओं को नज़दीक से देखा व समझा है। उच्च प्रबन्धकों की समस्याओं को दूर करने के लिए फेयोल ने अनेक अमूल्य सिद्धान्तों को जन्म दिया। फेयोल के अध्ययन का केन्द्र उच्च प्रबन्धकों की समस्यों होने के कारण ही इन्हें प्रशासन विषेशज्ञ के नाम से जाना जाता है।

दोनों प्रबंधन विशेषज्ञों के प्रबंधन जगत में दिए गए योगदान में कुछ समानताएँ और कुछ असमानताएँ हैं। ये निम्नलिखित हैंः–

- **समानताएँ**

टेलर व फेयोल के विचारों में निम्नलिखित बातों के संबंध में समानता पाई जाती हैः–

(1) **प्रबन्धकीय समस्याओं का समाधानः** दोनों प्रबंधन विषेशज्ञों ने अपने–अपने अनुभवों एवं प्रयोगों के आधार पर प्रबन्धकीय समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किए हैं। दोनों द्वारा प्रस्तुत किए गए समाधान सिद्धांतों के रूप में विद्यमान है।

(2) **व्यावहारिक पक्ष पर बलः** टेलर व फेयोल दोनों का वास्तविक कार्य से सीधा संबंध था। यही कारण है कि उन्होंने हर कार्य के व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया है। अर्थात

जो सुधार संभव थे उन्होंने उन्हीं के संबंध में अपने सुझाव दिए हैं। उन्होंने ऐसा कोई भी सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किया जिसको व्यावहारिकता में न लाया जा सके।

(3) **अच्छे औद्योगिक संबंधों पर बलः** दोनों का यह मत है कि यदि स्वामी व श्रमिकों में अच्छे संबंध स्थापित हो जाएं तो उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

- **असमानताएँ**

टेलर व फेयोल के विचारों में निम्नलिखित मतभेद हैं:

(1) **सिद्धान्तों का क्षेत्रः** टेलर के सिद्धान्त उत्पादन क्रियाओं से संबंधित हैं जबकि फेयोल के सिद्धान्त सभी प्रकार की प्रबन्धकीय क्रियाओं से संबंधित हैं।

(2) **सिद्धान्तों का नामः** टेलर ने अपने सिद्धान्तों को वैज्ञानिक प्रबंधन के सिद्धान्तों के नाम से पुकारा है। दूसरी ओर, फेयोल ने अपने सिद्धान्तों को प्रशासन का सामान्य सिद्धान्त कहा है।

(3) **सिद्धान्तों का उद्देश्यः** टेलर के सिद्धान्तों का उद्देश्य श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि करना है। फेयोल के सिद्धान्तों का उद्देश्य प्रबन्धकों की प्रशासनिक कार्यकुशलता में वृद्धि करना है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि आज प्रबंधन जगत में अनेक परिवर्तन आ चुके हैं। इन्हीं परिवर्तनों के कारण टेलर के सिद्धान्त कुछ नज़र आने लगे हैं। दूसरी ओर, फेयोल के सिद्धान्त आधुनिक परिवेश में एकदम खरे उतरते हैं। लेकिन फिर भी टेलर के योगदान को कम करके नहीं आंका जा सकता, क्योंकि उनके सिद्धान्त भी किसी न किसी रूप में प्रबन्धकों का मार्गदर्शन अवश्य करते हैं।

(iv) **नौकरशाही प्रबंध** – इस विचारधारा का प्रतिपादन जर्मनी के मैक्स वैबर ने किया। वैबर के अनुसार, प्रबन्धकीय अनियिमताओं के समाप्त करने के लिए सख्त नियम बनाए जाने चाहिए। बड़े संगठन में नौकरशाही प्रबंधन से ही सफलता मिलती है।

- **नौकरशाही प्रबंधन की विषेशताएँ**

नौकरशाही प्रबंधन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

(1) **उचित कार्य विभाजनः** उचित कार्य विभाजन का अभिप्राय, विशिष्टीकरण के आधार पर कार्य का निपटान करने से है। अर्थात जो व्यक्ति जिस कार्य का विशेषज्ञ हो उसे वही कार्य सौंपना चाहिए।

(2) **स्पष्ट अधिकार श्रृंखलाः** वरिष्ठ–अधीनस्थ संबंधों को स्पष्टतः परिभाषित कर दिया जाना चाहिए। प्रत्येक कर्मचारी अपने तथा अपने अधिनस्थ द्वारा लिए निर्णय के लिए अपने बॉस के प्रति उत्तरदायी होता है।

(3) **नियमों की व्यवस्थाः** संगठन के अंदर लिए जाने वाले कार्यों के लिए स्पष्ट नियम बनाये जाने चाहिएं तथा उनका सख्ती से पालन भी किया जाना चाहिए।

(4) **लोगों में व्यक्तिगत संबंधः** इस प्रबंधन विचारधारा के अंतर्गत व्यक्तिगत संबंधों को अनदेखा किया जाता है। पुरस्कार संबंधों के आधार पर नहीं बल्कि कुशलता के आधार पर दिए जाने चाहिए।

(5) **पदोन्नति का आधार योग्यता:** इस प्रबंधन विचारधारा के अनुसार, पदोन्नति का आधार योग्यता होना चाहिए।

इस प्रबंधन विचारधारा के गुण एवं दोष निम्नलिखित हैं:

गुण

- श्रम–विभाजन से विशेषज्ञता प्राप्त होती है।
- कर्मचारियों के व्यवहार में नियमितता आती है।
- पदोन्नति का आधार योग्यता को माने जाने के कारण कर्मचारियों की कुशलता में वृद्धि होती है।
- संगठन लगातार चलता रहता है क्योंकि व्यक्ति पर नहीं पदों पर ध्यान दिया जाता है।

दोष:

- कागज़ी कार्यवाही में वृद्धि।
- लाल फीताशाही में वृद्धि।
- आपसी संबंधों की भावना का कोई महत्व नहीं।
- श्रमिकों मे क्षमता का अभाव।
- श्रमिकों द्वारा परिवर्तन का विरोध।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि नौकरशाही प्रबंधन का प्रयोग केवल उन संगठनों में किया जा सकता है जहां परिवर्तनों का प्रभाव न पड़ता हो अथवा परिवर्तन धीमी गति से होते हों अथवा परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता हो। ऐसा प्रायः सरकारी विभागों तथा बड़े व्यवसायिक संगठनों में होता है। दूसरी ओर, एक परिवर्तनशील व्यवसायिक संगठन में नौकरशाही प्रबंधन को नहीं अपनाया जा सकता।

नव–परंपरागत दृष्टिकोण

प्रबंधन विचारधारा का नव–परंपरागत दृष्टिकोण सन 1930 के आस–पास विकसित हुआ। इस दृष्टिकोण का आधार परंपरागत दृष्टिकोण ही है। इसके अंतर्गत परंपरागत दृष्टिकोण को कुछ सुधारों के साथ प्रस्तुत किया गया है। परंपरागत तथा नव–परंपरागत दृष्टिकोण में मुख्य अंतर मानवीय संसाधन के साथ किए जाने वाले व्यवहार का लेकर है। जहां एक ओर, परंपरागत दृष्टिकोण के अंतर्गत, मानवीय संसाधन को अनदेखा करते हुए काम तथा भौतिक संसाधनों को महत्व दिया जाता था, वहीं दूसरी ओर, नव–परंपरागत दृष्टिकोण में मानवीय संसाधन के महत्व का समझा गया है। नये दृष्टिकोण के अंतर्गत व्यक्तिगत तथा समूहों के महत्व पर जोर दिया गया है। इस दृष्टिकोण के दो आधारभूत स्तंभ हैं: मानवीय संबंध दृष्टिकोण तथा व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण।

(i) मानवीय संबंध दृष्टिकोण

टेलर का वैज्ञानिक प्रबंधन दृष्टिकोण तथा फेयोल का प्रशासनिक प्रबंधन दृष्टिकोण दोनों ही उत्पादन कुशलता तथा कार्य स्थल पर मैत्रीपूर्ण व्यवहार स्थापित करने में असफल रहे। इनकी असफलता का मुख्य कारण मानवीय संसाधन की ओर ध्यान न दिया जाना था। मानवीय संबंध दृष्टिकोण की उत्पत्ति का भी यही कारण है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **एल्टन मेयो** ने पहली बार मानवीय संबंध दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। इस दृष्टिकोण को अंतिम रूप देने के लिए मेयो ने अपने सहयोगियों के साथ कुछ प्रयोग किए। इन प्रयोगों को हॉथोर्न प्रयोग के नाम से जाना जाता है।

ये प्रयोग 1927 से 1932 के यू.एस.ए. की वैस्टर्न इलैक्ट्रिक कम्पनी के हॉथोर्न प्लॉट में हुए थे। इन प्रयोगों के हॉथोर्न में होने के कारण ही इन्हें हॉथोर्न प्रयोग कहा जाता है। इस प्लॉट में टेलिफोन के पुर्जे तैयार किये जाते थे जहां 29000 श्रमिक काम करते थे। अपने प्रयोगों के दौरान मेयो एवं साथियों ने निम्नलिखित तत्वों का अध्ययन कियाः–

- रोशनी एवं उत्पादकता में संबंध
- कार्य की दशाओं एवं उत्पादकता में संबंध (कार्य की दशाओं में रोशनी, हवा, विश्राम की अवधि, विश्राम की बारंबारता आदि को सम्मिलित किया जाता है।
- अनौपचारिक समूह एवं उत्पादकता में संबंध तथा
- आर्थिक प्रेरणाओं एवं उत्पादकता में संबध

इन प्रयोगों का यह परिणाम निकला कि उत्पादकता का संबंध उतना कार्य की दशाओं से नहीं है, जितना कि भावनात्मक तत्वों से है। मेयो तथा उसके साथी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कार्य के समय श्रमिकों के मध्य अनौपचारिक संबंध महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। उन्होंने कहा कि श्रमिक केवल उत्पादन का साधन नहीं हैं बल्कि वह एक सामाजिक प्राणी भी है जिसकी कुछ इच्छाएँ, भावनाएँ एवं प्रवृत्तियां हैं। यदि श्रमिक को एक सामाजिक प्राणी की दृष्टि से देखा जाए तो वह निश्चित रूप से अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। उन्होंने बताया कि उच्च उत्पादन एवं कर्मचारी सन्तुष्टि परस्पर एक–दूसरे पर आश्रित हैं। मानवीय संबंध का अर्थ भी यही है।

मानवीय संबंध दृष्टिकोण के मूल्यांकन के लिए इसके महत्व एवं सीमाओं का अध्ययन किया जाना जरुरी है। इसका वर्णन इस प्रकार हैः–

महत्व अथवा योगदान

इस दृष्टिकोण का महत्व इसके अंतर्गत दिए गए निम्नलिखित सुझावों से स्पष्ट होता हैः

- कार्य की दशाओं एवं उत्पादकता में कोई संबंध नहीं है
- एक श्रमिक की कार्यकुशलता पर अवित्तिय पुरस्कारों का, अच्छा प्रभाव पड़ता है
- जनतंत्रीय नेतृत्व शैली उत्पादन प्रधान शैली से अधिक प्रभावशाली है
- कारखाना व्यक्तियों का स्थान मात्र नहीं है बल्कि यह एक सामाजिक संगठन है। अतः श्रमिकों को सामाजिक सन्तुष्टि प्रदान की जानी चाहिए
- श्रमिकों के मनोविज्ञान का बहुत महत्व होता है। अतः उसे समझा जाना चाहिए

- श्रमिको को निर्णयों में भागीदार बनाना चाहिए
- श्रमिकों के मान–सम्मान का ध्यान रखा जाना चाहिए
- कार्य के दौरान नियमित अंतराल पर विश्राम की व्यवस्था होनी चाहिए
- श्रमिकों को समूह में कार्य करने से अधिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है
- श्रमिकों को सभी सूचनाओं से अवगत रखना चाहिए

सीमाएँ

इस दृष्टिकोण की मुख्य सीमाएँ निम्नलिखित हैं:

- इस दृष्टिकोण में मानवीय तत्व पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया है तथा शेष तत्वों को अनदेखा कर दिया गया है।
- यह मानना कि व्यवसायिक संगठन को एक परिवार के रूप में स्थापित किया जा सकता है गलत है, क्योंकि इसमें अनेक धर्मों, जातियों व रुचियों के लोग काम करते हैं। ये लोग अलग–अलग समूह तो बना लेते हैं, परिवार नहीं।
- सभी श्रमिकों को अवित्तिय पुरस्कारों से खुश करना असंभव है।
- यह मानना कि लोग अनौपचारिक समूहों में अधिक सन्तुष्ट रहते हैं, गलत है। इस संदर्भ में कुछ शोधकर्ताओं का कहना है कि श्रमिक कारखानों में काम करने आते हैं न कि अनौपचारिक समूह बनाने।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मानवीय संबंध दृष्टिकोण का केंद्र बिंदु व्यक्ति है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, एक सन्तुष्ट व्यक्ति की उत्पादकता अपेक्षाकृत अधिक होती है।

(ii) **व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण**

मानवीय संबंध प्रबंधन दृष्टिकोण में कहा गया है कि सन्तुष्टि व उत्पादकता में सीधा संबंध है अर्थात श्रमिक जितने अधिक सन्तुष्ट होंगे उतना ही अधिक उत्पादन करेंगे। व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण का ही एक सुधरा हुआ रूप है। इसके अंतर्गत मानवीय संबंधों के स्थान पर मानव के व्यवहार का अध्ययन किए जाने की बात कही गई है। इस दृष्टिकोण के प्रवर्तक डगलस मेक्ग्रेगर, चस्टर आई. बरनार्ड, रेनसिस लिकर्ट, क्रिस आर्गरिस, फ्रैडरिक हर्जबर्ग, वारेन जी. बेनिस, क्रिस पार्करा फोलेट, अब्रहम माशलो, तथा राबर्ट टेनिन बॉम हैं। व्यवहारात्मक वैज्ञानिकों का मुख्य योगदान नेतृत्व, संदेशवाहन अभिप्रेरणा, संगठनात्मक परिवर्तन, संगठनात्मक झगड़े आदि क्षेत्रों में रहा। व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण 1940 के बाद प्रचलन में आया।

व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण के कुछ प्रवर्तकों द्वारा किए गए योगदान का विवरण इस प्रकार है:–

(क) अब्राहम माशलो : माशलो ने आवश्यकता–प्राथमिकता सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त के अनुसार, मनुष्य की आवश्यकताएं अनेक होती हैं तथा उनका क्रम

निर्धारित किया जा सकता है। जैसे ही मनुष्य की पहली आवश्यकता पूरी होती है वह दूसरी के बारे में चिंतित हो जाता है और यह क्रम चलता रहता है। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मनुष्य की आवश्यकताएं ही उसके लिए अभिप्रेरण का काम करती है।

(ख) **फ्रेडरिक हर्जबर्ग**: हर्जबर्ग के अनुसार, अभिप्रेरक तत्वों के साथ–साथ अनुरक्षक तत्व भी श्रमिकों के उत्साह में वृद्धि करते हैं।

(ग) **डगलस मैक्ग्रेगर'**: मैक्ग्रेगर ने अभिप्रेरणा की परंपरागत विचारधारा को 'एक्स' विचारधारा तथा आधुनिक विचारधारा को 'वाई' विचारधारा के रूप में प्रस्तुत किया।

(घ) **रेनसिस लिकर्ट**: अपने शोधकार्य के दौरान लिकर्ट ने अनेक प्रबन्धकों से संपर्क स्थापित किया और निष्कर्ष के रूप में चार मॉडल प्रस्तुत किये। इन्हें लिकर्ट की प्रबंधप्रणाली कहते हैं।

(ङ) **राबर्ट टेनिनबॉम**: टेनिनबॉम ने नेतृत्व व्यवहार की निरंतरता का प्रतिपादन किया। टेनिकवॉम के अनुसार, ऐसा संभव नहीं है कि किसी एक नेतृत्व शैली को सभी परिस्थितियों में लागू किया जा सके। इसलिए इन्होंने एक–दो नहीं बल्कि सात नेतृत्व शैलियों का वर्णन किया।

व्यवहारात्मक विज्ञान दृष्टिकोण के प्रवर्तकों ने मानव व्यवहार का अध्ययन करने के बाद निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए:

- कर्मचारियों को नीति–निर्धारण में हिस्सा प्रदान करना चाहिए
- कर्मचारियों से मानवता का व्यवहार करना चाहिए
- प्रबंधन का कर्तव्य है कि स्वस्थ वातावरण प्रदान करे
- थोपे गए नियंत्रण के स्थान पर स्वतः नियंत्रण की पद्धति को अपनाना चाहिए

आधुनिक दृष्टिकोण

प्रबंधन विचारधारा का आधुनिक दृष्टिकोण सन 1950 के आस–पास विकसित हुआ। इसके अंतर्गत परंपरागत तथा नव–परंपरागत दृष्टिकोण को कुछ सुधारों के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टिकोण के तीन आधारभूत स्तंभ हैं: संख्यात्मक दृष्टिकोण, प्रणाली दृष्टिकोण तथा आकस्मिक दृष्टिकोण।

(i) **प्रणाली दृष्टिकोण**

यह प्रबंधन का नवविकसित दृष्टिकोण है जिसका उदय 1960 में हुआ। इसका प्रतिपादन **चेस्टर आई. वरनार्ड, हरबर्ट ए. साइमन** व साथियों ने किया। प्रणाली का अभिप्राय छोटी–छोटी एक–दूसरे से संबंधित इकाईयों के समूह से है। विभिन्न इकाईयों के समूह अर्थात एक पूरी ईकाई को प्रणाली तथा छोटी–छोटी ईकाइयों को व्यक्तिगत रूप में उप–प्रणाली कहते हैं। सभी छोटी–छोटी इकाइयां स्वयं में स्वतंत्र होती है। लेकिन संबंधित प्रणाली अन्य उप–प्रणालीयों से किसी न किसी रूप में जुड़ी होती है। सभी उप – प्रणाली एक–दूसरे को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए

मानो कि स्कूटर एक प्रणाली है जिसके इंजन, शाफ्ट, गियर, पहिए, बॉडी आदि अनेक उप–प्रणालीयां हैं। ये सभी उप–प्रणालीयां एक–दूसरे से संबंधित हैं और किसी एक के फेल हो जाने पर मुख्य प्रणाली काम करना बंद कर देती हैं। अतः मुख्य प्रणाली की सफलता उप–प्रणालीयों के सहयोग एवं कुशलता पर निर्भर करती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक प्रणाली का अभिप्राय आपस में संबंधित अनेक भागों से है जो एक निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए साथ–साथ कार्य करते हैं।

प्रणाली दृष्टिकोण के अनुसार, पूरा संगठन एक प्रणाली है और इसके विभिन्न उसकी उप–प्रणालीया। सभी उप–प्रणालीया मिलकर काम करती हैं तभी संगठन के उद्देश्य को पूरा किया जा सकता है। अतः जब प्रबंधन एक उप – प्रणाली के संबंध में कोई निर्णय लेता है तो यह देख लेना चाहिए कि उस निर्णय का अन्य उप–प्रणालियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

(ii) **आकस्मिकता अथवा परिस्थिति मूलक दृष्टिकोण**

आक्समिकता दृष्टिकोण प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण का उदय 1970 के आस–पास हुआ। इसके अनुसार, प्रबन्धकों को निर्णय परिस्थितियों के अनुसार लेना चाहिए, न कि सिद्धान्त के अनुसार। इसका अभिप्राय यह है कि कि कोई भी ऐसा सिद्धान्त/सूत्र/प्रबन्धकीय कार्यवाही नहीं हो सकती जो सभी परिस्थितियों में उपयुक्त रहे। इसका मुख्य कारण है वातावरण की परिवर्तनशीलता। यहां वातावरण का अभिप्राय उन सभी तत्वों के योग से है जिनसे एक संगठन प्रभावित होता है। ये तत्व आंतरिक व बाध्य दोनों प्रकार के होते हैं। आंतरिक तत्वों में उद्देश्य, नीतियां, संगठन ढांचा, प्रबंधन सूचना प्रणाली आदि को सम्मिलित किया जाता है। जबकि बाध्य तत्वों में ग्राहक, पूर्तीकर्ता, प्रतियोग, सरकारी नीतियां, राजनैतिक ढांचा, वैधानिक प्रणाली आदि सम्मिलित होते है। ये सभी तत्व परिवर्तनशील हैं इसलिए संगठन के वातावरण को परिवर्तनशील कहा जाता है।

प्रणाली दृष्टिकोण संगठन एवं वातावरण में संबंध स्थापित करने में असफल रहा है। आकस्मिक दृष्टिकोण में इसी कमी को पूरा करने का प्रयास किया गया है। अतः प्रबन्धकों का आधारभूत कर्तव्य है कि वे वातावरण का विश्लेषण करें और विश्लेषण के आधार पर निर्णय लें। प्रबन्धकों को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि किसी कार्य को करने की कोई एक विधि हमेशा उपयुक्त नहीं हो सकती। किसी समस्या के हल के लिए एक परिस्थिति में कोई विशेष विधि उपयुक्त हो सकती है जबकि किसी अन्य परिस्थिति में नहीं। जहां तक प्रबंधन के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रश्न है वे प्रबन्धकों का मार्गदर्शन करते हैं तथा वर्तमान गतिशील वातावरण में उनसे यह आशा करना कठिन नहीं है कि ये सिद्धान्त सभी परिस्थितियों में उपयुक्त होंगे।

आकस्मिक दृष्टिकोण की विशेषताएँ

- प्रबन्धकीय कार्यवाही पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है

- प्रबन्धकीय कार्यवाही परिस्थितियों के अनुसार बदलती है
- संगठन का वातावरण आवश्यक होता है

आकस्मिक दृष्टिकोण की सीमाएँ

- यह कहना पर्याप्त नहीं है कि प्रबन्धकीय कार्यवाही परिस्थिति पर निर्भर करती है। यह बताए जाने की आवश्यकता है कि किस परिस्थिति में क्या किया जाना चाहिए।
- एक परिस्थिति अनेक तत्वों से प्रभावित हो सकती है। इन सभी तत्वों का विश्लेषण किया जाना कठिन है। उदाहरण के लिए, नेतृत्व की अनेक शैलियां हैं लेकिन किसी एक शैली को सभी परिस्थितियों में लागू नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार अभिप्रेरण व नियंत्रण की भी अनेक विधियां हैं लेकिन किसी एक विधि को ही सभी परिस्थितियो में लागू नहीं किया जा सकता।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि यह दृष्टिकोण प्रबन्धकों को सर्तक रहने का सुझाव देता है और कहता है कि परिस्थितियों के अनुसार अपने दृष्टिकोण तथा कार्यप्रणाली में परिवर्तन लाना चाहिए।

1.9 सारांश

प्रबंधन प्रबन्धकीय निर्णयों को लेने तथा उनको क्रियान्वित करने की प्रक्रिया है। प्रबंध मूलतः मनुष्य मशीन, मुद्रा, सामग्रियों तथा विधियों जैसे उत्पादन के विभिन्न घटकों का वर्णन करता है। एक प्रबंधक की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस कार्यक्षमता के साथ उत्पादन के इन सीमित साधनों का प्रयोग करता है। उत्पादन के इन साधनों के अनुकूलतम उपयोग में ही प्रबंधन की सफलता का रहस्य निहित है। प्रबंधन को मानव शरीर में मस्तिष्क के साथ तुलना करके देखा जा सकता है। बिना मस्तिष्क के मानवीय शरीर मात्र हड्डियों तथा स्नायतंत्र का ढांचा सा बनकर रह जाता है तथा कुछ भी प्राप्त करने में समर्थ नहीं रहता। ठीक इसी प्रकार प्रबंधन के बिना एक सामग्री, मुद्रा, मशीन, उपकरण जैसे प्रत्येक साधन का ढेर सा होकर रह जाता है। क्योंकि वह केवल प्रबंधन ही है जो उसको कार्य रूप में लाता है। वर्तमान में संगठनों की गतिविधियां बढ़ने से प्रबंधन का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। तकनीकी उन्नयन नित नई चुनौतियों को उत्पन्न कर रहा हे। अतः प्रबंधन की सफलता प्रबंधक की योग्यता, क्षमता तथा अनुभव पर निर्भर करती हे। मानवीय संबंधों के पैचीदेपन के कारण यह आवश्यक हो गया है कि सफलता प्राप्त करने हेतु प्रबंधक को प्रबंधन के सिद्धान्तों तथा तकनीकों की पर्याप्त जानकारी हो।

1.10 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रबंधन से क्या अभिप्राय है?
2. प्रबंधन प्रक्रिया से क्या आशय है?
3. प्रबंधन प्रक्रिया की सार्वभौमिक अवधारणा के बारे मे बताइए।
4. प्रबंधन की महत्ता का समझाइए।
5. नौकरशाही प्रबंधन क्या है?
6. एफ.डब्लयू. टेलर को वैज्ञानिक प्रबंधन का पिता क्यों कहा जाता है?
7. व्यवहारवादी दृष्टिकोण के बारे में बताइए।
8. प्रबंधकीय भूमिकाओं को संक्षेप में बताइए।
9. प्रबंधन की अंतर्वेयक्तिक भूमिकाएं क्या है?
10. सूचनात्मक भूमिकाएं समझाइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 'सोपान श्रृंखला' का सिद्धान्त क्या है ? रेखाचित्र की सहायता से 'मिलान पट्टी' की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. प्रबंधन का वह सिद्धान्त कौन–सा है जिसके अनुसार एक ही उदेश्य की पूर्ती करने वाली सभी एक–सी क्रियाएं एक अधिकारी के अधीन ही होनी चाहिए तथा उसके लिए एक ही योजना होनी चाहिए? सिद्धान्त को उपयुक्त उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
3. 'आदेश की एकता' सिद्धान्त को संक्षेप में समझाइये। यह 'दिशा की एकता' के सिद्धान्त से किस प्रकार भिन्न है?
4. 'समतल संपर्क' क्या है? एक चित्र द्वारा दिखाइए।
5. प्रबंधन का कौन–सा सिद्धान्त कर्मचारियों के प्रति 'न्याय एवं उदारता' के व्यवहार की बात कहता है? प्रबंधन में यह सिद्धान्त क्यों आवश्यक है?
6. यदि एक संगठन भौतिक तथा मानवीय संसाधनों के लिए सही स्थान उपलब्ध नहीं कराता तो किस सिद्धान्त की अवहेलना होती है? इसके क्या परिणाम होते हैं

7. प्रबंधन विचारधारा के विकास के विभिन्न परंपरागत दृष्टिकोणों की विवेचना कीजिए।
8. वैज्ञानिक प्रबंधन दृष्टिकोण के विकास में टेलर की भूमिका की विवेचना कीजिए।
9. प्रबंधन क्षेत्र में टेलर के योगदान को लिखिए।
10. वैज्ञानिक प्रबंधन में फ्रैंक व लिलियन गिलब्रेड के योगदान की विवेचना कीजिए।
11. प्रबंधन के क्षेत्र में हेंनरी फेयोल के योगदान को संक्षेप में समझाइये।
12. वैज्ञानिक प्रबंधन का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
13. टेलर व फेयोल के प्रबंधकीय दृष्टिकोण में अंतर स्पष्ट कीजिए।
14. नौकरशाही प्रबंधन से आपका क्या अभिप्राय है? इसकी विशेषताएँ क्या है? इसका मूल्यांकन कीजिए।
15. प्रबंधन विचारधारा के विकास में मानवीय संबंधों एवं व्यवहारात्मक विज्ञान के योगदान का वर्णन कीजिए।
16. प्रबंधन के आधुनिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन कीजिए।

1.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

- देसाई, वसंत (2009) प्रबंधन के सिद्धांत, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
- अग्रवाल, आर. सी. एवं गुप्ता, संजय (2016) प्रबंध के सिद्धांत, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, आगरा
- Robbins, Stephen P., Coulter, M. &Vohra, N. (2011). Management. Pearson, New Delhi
- Tripathi, P.C. & Reddy, P.N. (2008), Principles of Management, 4th Edition, the McGraw Hill, New Delhi

इकाई – II : नियोजन एवं निर्णयन

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 नियोजन का अर्थ एवं विशेषताएँ
2.3 नियोजन का महत्व एवं सीमाएँ
2.4 नियोजन प्रक्रिया एवं नियोजन के प्रकार
2.5 निर्णयन का अर्थ एवं विशेषताएँ
2.6 निर्णयन प्रक्रिया
2.7 उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन
2.8 सारांश
2.9 बोध प्रश्न
2.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- नियोजन का अर्थ, विशेषता, महत्व एवं सीमाओं को समझ पायेंगे।
- नियोजन की प्रक्रिया एवं प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।
- निर्णयन का अर्थ एवं प्रक्रिया को समझ पायेंगे।
- उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन को स्पष्ट कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

नियोजन प्रबंधन का आधारभूत कार्य है। इससे ही प्रबंधन के अन्य कार्य आरम्भ होते हैं। जब तक नियोजन द्वारा उद्देश्य एवं उन्हें प्राप्त करने के ढंग का निर्धारण नहीं किया जाता, तब तक संगठन, नियुक्तिकरण, निर्देशन व नियंत्रण सभी प्रबन्धकीय कार्य अर्थहीन होते हैं।

निर्णय लेना प्रत्येक प्रबंधक का एक महत्वपूर्ण कार्य है। नियोजन के अंतर्गत इस बात पर विचार किया जाता है कि क्या करना है, कैसे करना है, कब करना है और किसके द्वारा किया जाना है। इन सब प्रश्नों के उत्तर के रुप में एक प्रबंधक के पास अनेक विकल्प उपलब्ध होते हैं। जब प्रबंधक अनेक विकल्पों का चयन करता है तो इस चयन को निर्णय

कहा जाता है तथा इस अंतिम निर्णय तक पहुंचने के लिए जिस प्रकिया को अपनाया जाता है उसे निर्णयन कहते हैं।

निर्णयन सभी प्रबन्धकीय क्रियाओं, जैसे – नियोजन, संगठन, नियुक्तिकरण, निर्देशन तथा नियंत्रण में आवश्यक है अर्थात सभी प्रबन्धकीय कार्यो का निष्पादन निर्णयन के माध्यम से किया जाता है। प्रबंधक जब समस्याओं का सामना करते हैं और निर्णयन के द्वारा उनका समाधान ढूंढते हैं तो उन्हें दोहरा लाभ प्राप्त होता है। प्रथम–वे प्रभावपूर्ण समाधान ढूंढ कर संस्था की सेवा करते हैं तथा द्वितीय, उनको व्यक्तिगत संतुष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि एक संस्था की सफलता प्रबंधक पर निर्भर करती है और प्रबंधक तभी सफल होता है जब उसमें प्रभावपूर्ण निर्णय लेने का गुण विद्यमान हो।

2.2 नियोजन का अर्थ एवं विशेषताएँ

नियोजन का अर्थ

यह प्रबंधन का वह कार्य है जिसमें लक्ष्यों का निर्धारण करने तथा उन्हें प्राप्त करने हेतु की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। इसके अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि क्या करना है? कैसे करना है? तथा कब करना है? किसके द्वारा किया जाना है? इन सभी प्रश्नों के बारे में निर्णय लेना ही नियोजन कहलाता है। इन प्रश्नों के बारे में निर्णय लेने की समस्या तब उत्पन्न होती है जब इन सभी प्रश्नों के एक से अधिक संभावित उत्तर उपलब्ध हों। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नियोजन एक चयनात्मक प्रक्रिया है।

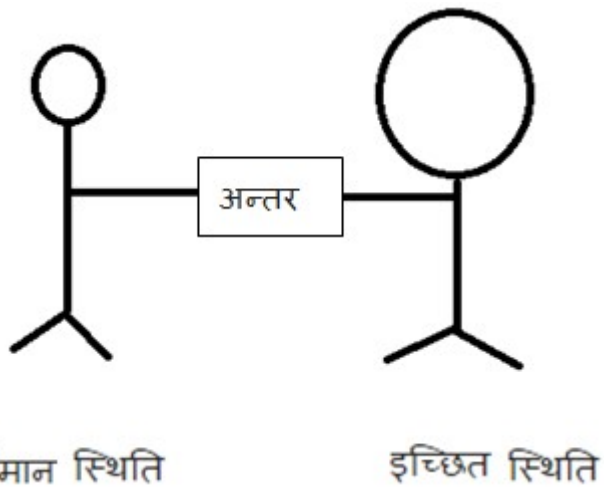

चित्र – 2.1 नियोजन

टूल बाक्स 1
नियोजन
इसका अभिप्राय कुछ करने के सोच–विचार करने से है।

नियोजन की परिभाषाएँ

नियोजन की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :

(क) **कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल** के अनुसार, 'क्या करना है, इसे कैसे करना है, इसे कब करना है और इसे किसके द्वारा किया जाना है का पूर्व निर्धारण करना ही नियोजन है।

(ख) **हैमन** के अनुसार, 'क्या किया जाना है इसका पूर्व निर्घारण ही नियोजन है'।

(ग) **एम.ई.हर्ले के** अनुसार, 'क्या करना है, इसका पूर्व निर्धारण ही नियोजन है। इसके अंतर्गत विभिन्न वैकल्पिक उद्देश्यों, नीतियों, कार्यविधियों और कार्यक्रमों में सर्वश्रेष्ठ का चयन किया जाना सम्मिलित होता है'।

नियोजन की विशेषताएँ

नियोजन की परिभाषाओं का अध्ययन करने पर इसकी विशेषताओं एवं प्रकृति के संबंध में निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती हैः–

- नियोजन का ध्यान उद्देश्य प्राप्ति पर केन्द्रित होता है। प्रबंधन का शुभारंभ नियोजन से होता है और नियोजन का शुभारंभ उद्देश्य निर्धारण से। उद्देश्य के अभाव में किसी संगठन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।
- नियोजन एक चयनात्मक प्रक्रिया है जिसमें एक से ज्यादा संगठित कार्यों में से चुनाव किया जाता है।

2.3 नियोजन का महत्व एवं सीमाएं

नियोजन का महत्व

नियोजन प्रबंधन का प्रथम एवं सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य है। इसकी आवश्यकता प्रत्येक प्रबन्धकीय स्तर पर होती है। नियोजन के अभाव में किसी भी व्यवसायिक संस्था की सभी क्रियाएं अर्थहीन हो जाएंगी। संस्थाओं के आकार एवं जटिलताओं में वृद्धि होने के कारण नियोजन का महत्व और भी बढ़ गया है। नियोजन इसलिए भी एक महत्वपूर्ण कार्य बन गया है, क्योंकि आज व्यवसाय को एक ऐसे वातावरण में जीवित रहना पड़ता है जो

अनिश्चित तथा निरंतर परिवर्तनशील है। नियोजन के अभाव में भविष्य की अनिश्चित घटनाओं का अनुमान लगाना असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है।

एक व्यवसायिक संस्था में नियोजन का महत्व अथवा लाभ निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता हैः–

(क) **नियोजन दिशा प्रदान करता हैः** नियोजन प्रक्रिया द्वारा संस्था के उद्देश्यों को सरल एवं स्पष्ट शब्दों में परिभाषित किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि सभी कर्मचारियों को एक ऐसी दिशा मिल जाती है जिसकी ओर सभी के प्रयास केन्द्रित हो जाते हैं। इस प्रकार संस्था के मुख्य उद्देश्यों को प्राप्त करने में नियोजन का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

उदाहरण के लिए, माना एक कम्पनी नियोजन के अंतर्गत अपना बिक्री लक्ष्य निर्धारित करती है। अब सभी अन्य विभागः जैसे – क्रय, उत्पादन, सेविवर्गीय, वित्त, आदि बिक्री लक्ष्य के संदर्भ में ही अपने–अपने उद्देश्य निर्धारित करेंगे। इस प्रकार सभी प्रबन्धकों का ध्यान अपने–अपने उद्देश्यों की पूर्ति की ओर केन्द्रित हो जाएगा। जब सब अपने–अपने उद्देश्यों को पूरा कर लेंगे तो बिक्री लक्ष्य को प्राप्त करना निश्चित हो जाएगा। अतः उद्देश्यों के अभाव में संगठन अपंग हो जाता है और उद्देश्य का निर्धारण नियोजन के अंतर्गत ही किया जाता है।

(ख) **नियोजन अनिश्चितता का जोखिम कम करता हैः** नियोजन सदैव भविष्य के बारे में किया जाता है और भविष्य अनिश्चित होता है। नियोजन द्वारा भविष्य में संभावित परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगाकर विभिन्न क्रियाओं को अच्छे से अच्छे ढंग से नियोजित करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार नियोजन द्वारा भावी अनिश्चितताओं से होने वाले जोखिम को कम किया जाता है।

उदाहरण के लिए, बिक्री लक्ष्य निर्धारित करने से पहले बाजार सर्वेक्षण करके यह पता लगाया जा सकता है कि कितनी नई कम्पनियां प्रतियोगिता में उतरने वाली हैं। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर भावी क्रियाओं को नियोजित करके संभावित संकट से छुटकारा पाया जा सकता है।

(ग) **नियोजन आवश्यक क्रियाओं के छूटने व अपव्ययी क्रियाओं को कम करता हैः–** नियोजन के अंतर्गत उद्देश्य प्राप्ति के लिए भावी क्रियाओं का निर्धारण किया जाता

है। फलस्वरुप, यह निश्चित हो जाता है कि कब, कहां, क्या व क्यों चाहिए। इससे अव्यवस्था व भ्रम की स्थिति समाप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में विभिन्न क्रियाओं व विभागों में समन्वय स्थापित होता है जिससे यह संभावना खत्म हो जाती है कि किसी आवश्यक क्रिया को पूरा न किया जाए और अपव्ययी क्रियाएं होती रहे। परिणामतः अपव्यय शून्य की ओर चला जाता है, कुशलता बढ़ती है और लागतें अपने न्यूनतम स्तर पर आ जाती हैं।

उदाहरण के लिए, यदि यह निश्चित हो जाए या कि किसी विशेष महीने में इतनी धनराशि की जरुरत होगी तो वित्त प्रबंधक समय पर व्यवस्था कर लेगा। इस जानकारी के अभाव में उस महीने में धनराशि आवश्यकता से कम या अधिक हो सकती है। दोनों ही स्थितियां अवांछनीय हैं। कम होने कर काम पूरा नहीं हो सकेगे और अधिक होने पर अनावश्यक रुप से नगदी पड़ी रहेगी और ब्याज की हानि होगी।

(घ) **नियोजन नवीनतम विचार विकसित करता है:** जैसा कि स्पष्ट है कि नियोजन में विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन किया जाता है। किसी कार्य को करने के लिए विभिन्न विकल्प स्वयं ही प्रबंधक के पास नहीं आ पाते बल्कि उनकी खोज करनी पड़ती है। इस प्रयास में नए–नए विचार सामने आते हैं तथा उनमें और अधिक निखार लाने के लिए उनका गहराई से अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार नियोजन से प्रबन्धकों में सोच – विचार करने की शक्ति का संचार होता है और अंततः नव–प्रवर्तन एवं सृजनशीलता को बढ़ावा मिलता है।

उदाहरण के लिए, एक कम्पनी अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहती है। यह विचार आते ही संबंधित प्रबंधक के मस्तिष्क में नियोजन की कार्यवाही शुरु हो जाएगी। वह कुछ इस प्रकार सोचेगा –

- क्या पहले वाले उत्पाद की ही कुछ और किस्में तैयार की जाएं?
- क्या थोक बिक्री के साथ–साथ फुटकर बिक्री भी की जाए?
- क्या अपने पुराने उत्पाद के लिए ही अन्य स्थानों पर शाखाएं खोली जाएं?
- क्या किसी नए उत्पाद का बाजार में लाया जाए?
- क्या अपने उत्पाद को इंटरनेट के माध्यम से भी बेचा जाए?

इस प्रकार एक के बाद अनेक विचार सामने आएंगे। ऐसा करने पर, यह प्रबंधक कुछ नया व रचनात्मक करने की सोचेगा। कम्पनी के लिए यह एक सुखद स्थिति है, जो नियोजन के माध्यम से पैदा होती है।

(ङ) **नियोजन निर्णयन में सहायक है** : निर्णयन का अर्थ निर्णय लेने की प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत विकल्पों की खोज की जाती है तथा बेहतर विकल्प का चयन किया जाता है। नियोजन के अंतर्गत निर्णयन का लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। यह विभिन्न विकल्पों के मूल्यांकन का आधार भी प्रस्तुत करता है। इस प्रकार नियोजन निर्णयन में सहायक है।

(च) **नियोजन नियन्त्रण के लिए प्रमाप निश्चित करता है** : नियोजन द्वारा संस्था के उद्देश्यों को निर्धारित करके संस्था मे कार्यरत सभी विभागों एवं व्यक्तियों को बता दिया जाता है कि उन्हें कब, क्या और किस प्रकार करना है। उनके कार्य, समय, लागत आदि के बारे में प्रमाप निश्चित कर दिए जाते हैं। नियन्त्रण में कार्य पूरा होने पर प्रमापित कार्य को असल में हुए कार्य के साथ माप करके विचलनों का पता लगाया जाता है। ऋणात्मक विचलन आने पर अर्थात कार्य इच्छानुसार पूरा न होने पर संबंधित व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराया जाता है।

उदाहरण के लिए, एक श्रमिक के लिए एक दिन में 10 ईकाई काम करना निश्चित किया जाता है (यह नियोजन की बात है) वह वास्तव में 8 इकाई काम करता है। इस प्रकार 2 इकाई का ऋणात्मक विचलन आता है। इसके लिए उसे उत्तरदायी ठहराया जाएगा। (वास्तविक कार्य का माप, विचलन की जानकारी व श्रमिक को उत्तरदाया ठहराना नियंत्रण के अंतर्गत आता है) इस प्रकार नियोजन के अभाव में नियंत्रण संभव नहीं है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र1.	प्रबन्धक का पहला कार्य क्या है?
प्र.2.	नियोजन से आप क्या समझते हैं?
प्र.3	नियोजन की किन्हीं दो विशेषताओं को बताइये।

नियोजन की सीमाएँ

नियोजन की आवश्यकता व्यवसायिक तथा गैर–व्यवसायिक दोनों प्रकार की संस्थाओं में होती है। कुछ लोगों का यह मत है कि नियोजन भविष्य के बारे में पूर्वानुमान पर आधारित होता है और भविष्य के बारे में कुछ भी निश्चित रुप से नहीं कहा जा सकता, इसलिए यह एक बेकार की प्रक्रिया है। वास्तव में, इन लोगों का इशारा नियोजन में उपस्थित होने वाली कठिनाइयों की ओर है। यदि नियोजन को सफल एवं उद्देश्यपूर्ण बनाना है, तो प्रबन्धकों को नियोजन की इन कठिनाइयों अथवा सीमाओं से अवगत होना चाहिए। ये सीमाएँ निम्नलिखित हैं:–

(i) **नियोजन अलोचकता पैदा करता है:** यद्यपि नियोजन में लोच की विशेषता विद्यमान होती है अर्थात आवश्यकता पड़ने पर इसमें परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु नियोजन में केवल छोटे परिवर्तन ही संभव होते हैं। बड़े परिवर्तन न तो संभव ही होते हैं और न ही संस्था के लिए हितकर। इस प्रकार बदलती परिस्थितियों के अनुसार योजनाओं में वांछित परिवर्तन न कर पाने के कारण अनेक लाभ के अवसर संस्था के हाथों से निकल जाते हैं। नियोजन में सीमित लोचकता के लिए आंतरिक व बाध्य दोनों तरह के तत्व जिम्मेदार है। इन तत्वों को आंतरिक व बाध्य अलोचकता कहते हैं। ये निम्नलिखित हैं:

(क) **आंतरिक अलोचकता** : नियोजन के समय संस्था के उद्देश्य, नीतियां, कार्यविधियां, नियम, कार्यक्रम, आदि का निर्धारण कर दिया जाता है। इनमें बार–बार परिवर्तन करना बहुत कठिन है। इसे आंतरिक अलोचकता कहते हैं।

(ख) **बाध्य अलोचकता** : बाध्य अलोचकता का अर्थ अनेक बाध्य तत्वों से नियोजन में सीमित लोचकता का पाया जाना है। नये तत्व नियंत्रणकर्ता के नियन्त्रण में नहीं होते। इसमें मुख्यतः राजनैतिक परिवेश, आर्थिक परिवर्तन, तकनीकी परिवर्तन, प्राकृतिक प्रकोप, प्रतियोगियों की नीतियों आदि को सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिए, राजनैतिक परिवेश में परिवर्तन के कारण नई सरकार द्वारा व्यापार नीति, कर नीति, आयात नीति आदि में परिवर्तन किए जाने से संस्था द्वारा बनाई गई योजनाएं व्यर्थ हो जाती है। इसी प्रकार प्रतियोगियों की नीतियों में अचानक परिवर्तन से योजनाएं प्रभावहीन हो जाती हैं।

(ii) **नियोजन परिवर्तनशील वातावरण में काम नहीं करता**: नियोजन भविष्य के बारे में किए गए पूर्वानुमानों पर आधारित होता है। क्योंकि भविष्य अनिश्चित एवं परिवर्तनशील होता है इसलिए पूर्वानुमान प्रायः पूर्ण रुप से सही नहीं हो पाते। अतः योजनाओं को सफलता प्राप्ति का आधार मानना, अंधेरे में तीर चलाने के बराबर है। प्रायः योजना की अवधि जितनी लम्बी होगी, वह उतनी ही कम प्रभावी होगी। इसलिए कहा जा सकता है कि नियोजन परिवर्तशील वातावरण में काम नहीं करता।

उदाहरण के लिए, एक कम्पनी ने पूर्वानुमान लगाया कि सरकार शीघ्र ही किसी विशेष उत्पाद का निर्यात खोलने वाली है। इसी उम्मीद से कम्पनी ने उस उत्पाद का उत्पादन प्रारंभ कर दिया। लेकिन सरकार ने निर्यात नहीं खोला। इस प्रकार गलत अनुमान से नियोजन अशुद्ध हो जाएगा। और लाभ के स्थान पर हानि होगी।

(iii) **नियोजन रचनात्मकता को कम करता है**: नियोजन के अंतर्गत संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए की जाने वाली सभी क्रियाओं को पहले से ही निश्चित कर दिया जाता है। फलस्वरुप प्रत्येक व्यक्ति केवल वही करता है और उसी ढंग से करता है जैसा कि योजनाओं में स्पष्ट किया गया हो। इससे उनकी पहल–क्षमता अर्थात सोच–विचार अधिक उपयुक्त उपायों की खोज करने एवं उन्हें लागू करने पर रोक लग जाती है। **टेरी** के अनुसार, ''नियोजन कर्मचारियों की पहल–क्षमता का गला घोंट देता है और वह उनको लोचहीन ढंग से काम करने के लिए मजबूर करता है।''

(iv) **नियोजन पर अधिक लागतें आती हैं** : नियोजन शब्द जितना छोटा है इसकी प्रक्रिया उतनी ही बड़ी है। एक लम्बा रास्ता तय करने पर ही योजना अर्थपूर्ण बनती है। इस लम्बे रास्ते को पार करने में बहुत समय लग जाता है और इस पूरे समय में अनेक सूचनाएं एकत्रित करने व उनकी विश्लेषण करने में व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार लोग, अधिक समय तक एक ही कार्य में व्यस्त रहेंगे, तो संस्था के खर्चो में अनावश्यक बढ़ोतरी होना निश्चित है।

(v) **नियोजन प्रक्रिया में अधिक समय लगता है**: नियोजन एक निश्चित स्थिति का सामना करने के लिए तो वरदान है लेकिन इसकी प्रक्रिया में अधिक समय लगने के कारण यह आकस्मिक आपातस्थिति का सामना नहीं कर सकते। आकस्मिक स्थिति का

अभिप्राय यह है कि एकदम से कोई ऐसा समस्या उत्पन्न हो जाना अथवा लाभ का कोई ऐसा अवसर दिखाई देना, जिसके बारे में पहले से कोई नियोजन नहीं किया है और अब तुरंत निर्णय लेना जरुरी है। ऐसी स्थिति में यदि प्रबंधन यह सोचे कि इनके बारे में पहले नियोजन प्रक्रिया को पूरा किया जाए और निर्णय ले, तो हो सकता है तब तक इतना समय लग जाए कि उपस्थित समस्या गम्भीर रुप धारण कर ले अथवा लाभ का अवसर हाथ से निकल जाए। अतः नियोजन में अधिक समय लगने के कारण कार्यवाही में देरी होती है।

(vi) **नियोजन सफलता की गारंटी नहीं देता** : कई बार प्रबंधक यह समझ बैठता है कि योजनाएं बन लेने से ही सारी समस्या हल हो गई। इस धारणा से प्रभावित होकर वे वास्तविक कार्य में लापरवाही बरतने लग जाते हैं, जिसके विपरीत परिणाम भुगतने पड़ते हैं। इस प्रक्रिया का नियोजन प्रबन्धकों को सुरक्षा का झूठा लालच देकर उन्हें लापरवाह बना देता है। अतः हम कह सकते हैं कि नियोजन कर लेना मात्र से ही सफलता सुनिश्चित नहीं हो जाती है बल्कि इसके लिए अनेक प्रयास करने पड़ते हैं।

नियोजन की सीमाओं का अध्ययन कर लेने पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि नियोजन अनावश्यक है अथवा यह एक विलासिता है जिसे केवल बड़े संगठन ही सहन कर सकती हैं। लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। यह प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण कार्य है। इस पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना आवश्यक है। अतः यह नहीं कि योजनाऐं बनाई जाएं, अथवा नहीं, बल्कि यह कि उन्हें अच्छे ढंग से कैसा बनाया जाए। योजनाओं के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों को दूर करके उन्हें प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र 4. आंतरिक एवं बाध्य आलोच क्या है?
प्र. 5. नियोजन रचनात्मकता को कम कैसे करती है?
प्र.6 क्या नियोजन एक महंगी क्रिया है?

2.4 नियोजन प्रक्रिया एवं नियोजन के प्रकार

नियोजन प्रक्रिया

जब हम नियोजन को प्रबंधन के सम्बन्ध में देखते हैं तो प्रबंधन का एक अंग होने के कारण इस क्रिया को नियोजन प्रक्रिया कहा जाता है। दूसरी ओर, जब इसका व्यक्तिगत रुप

से अध्ययन किया जाता है तो यह प्रक्रिया कहलाती है, क्योंकि इसे पूरा करने के लिए एक के बाद एक अनेक सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं। जहां तक नियोजन प्रक्रिया मे सम्मिलित सीढ़ियों/कदमों का प्रश्न है ये समस्या के आकार पर निर्भर करता हैं। भिन्न सस्थाओं में नियोजन प्रक्रिया भिन्न हो सकती है।

चित्र – 2.2 नियोजन प्रक्रिया

नियोजन की आवश्यकता किसी समस्या को सुलझाने या किसी अवसर का लाभ उठाने के लिए होती है। इसी संदर्भ में एक प्रबंधक उपक्रम की ताकत व कमजोरी का विश्लेषण करता है। इस विश्लेष में उपक्रम के आंतरिक एवं बाहरी वातावरण का ध्यान रखा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए वहां कारखाने स्थापित करने को प्राथमिकता दे रही है तो एक बुद्धिमान प्रबंधक निश्चित रुप से इस अवसर का लाभ उठाना चाहेगा। यहीं से नियोजन प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। व्यवसायिक संस्थाओं में नियोजन प्रक्रिया में प्रायः निम्नलिखित कदम निहित होते हैं:

(i) **उद्देश्य निर्धारित करना** : उद्देश्य वे अंतिम बिंदु होते हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए समस्त क्रियाएं की जाती है। नियोजन प्रक्रिया में सर्वप्रथम उद्देश्यों को निर्धारित एवं परिभाषित किया जाता है ताकि सभी संबंधित कर्मचारियों को इनकी जानकारी हो जाए और वे इन्हें प्राप्त करने में पूरा योगदान दे सकें। उद्देश्यों का एक प्राथमिकता क्रम होता है जैसे– संस्थागत उद्देश्य, विभागीय उद्देश्य व व्यक्तिगत उद्देश्य। इसी क्रम में इन्हें निर्धारित एवं परिभाषित किया जाता है।

उदाहरण के लिए, एक कम्पनी अपने बिक्री को 2000 करोड़ रुपये तक ले जाना चाहती है। (यह कम्पनी का संस्थागत उद्देश्य है) इस उद्देश्य को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है – माना कम्पनी के चार प्रमुख उत्पाद हैं जिनकी अपेक्षित बिक्री क्रमशः 1000 करोड़ रुपये, 500 करोड़ रुपये, 300 करोड़ रुपये व 200 करोड़ रुपये निर्धारित की जाती है। इसी संदर्भ में अन्य सभी विभागों के उद्देश्य निर्धारित किए जाऐंगे : जैसे– उत्पादन विभाग को जानकारी प्राप्त हो जाएगी कि उसे किस–किस उत्पाद का कितना–कितना उत्पादन करना है। अंत में प्रत्येक विभाग में कार्यरत कर्मचारियों को बता दिया जाएगा कि उनसे क्या अपेक्षित है।

(ii) **सीमाएँ विकसित करना** : नियोजन आधार अथवा सीमाएँ वे तत्व/मान्यताएं होती हैं जो विभिन्न विकल्पों के संभावित परिणामों को प्रभावित करती हैं। किसी विकल्प के बारे में अंतिम निर्णय लेने से पहले इन मान्यताओं के पूर्वानुमान लगाए जाते हैं। जितने अधिक पूर्वानुमान सही होंगे नियोजन उतना ही अधिक सफल रहेगा। नियोजन के आधार दो प्रकार के होते हैं:

(क) **आंतरिक आधार** : पूंजी, श्रम, कच्चा माल, मशीन आदि।

(ख) **बाहरी आधार** : सरकारी नीतियां, व्यवसायिक प्रतियोगिता, ग्राहकों की रुचि, ब्याज दर, कर दर आदि।

उदाहरण के लिए, एक कम्पनी अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहती है। कम्पनी के पास ग्रामीण क्षेत्र में कारखाना स्थापित करना एक विकल्प है। यहां पूंजी, माल व श्रम की उपलब्धता इसके आंतरिक आधार हो सकते हैं तथा सरकार की औद्योगिक नीति बाहरी आधार। प्रबंधक को इन सभी आधारों का पूर्वानुमान लगाना होगा। अन्य शब्दों में, यह देखना होगा कि आवश्यक पूंजी, कच्चा माल व श्रम उपलब्ध हो सकेगा। इसी प्रकार देखना होगा कि कहीं सरकार की औद्योगिक नीति इस तरह की औद्योगिक इकाई की स्थापना का विरोध तो नहीं करेगी?

(iii) **वैकल्पिक कार्यवाहियों की पहचान करना:** प्रायः कोई भी कार्य ऐसा नहीं होता कि वैकल्पिक मार्ग न हो। संस्था के उद्देश्यों के आधार पर एक ही कार्य करने के अनेक तरीकों की खोज की जा सकती है। उदाहरणार्थ, यदि किसी संस्था का उद्देश्य अपना

व्यवसाय बढ़ाने का है तो इस उद्देश्य की पूर्ती अनेक तरीकों से की जा सकती है। जैसे–

(क) पहले से चल रहे व्यवसाय का विस्तार करके – माना एक कम्पनी किसी एक साईकिल का निर्माण कर रही है। व्यवसाय को बढ़ाने के उद्देश्य से कम्पनी द्वारा अनेक साईज़ के साईकिल (बच्चों/पुरुष/महिला) बनाना प्रारंभ किया जा सकता है।

(ख) दूसरे क्षेत्रों में उत्पादन प्रारंभ करके– साईकिल बनाने वाली कम्पनी मोटरसाईकिल बनाना प्रारंभ कर सकती है।

(ग) दूसरी संस्थाओं के साथ मिलकर कोई व्यवसाय प्रारंभ कर सकती है। जैसे भारत में हीरो साईकिल ने जापान की होंडा कम्पनी के साथ मिलकर मोटरसाइकित का उत्पादन किया था।

(घ) किसी दूसरी संस्था को खरीद सकती हैः आदि।

(iv) **वैकल्पिक कार्यवाहियों का मूल्यांकन करना** वे सभी विकल्प जो न्यूनतम प्रारंभिक मापदण्ड के आधार पर खरे उतरते हैं उन्हें गहन अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है। यहां पर यह देख जाएगा कि प्रत्येक विकल्प संस्था के उद्देश्यों को कहां तक पूरा करता है। विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करने पर प्रायः एक समस्या सामने आती है वह यह कि सभी विकल्पों के अपने–अपने गुण दोष होते हैं। अर्थात एक विकल्प किसी एक मापदण्ड पर खरा उतरता है तो दूसरा किसी दूसरे मापदण्ड पर। उदाहणार्थ– एक विकल्प बहुत लाभदायक हो सकता है लेकिन उसमें बहुत अधिक पूंजी विनियोग की आवश्यकता है और उसका लाभ अर्जित करने का समय भी अधिक है। एक अन्य विकल्प में पूंजी विनियोग भी कम चाहिए तथा उसका लाभ अर्जित करने की अवधि भी कम है। लेकिन वह अधिक लाभदायक नहीं है। ऐसी स्थिति में नियोजनकर्ता को विभिन्न विकल्पों के मिश्रण के रुप में एक नया विकल्प खोजना चाहिए।

टूल बाक्स – 2
न्यूनतम प्रारंभिक मापदण्ड
वास्तव में वैकल्पिक मार्गों की खोज करना इतना कठिन नहीं है जितना कि वैकल्पिक मार्गों

की सूची को छोटा करना। वैकल्पिक मार्ग कम से कम होने चाहिएं ताकि उनका गहराई से अध्ययन किया जा सके। वैकल्पिक मार्गों की सूची को छोटा करने के लिए एक न्यूनतम प्रारंभिक मापदण्ड निश्चित कर लेना चाहिए और जो विकल्प निर्धारित मापदण्ड को पूरा नहीं करते, उन्हें प्रारंभ से ही सूची से बाहर कर देना चाहिए। जैसे– यदि न्यूनतम विनियोग सीमा 10 करोड़ रुपये है तो इससे कम लागत वाले सभी विकल्प छोड़ दिए जाएंगे।

(v) **एक विकल्प का चयन करना** : विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करके सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव कर लिया जाता है। कई बार मूल्यांकन के आधार पर एक से अधिक विकल्प एक जैसे गुणों वाले प्राप्त हो जाते हैं। भविष्य की अनिश्चितता को देखते हुए एक से अधिक अच्छे विकल्पों का चयन करना न्यायसंगत भी है। एक विकल्प को लागू करके दूसरे को रिजर्व में रख लिया जाता है और यदि पूर्वानुमान गलत हो जाए तो पहला विकल्प असफल हो जाने के कारण रिज़र्व में रखे गए विकल्प को तुरंत लागू करके असफलता से बचा जा सकता है।

(vi) **योजना को लागू करना** : मुख्य योजना तथा सहायक योजनाओं का निर्धारण कर लेने के बाद उन्हें लागू करना होता है। योजनाओं को लागू करने के बाद विभिन्न क्रियाओं का क्रम निर्धारित कर दिया जाता है अर्थात यह निश्चित कर दिया जाता है कि कौन क्या करेगा और किस समय करेगा। इससे उद्देश्यों को प्राप्त करना सरल हो जाता है।

(vii) **समीक्षा करना** : योजनाएं लागू कर देने से ही नियोजन प्रक्रिया समाप्त नहीं हो जाती। योजनाएं भविष्य के लिए बनाई जाती हैं और भविष्य अनिश्चित होता है। अनिश्चित भविष्य में सफलता सुनिश्चित करने के लिए योजनाओं की प्रगति की लगातार समीक्षा करते रहना जरुरी है। जैसे ही उन मान्यताओं में जिन पर योजनाएं आधारित हैं परिवर्तन होता नज़र आए, योजनाओं में भी आवश्यक फेर–बदल कर दिया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नियोजन एक निरंतर चालू रहने वाली प्रक्रिया है।

अपनी प्रगति जांचिए

प्र 7. नियोजन को प्रक्रिया क्यों कहा जाता है?

प्र. 8. एक संस्था कितने प्रकार के उद्देश्य निर्धारित करती है?

प्र. 9 योजनाएं लागू कर देने से नियोजन प्रक्रिया समाप्त हो जाती है।'' क्या आप इस बात से सहमत हैं?

नियोजन के प्रकार

नियोजन एक प्रक्रिया है और योजना उसका परिणाम। योजना परिणामों को प्राप्त करने के लिए की जाने वाली क्रियाओं को पूरा करने का एक वायदा है। इस दृष्टिकोण से योजनायें अनेक प्रकार की होती हैं। योजनाओं के प्रकार को समझने में निम्न विवेचन सहायक होगा।

प्रत्येक संस्था का एक केन्द्रीय लक्ष्य होता है जिसे मिशन भी कहते हैं। एक व्यवसायिक संस्था को अर्थपूर्ण तभी माना जाता है जब उसका कोई लक्ष्य हो। जिससे संस्था की स्थापना का औचित्य स्पष्ट होता है। यह संस्था के व्यवसाय की विशेषता स्पष्ट करता है और यह बताता है कि एक संस्था उसी प्रकार की अन्य संस्थाओं से कैसे भिन्न है। उदाहरण के लिए, एक शिक्षण संस्था का लक्ष्य/मिशन केवल लड़कियों को शिक्षित करना हो सकता है। इसी प्रकार एक अस्पताल का लक्ष्य केवल दिल के मरीज़ों का इलाज करना हो सकता है।

लक्ष्य प्राप्ति के संदर्भ में अनेक योजनाएं तैयार की जाती है। सर्वप्रथम संस्था के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। प्रतियोगिता का डटकर मुकाबला करते हुए उद्देश्यों को वास्तविकता में बदलने के लिए मोर्चाबन्दी/रणनीति तैयार की जाती है। विभिन्न प्रबन्धकों द्वारा लिए जाने वाले निणयों में एकरुपता लाने के लिए नीतियां बनाई जाती हैं। नीतियां निर्धारण कर लेने के बाद क्रियाओं का क्रम निर्धारित किया जाता है। जिसे कार्यविधि कहते हैं। इसी प्रकार पद्धतियां, नियम, बजट, कार्यक्रम आदि नियोजन के प्रमुख तत्व हैं, ये सभी योजनाएं कहलाती है। एक उच्चस्तरीय योजना निम्नस्तरीय योजना को जन्म देती है।

योजनाओं का प्राथमिकता क्रम

(क) **उद्देश्य**

उद्देश्य वे अंतिम बिंदु हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए सभी क्रियाएं की जाती हैं। उद्देश्य के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं।

(i) संदेशवाहन प्रणाली में सुधार के लिए लगातार सभाएं करना व समाचार–पत्र प्रकाशित करना।

(ii) साबुनों की बिक्री को 20000 करोड़ रुपये के पार ले जाना।

(iii) प्रत्येक वर्ष 100 लोगों को रोजगार उपलब्ध करवाना।

(iv) गुणतवता के कारण माल की वापसी को 3 प्रतिशत तक लेकर आना।

उद्देश्यों में निम्न विषेशताएं होनी चाहिए:

- स्पष्ट होने चाहिए।
- परिणाम से संबंधित होने चाहिए न कि उन्हें प्राप्त करने के लिए की जाने वाली क्रियाओं से।
- मापने योग्य होने चाहिए।
- इन्हें प्राप्त करने की समय सीमा निर्धारित होना चाहिए।
- प्राप्त करने योग्य होने चाहिए ।

टूल बाक्स –3
प्रयोजन प्रयोजन एक संस्था की मुख्य भूमिका होती है जो इस समाज द्वारा निर्धारित की जाती है, जैसे– प्रत्येक स्कूल का प्रयोजन शिक्षा प्रदान करना है। एक जैसी सभी संस्थाओं का प्रयोजन समान होता हैं।
टूल बाक्स –4
मिशन मिशन अथवा लक्ष्य यह बताता है कि एक संस्था उसी प्रकार की अन्य संस्थाओं से किस प्रकार भिन्न है। यह हर संस्था का अलग होता है, जैसे– एक स्कूल का मिशन केवल कॉमर्स में शिक्षा प्रदान करना हो सकता है।
टूल बाक्स – 5
उद्देश्य एक संस्था द्वारा प्राप्त किया जाने वाला विशेष टारगेट होता है, जैसे– स्कूल का उद्देश्य एक वर्ष में 100 विद्यार्थियों को कॉमर्स की शिक्षा प्रदान करना हो सकता है।

(रव) **मोर्चाबंदी**

मोर्चाबंदी वे योजनाएं हैं जो प्रतियोगियों की चाल को ध्यान में रखकर तैयार की जाती हैं और जिनका उद्देश्य उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग संभव बनाना है।

उदाहरण के लिए, यदि कोई प्रतियोगी संस्था अपने माल की बिक्री बढ़ाने के लिए वस्तुओं के मूल्य में कमी करने जा रही है या विज्ञापन के नए तरीकों को अपनाने पर विचार कर रही है या उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए कोई उपहार योजना निकाल रही है तो इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही हमें भी अपनी मोर्चाबंदी करनी होगी।

मोर्चाबंदी दो प्रकार की होती है –

- बाहरी मोर्चाबंदी तथा
- आंतरिक मोर्चाबंदी।

जब प्रतियोगीयों की योजनाओं को ध्यान में रखकर हम अपनी योजनाएं बनाते हैं तो इसे बाहरी मोर्चाबंदी कहते हैं। यदि किसी परिवर्तन से संस्था के अंदर कोई समस्या उत्पन्न होने वाली है तो उसका सामना करने के लिए पहले ही तैयारी करने को आंतरिक मोर्चाबंदी कहते हैं, जैसे– फैक्ट्री में मशीनीकरण करना, जिससे अनेक व्यक्तियों की छंटनी हो सकती है। इस व्यवस्था के लागू करने पर कर्मचारियों के विरोध का सामना करने के लिए पहले से ही तैयारी करनी होगी ताकि नई व्यवस्था भी लागू हो जाए और कर्मचारी भी नाराज़ न हों।

(ग) **नीतियां**

नीतियां वे सामान्य विवरण है जो निर्णय में कर्मचारियों के मार्गदर्शन हेतु बनायी जाती हैं। इनका उद्देश्य एक ऐसी सीमा निर्धारण करना है जिसके अंदर रहते हुए ही कोई कार्य किया जा सकता है अथवा कोई निर्णय लिया जा सकता है। उद्देश्य यह निश्चित करते हैं कि हमें क्या प्राप्त करना है तथा नीतियां यह बताती है कि कैसे प्राप्त किया जा सकता है। प्रायः हम कुछ नीतियों के संबंध में सुनते रहते हैं, जैसे–

(i) **सेविवर्गीय नीति–** इस नीति में यह निश्चित किया जा सकता है कि कर्मचारियों की तरक्की का आधार उनकी आयु होगा। एक बार यह निश्चित कर देने के बाद किसी भी विभागीय प्रबंधक को कर्मचारियों की तरक्की के बारे में उच्च प्रबंधक से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं रहती।

(ii) **विक्रय नीति–** इस नीति में यह निश्चित किया जाता है कि माल केवल नकद बेचा जाएगा या उधार भी।

(iii) **मूल्य निर्धारण नीति–** इसके अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि वस्तुओं का विक्रय कैसे निर्धारित किया जाएगा अर्थात लागत में कितना लाभ जोड़कर विक्रय मूल्य तय होगा तथा व्यापारिक छूट एवं नकद छूट की क्या शर्तें होंगी।

वास्तव में नीति निरंतर चलने वाला एक निर्णय है जो बार–बार पैदा होने वाली एक समान समस्याओं अथवा परिस्थितियों में प्रबन्धको का मार्ग–दर्शन करता है।

उद्देश्य एवं नीति के अंतर

अंतर का आधार	उद्देश्य	निति
1.अर्थ	उद्देश्य वे अंतिम बिंदु हैं जिन्हें प्राप्त किया जाना है।	नीतियां उद्देश्य प्राप्ति का साधन होती हैं।
2.आवश्यकता	बिना उद्देश्य के किसी भी संस्था की स्थापना नहीं हो सकती। अतः ये अति आवश्यक है।	इनका निर्धारण करना इतना आवश्यक नहीं है। ये बनाई भी जा सकती हैं और नहीं भी।
3.निर्धारण का स्तर	ये प्रायः संस्था के उच्च प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित किए जाते हैं।	नीतियां सभी प्रबन्धकीय स्तरों पर निर्धारित की जाती हैं।
4.क्षेत्र	उद्देश्य प्राप्ति के लिए ही अन्य योजनाएं, जैसे– नीतियां, कार्यविधियां, नियम, कार्यक्रम आदि बनाई जाती हैं। अतः उद्देश्य का क्षेत्र व्यापक है।	ये केवल एक पथ प्रदर्शक का काम करती हैं अतः इनका क्षेत्र संकुचित है।

(घ) कार्यविधियां :

कार्यविधियां वे योजनाएं हैं जो किसी काम को पूरा करने के लिए की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं का क्रम निश्चित करती हैं। उदाहरणार्थ, देनदारों से रुपया वसूल करने का क्रम इस प्रकार निश्चित किया जा सकता है:

(i) पत्र लिखना,

(ii) टेलिफोन करना,

(iii) व्यक्तिगत रुप से जाकर मिलना तथा

(iv) वैधानिक कार्यवाही करना।

इस प्रकार सभी देनदारों से रुपया एकत्रित करने की यह एक कार्यविधि है। नीतियों और कार्यविधियों में अंतर होता है। देनदारों से रुपया वसूल करने के संबंध में संस्था की दो नीतियां हो सकती हैं:

- सख्त वसूली नीति, तथा
- नरम वसूली नीति तथा

पहली नीति में देनदारों के साथ सख्त व्यवहार करते हुए शीघ्र रुपया वसूल करने का प्रयास किया जाएगा, जबकि द्वितीय नीति में देनदारों को भुगतान करने का पूरा समय देते हुए उनसे नरम व्यवहार किया जाएगा। इन दोनों प्रकार की नीतियों में रुपया वसूल करने की कार्यविधि ऊपर बताई गई ही रहेगी अर्थात रुपया वसूल करने के लिए उठाए जाने वाले कदम समान होंगें।

टूल बाक्स – 6
कार्यविधियां
इसका अभिप्राय उस योजना से है जो किसी काम को पूरा करने के लिए की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं का क्रम निर्धारित करती हैं।

(ङ) पद्धतियां :–

पद्धति वह योजना है जो यह निश्चित करती है कि कार्यविधि में बताई गई विभिन्न क्रियाओं में से प्रत्येक क्रिया को कैसे पूरा किया जाएगा। पद्धति का संबंध सभी क्रियाओं से न होकर किसी एक क्रिया से होता है और यह कार्यविधि की तुलना में अधिक विस्तृत होती है। एक कार्य को पूरा करने की अनेक पद्धतियां हो सकती हैं। गहन अध्ययन के बाद ऐसी पद्धति का चयन किया जाता है जिससे काम करने वाले व्यक्ति को थकावट कम हो, उत्पादकता में वृद्धि हो तथा लागतें कम आएं। इस प्रकार चुनी गई पद्धति को ही दैनिक प्रयोग में लाया जाता है और इसे पद्धति कहते हैं। इस पद्धति में लगातार सुधार के प्रयत्न

किए जाते हैं ताकि अनावश्यक अथवा अनुपादक प्रयासों को पद्धति में से निकाल दिया जाएं।

टूल बाक्स – 7
पद्धति इसका अभिप्राय उस योजना से है जो यह निश्चित करती है कि कार्यविधि में बताई गई विभिन्न क्रियाओं में से प्रत्येक क्रिया को कैसे पूरा किया जाएगा।

(च) नियम :

नियम हमें बताते हैं कि किसी विशेष परिस्थिति में क्या करना है और क्या नहीं करना। नियम के होते हुए किसी तरह का निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं है। नियम में जो बात कही गई है बिना किसी सोच विचार के उसका पालन करना ही होगा। जैसे – 'कारखाने में धूम्रपान का वर्जित होना' एक नियम है जो सभी पर लागू होता है और इसका पालन करना अवश्य होना चाहिए। नियम का पालन न करने पर दण्ड की व्यवस्था भी की जा सकती है

टूल बाक्स – 8
नियम इसका अभिप्राय उस योजना से है जो हमें बताती है कि किसी विशेष परिस्थिति में क्या करना है और क्यों करना है।

नियम एवं नीति में अंतर होता है। नीति केवल मार्ग–दर्शन करती है और अधिकारियों को एक सीमा के अंदर निर्णय लेने का अधिकार प्रदान करती हैः जैसे – माल उधार बेचा जा सकता है, यह एक नीति है। लेकिन किस ग्राहक को माल उधार देना है और किसको नहीं, यह विक्रय प्रबंधक को देखना है। अर्थात यहां उसे अपने विवेक का प्रयोग करना होगा। दूसरी ओर, नियम स्थिर होते हैं और नियम के आगे विवेक की जरुरत नहीं होतीः जैसे – प्रत्येक कर्मचारी को महीने में एक छुट्टी मिलेगी। एक से ज्यादा छुट्टी लेने पर वेतन कटेगा। यह एक नियम है और सभी कर्मचारियों पर समान रुप से लागू होगा।

नियम एवं कार्यविधि में भी अंतर होता है। नियम यह बताते हैं कि क्या करना है और क्या नहीं करना, जबकि कार्यविधियां एक विशेष क्रिया को पूरा करने का क्रम निश्चित करती हैं: जैसे – यदि एक कर्मचारी ने बिना पूछे महीने में एक से ज्यादा छुट्टी ली तो उसका वेतन कट जाएगा। यदि उस कर्मचारी को नौकरी से निकालना है तो उसे पहले 'कारण बताओ नोटिस' दिया जाएगा, उसके बाद ही कोई सख्त कार्यवाही होगी।

नियम तथा कार्यविधि में अंतर

अंतर का आधार	नियम	कार्यविधि
1- निर्णय	नियम एक पहले से लिया गया निर्णय है जो विशेष परिस्थितियों में लागू करना ही पड़ता है।	कार्यविधि काम करने का तरीका है, निर्णय नहीं।
2. क्षेत्र	नियम की कोई कार्यविधि नहीं होती।	कार्यविधि का क्षेत्र विस्तृत है क्योंकि इसके अपने नियम होते हैं।
3. दंड	नियम की अवहेलना करने पर दंड की व्यवस्था होती है।	कार्यविधि में पहले से कोई दंड की व्यवस्था नहीं होती लेकिन इसकी अवहेलना करने वाले को उत्तरदायी अवश्य ठहराया जा सकता है।
4. लोचशीलता	इनमें लोचशीलता का अभाव होता है।	ये नियम की अपेक्षा अधिक लोचशील होती है।

नियम और नीति में अंतर

अंतर का आधार	नियम	नीति
1- निर्णय	नियम आदेश की श्रेणी में आता है।	नीतियां निर्णय लेने को निर्धारित करती है।
2. निर्णय की स्वतंत्रता	इनको कठोरता से लागू किया जाता है अर्थात इनमें निर्णय की स्वतंत्रता नहीं होती।	अधीनस्थ के सीमाओं में रहते हुए निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता होती है।
3. लोचशीलता	ये दृढ़ होते हैं।	ये लोचशील होती है।
4. विवरण	यह विशेष विवरण होता है।	यह सामान्य विवरण होता है।

(छ) **बजट**

बजट इच्छित परिणामों के गणनात्मक विवरण होते हैं। बजट वह योजना है जो विभिन्न विभागों में निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यक अनुमानित धन, सामग्री, समय एवं अन्य साधनों का ब्योरा देती है। उदाहरणार्थ, क्रय विभाग के बजट में इस बारे मे अनुमानित आंकड़े दिए जाते हैं कि किस–किस तरह का माल, कितनी–कितनी मात्रा में , कब–कब खरीदा जाएगा और इस पर कितनी लागत आएगी। इसी प्रकार अन्य विभागों के भी बजट तैयार कर लिए जाते है। आमतौर पर बजट सालाना प्रक्रिया है।

टूल बाक्स – 9
बजट
इसका अभिप्राय भावी कार्यवाही की गणनात्मक विवेचना से है।

बजट का संबंध नियोजन व नियंत्रण दोनों से होता है। जब हम बजट तैयार करते हैं तो इसका संबंध नियोजन से होता है और जब हम परिणामों को मापने के लिए उदाहरण के रुप में इसका प्रयोग करते हैं तो इसका संबंध नियंत्रण से होता है। इस प्रकार प्रबंधक वास्तविक प्रगति की तुलना बजटकीय आंकड़ों से करके सफलता अथवा असफलता के बारे में जानकारी प्राप्त करता है।

(ज) **कार्यक्रम :**

कार्यक्रम का अर्थ किसी विशेष कार्य को पूरा करने के लिए बनाई गई एकल उपभोग विस्तृत योजना से है जो यह निश्चित करती है कि क्या किया जाएगा, कैसे किया जाएगा, कौन करेगा तथा कब करेगा। कार्यक्रम प्रबन्धकों को विभिन्न जरुरतों के बारे में पहले से ही सूचित कर देते हैं ताकि भविष्य में कोई समस्या उत्पन्न न हो। कार्यक्रम अनेक प्रकार के हो सकते हैं, जैसे – उत्पादन कार्यक्रम, विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रम, प्रबंध विकास कार्यक्रम, आदि। एक उत्पादन कार्यक्रम बनाने के लिए कच्चे माल को खरीदनें से लेकर माल को तैयार करने तक की सभी क्रियाओं को क्या, कैसे, कौन, कब में परिभाषित कर दिया जाता है। जैसे ही वह काम पूरा हो जाता है

जिसके लिए कार्यक्रम बनाया जाता है उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है। अन्य शब्दों में, हर नए काम के लिए नया कार्यक्रम बनाया जाता है।

टूल बाक्स – 10
कार्यक्रम
इसका अभिप्राय उस योजना से है जिसके अतंर्गत अपेक्षाकृत बडी संगठनात्मक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है और मुख्य पदों, उनके क्रम व समय तथा उत्तरयी विभागों का उल्लेख किया जाता है।

योजनाओं के प्रकार अन्य आधार पर भी समझे जा सकते हैं

(i) **प्रकृति के आधार**

(1) **प्रशासकीय योजनाएं** : दीर्घकालीन उद्देश्यों, संस्था की व्यापक रणनीति और इसके आधारभूत निर्णय पर आधारित योजनाएं जो व्यवसाय के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं को प्रभावित करती है, प्रशासकीय या कार्यनीति संबंधी योजनायें कहलाती हैं। प्रशासकीय योजनाओं से संस्था की प्रकृति एवं स्वरुप के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(2) परिचालन या क्रियात्मक योजानाएंः परिचालन योजनाएं संस्था की रणनीति संबंधी योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए चालू व्यवसायिक कार्यवाहियों को अल्पकालीन व्यावहारिक योजनाओं के ताने–बाने में बुनने के लिए मध्यस्तरीय एवं निम्नस्तरीय प्रबंधकों द्वारा बनाई जाती हैं। परिचालन योजनाएं वर्तमान बाजारों, वर्तमान क्रियाओं, वर्तमान उपभोक्ताओं एवं वर्तमान सुविधाओं के साथ भावी नियोजन होता है। उत्पादन, विपणन, एवं वित्तीय विभागों के दैनिक कार्यों को पूरा करने के लिए परिचालन योजनाएं बनाना पड़ता हैं।

(ii) **प्रबंध के स्तर के आधार पर :**

(अ) **उच्चस्तरीय योजना :** यह योजना उच्च प्रबंधकों द्वारा (जैसे– जनरल मैनेजर द्वारा) तैयार की जाती है इसके अंतर्गत उपक्रम की सामान्य नीति, उद्देश्य, लक्ष्य, बजट आदि तैयार किए जाते हैं।

(ब) **मध्यस्तरीय योजनाः** यह मध्यस्तरीय प्रबंधकों द्वारा तैयार की जाती है। ये योजनाएं युक्तियों के रुप में तैयार की जाती हैं, जिनसे उपक्रम के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति करना संभव होता है।

(ग) **निम्नस्तरीय योजना :** यह योजना पर्यवेक्षकों द्वारा तैयार की जाती है तथा उपक्रम के कर्मचारियों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं से संबंध रखती हैं।

(iii) **व्यापकता के आधार पर**ः

(अ) समामेलित योजनाएंः जो किसी कंपनी के सभी विभागों के विकास एवं विस्तार के लिए उद्यमियों व उच्च प्रबंधकों द्वारा स्वयं दीर्घकालीन रणनीति को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं।

(ब) विभागीय योजनाएंः जो भिन्न–भिन्न विभागों जैसे – उत्पादन, विपणन, वित्त कर्मचारी के द्वारा अपने तत्कालीन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बनाई जाती हे। ये विस्तृत योजना के उद्देश्यों के अनुरुप तैयार की जाती हैं।

(iv) **समय के आधार पर** :

(अ) **दीर्घकालीन योजनाएं** : **पीटर एफ. ड्रकर** के शब्दों में 'दीर्घकालीन नियोजन व्यवस्थित ढंग से वर्तमान व्यावसायिक निर्णयों को (मुख्यतः जोखिम युक्त) उनके भविष्य के संबंध में सर्वश्रेष्ठ ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों द्वारा लेने, उन निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक प्रयासों को व्यवस्थित ढंग से संगठित करने एवं इन निर्णयों के परिणामों के अनुमान की तुलना में व्यवस्थित संप्रेषण व्यवस्था द्वारा मापन करने की एक गतिशील प्रक्रिया है''।

दीर्घकालीन नियोजन प्रायः निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ती के लिए किया जाता हैः

(1) पूंजीगत संपत्तियों की व्यवस्था के लिए,

(2) किसी नवीन पूंजीगत योजना को कार्यान्वित करने के लिए,

(3) विवेकीकरण या वैज्ञानिक प्रबंध की किसी योजना के लिए,

(4) कुशल कर्मचारियों की व्यवस्था के लिए,

(5) नवीन इकाइयों में समन्वय के लिए,

(6) स्वस्थ प्रतिस्पर्धा बनाए रखने के लिए,

(7) जल्दबाजी में लिए गए निर्णयों पर रोक लगाने के लिए,

(8) उपक्रम के संपूर्ण कार्य निष्पादन के मापन के लिए तथा मापदण्ड प्रस्तुत करने के लिए।

(ब) अल्पकालीन योजनाएं : ये योजनाएं एक वर्ष या इससे कम अवधि के लिए तत्कालीन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मध्यस्तरीय तथा निम्नस्तरीय प्रबंधकों के द्वारा स्वयं बनाई जाती हैं। लेकिन इन योजनाओं का भी दीर्घकालीन योजनाओं की रुपरेखा के अनुसार होना आवश्यक हे। एक वर्ष से कम की अवधि वाली योजनाओं को प्रायः अल्पकालीन योजनाएं कहते हैं।

(v) **उपयोग के आधार पर :**

उपयोग के आधार पर योजनाएं निम्न दो प्रकार की होती हैं –

(1) स्थायी या निरंतर उपयोग की योजनाएं :

जो योजनाएं किसी व्यवसायिक संस्था में स्थायी रुप से भिन्न–भिन्न स्तरों पर बनाई जाती हैं, अर्थात बार–बार उपयोग करने लिए बनाई जाती हैं, उन्हें स्थायी योजनाएं कहते हैं। इन योजनाओं का प्रयोग तब–तब किया जाता है जब–जब इनकी अवश्यकता पड़ती है। इन योजनाओं के प्रमुख उदाहरण में संस्था के उद्देश्य नीतियां, कार्यविधि नियम और कार्यनीति उल्लेखनीय हैं।

(2) **तदर्थ या एकल उपयोग की योजनाएंः**

जब कोई योजना किसी विशेष परिस्थिति में किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बनाई जाती हैं, तब उसे तदर्थ या एकल उपयोग की योजना कहते हैं। इन योजनाओं का प्रयोग अनावर्तक कार्यों के लिए तथा तत्कालीन उपयोग के लिए किया जाता है। एकल उपयोग की योजना में कार्यक्रम, बजट और परियोजनाएं शामिल हैं। उद्देश्य की पूर्ति के पश्चात ये योजनाएं स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं।

2.5 निर्णयन का अर्थ एवं विशेषताएँ

निर्णयन का अर्थ

निर्णयन का अर्थ, विभिन्न विकल्पों का विश्लेषण करके यह फैसला करने से है कि किसी विशेष परिस्थिति में क्या करना चाहिए और क्या नहीं। इस प्रकार निर्णयन के अंतर्गत उस निर्णय पर पहुंचना होता है जिसे किसी समस्या के समाधान के रुप में लागू किया जा

सके। क्योंकि प्रबन्धकों के समक्ष हर समय कोई न कोई समस्या खड़ी रहती है जिनका उन्हें समाधान खोजना पड़ता है, इसलिए कहा जाता है कि निर्णयन की आवश्यकता हर समय होती है और **साइमन** ने तो यहां तक कहा है कि 'निर्णय लेना ही प्रबंधन है'।

निर्णयन की परिभाषाएँ

विभिन्न प्रबंधन विशेषज्ञों ने निर्णयन की अलग–अलग परिभाषाएँ दी है। इनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

(i) **कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल** के अनुसार, ''निर्णयन किसी कार्य को करने के विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का वास्तविक चयन करना है।''

(ii) **जार्ज आर. टैरी** के अनुसार, ''निर्णयन किसी कसौटी पर आधारित दो या दो से अधिक संभावित विकल्पों में से एक का चयन करना है।''

(iii) **लुईस ए.ऐलन** के अनुसार, ''निर्णयन वह कार्य है जिसे एक प्रबंधक किसी निष्कर्ष और निर्णय पर पहुंचने के लिए करता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि निर्णयन, किसी समस्या के समाधान के रुप में उपलब्ध अनेक विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव करना है। अतः स्पष्ट है कि निर्णय की आवश्यकता तभी होती है जब किसी कार्य को करने की अनेक विधियां उपलब्ध हों। अन्य शब्दों में, यदि किसी कार्य को करने की केवल एक ही विधि है तो निर्णय लेने का प्रश्न ही नहीं उठता, वह विधि स्वयं में ही निर्णय है।

टूल बाक्स – 1 **निर्णयन**
निर्णयन का अर्थ, विभिन्न विकल्पों का विश्लेषण करके यह फैसला करने से है कि किसी विशेष परिस्थिति में क्या करना चाहिए और क्या नहीं।

निर्णयन की विशेषताएँ

निर्णयन की विशेषताएँ अथवा प्रकृति निम्नलिखित हैं :–

यह अनेक विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ के चयन की प्रक्रिया है। निर्णयन की सबसे पहली विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन किया जाता है।

प्रत्येक समस्या के समाधान की अनेक विधियां हो सकती हैं। प्रबंधक द्वारा उनमें से सबसे अच्छी विधि को छांटा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि एक संस्था के सामने विक्रय वृद्धि की समस्या है तो इसके समाधान के अनेक तरीके हो सकते हैं, जैसे – मूल्य में कमी करना, अधिक व अच्छा विज्ञापन करना, उधार बिक्री की सुविधा उपलब्ध कराना आदि। प्रबंधक को इनमें से सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प का चयन करना होता है।

यह विवेकपूर्ण चिंतन पर आधारित है। विवेकपूर्णताः को निर्णयन का सार माना जाता है क्योंकि निर्णयन के माध्यम से जो फैसले लिए जाते है उनकी सफलता सोच–विचार अथवा चिंतन अथवा गहन अध्ययन पर निर्भर होती है।

यह हमेशा किसी न किसी समस्या अथवा विवाद से जुड़ा होता है। क्योंकि निर्णयन का उद्देश्य समस्याओं अथवा विवादों का हल ढूंढना है इसलिए इसका इनके साथ जुड़ा होना स्वाभाविक है। अन्य शब्दों में, यदि समस्या या विवाद न हो तो निर्णयन तथा प्रबंधन दोनों का महत्व ही समाप्त हो जाएगा। इसी संदर्भ में कहा जाता है कि, समस्याएं प्रबंधन की खुराक होती हैं जिन पर वह जीता है और विकास करता है।

इसके अंतर्गत विभिन्न उपलब्ध विकल्पों का मूल्यांकन किया जाता है। जैसा कि स्पष्ट है कि यदि किसी समस्या के हल की एक ही विधि है तो निर्णयन की आवश्यकता नहीं पड़ती। निर्णयन के लिए अनेक विकल्प होने चाहिए। जब अनेक विकल्प होंगे तो निर्णयन के माध्यम से उनका मूल्यांकन करके अर्थात उनके लाभ एवं हानियों का अध्ययन करके सर्वश्रेष्ठ को चुना जाता है।

इसका उद्देश्य संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। निर्णय लेने का कार्य बेकार में ही नहीं किया जाता बल्कि इसके द्वारा संस्था के लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

यह एक वायदे के रुप में होता है। प्रबंधक द्वारा लिया गया प्रत्येक निर्णय एक वायदा होता है अर्थात निर्णयन के माध्यम से प्रबंधक यह कहता है कि उसके द्वारा लिए गए निर्णय के अच्छे परिणाम होंगे।

यह मूलरुप से एक मानवीय क्रिया है। निर्णयन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह एक मानवीय क्रिया है। निर्णय मनुष्य द्वारा लिए जाते हैं और मनुष्यों के लिए ही लिए जाते हैं।

यह प्रबन्धकीय कार्य एवं संस्थागत प्रक्रिया दोनों हैं। क्योंकि निर्णय लेना सभी प्रबन्धकों का मुख्य दायित्व है इसलिए यह एक प्रबन्धकीय कार्य है। इसे संस्थागत प्रक्रिया इसलिए कहा जाता है क्योंकि अनेक ऐसे निर्णय होते हैं जो अकेला प्रबंधक नहीं ले सकता बल्कि उनके लिए प्रबन्धकों के समूह या समिति की जरुरत होती है।

यह नियोजन का केन्द्र बिंदु है। यद्यपि निर्णयन की आवश्यकता सभी प्रबन्धकीय कार्यों के लिए होती है लेकिन नियोजन पूर्वतः निर्णयन पर ही आधारित है, क्योंकि यहीं पर मुख्य निर्णय लिए जाते हैं। नियोजन के अंतर्गत जब उद्देश्य, नीतियों, कार्यविधियों, नियमों आदि को निश्चित किया जाता है तो निर्णयन का विशेष महत्व होता है।

यह कार्यवाही को प्रारम्भ करते हैं। जब कोई समस्या उत्पन्न होती है तो काम एकदम से रुक जाता है और जब तक कोई निर्णय नहीं ले लिया जाता तब तक काम प्रारम्भ नहीं हो सकता। इस प्रकार निर्णय लेने पर ही भावी कार्यवाही प्रारम्भ होती है।

अपनी प्रगति जाँचीए
प्र.1 निर्णयन का क्या अर्थ है?
प्र.2 नियंत्रण चयन की प्रक्रिया है? क्या आप सहमत हैं?
प्र.3 क्या निर्णयण नियोजन का केन्द्र बिंदु है?

2.6 निर्णयन प्रक्रिया

निर्णयन प्रक्रिया

निर्णयन को प्रायः अनेक विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ के चयन के रुप में परिभाषित किया जाता है। अतः निर्णयन एक चयनात्मक क्रिया है। उचित विकल्प का चयन करने के लिए, समस्या की जानकारी प्राप्त करने से लेकर अंतिम निर्णय लेने व उसे लागू करने तक एक लंबे रास्ते को पूरा करना होता है। यह लंबा रास्ता अथवा उठाए जाने वाले विभिन्न कदम ही निर्णयन प्रक्रिया कहलाते हैं। निर्णय लेने की प्रक्रिया को दो भागों में विभक्त किया जाता है। प्रथम, परंपरागत प्रक्रिया तथा द्वितीय, वैज्ञानिक प्रक्रिया। परंपरागत प्रक्रिया के अंतर्गत प्रबंधक अपने सीमित ज्ञान, अनुभव एवं अनुमानों के आधार पर निर्णय लेते हैं और इसमें किसी

निश्चित प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है। दूसरी ओर, निर्णय लेने की वैज्ञानिक प्रक्रिया के अंतर्गत प्रबंधक अंतिम परिणाम तक पहुंचने के लिए एक व्यवस्थित प्रक्रिया का पालन करते हैं अर्थात एक के बाद एक अनेक सीढ़ियां पार करके ही मंज़िल तक पहुंचा जाता है। सफल निर्णय हेतु अपनाई जाने वाली वैज्ञानिक निर्णयन प्रक्रिया निम्नलिखित हैः

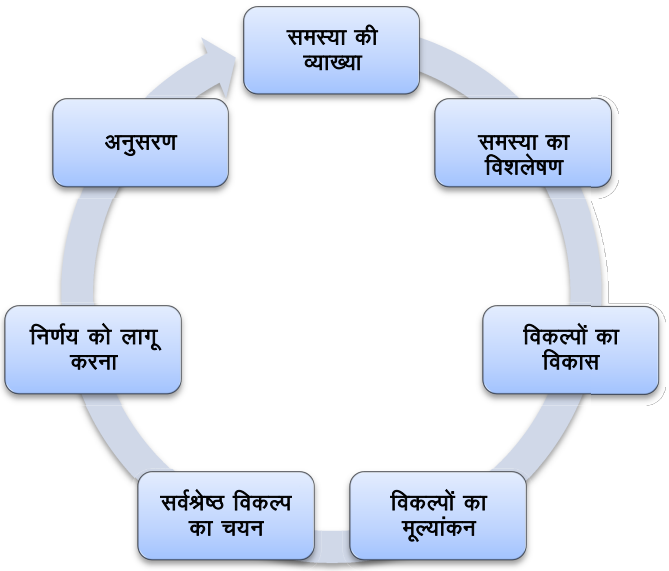

चित्र – 3.1 निर्णयन प्रक्रिया

(i) **समस्या की व्याख्या** : निर्णयन प्रक्रिया का पहला कदम उस समस्या की जानकारी प्राप्त करना है, जिसके संदर्भ में निर्णय लिया जाना है। सबसे पहले यह देखना होगा कि समस्या की बात कहां से शुरु हुई। प्रायः पूर्व निर्धारित उद्देश्यों एवं वास्तविक कार्य प्रगति में अंतर आ जाने के कारण ही समस्या प्रारम्भ होती है। अब यह देखना होगा कि परिणामों में अंतर का क्या कारण है? यदि इस अंतर का सही पता लग जाए तो समस्या का समाधान ढूंढना सरल हो जाता है।

(ii) **समस्या का विशलेषणः** समस्या को परिभाषित कर लेने के बाद प्रबंधक द्वारा इसका विश्लेषण किया जाता है। विश्लेषण के अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि समस्या के संबंध में किन–किन सूचनाओं की जरुरत होगी और ये सूचनाएं कहां से उपलब्ध होंगी। उदाहरणार्थ, विक्रय में कमी की समस्या के लिए समालोचक तत्व माल की किस्म को माना गया है। अब यहां पर माल की घटिया किस्म का विश्लेषण करने के लिए जिन सूचनाओं की आवश्यकता होगी, वे इस प्रकार हो सकती हैं– क्या घटिया किस्म के कच्चे माल का क्रय किया गया था, क्या मशीनों ने ठीक प्रकार

से काम नहीं किया, क्या आपूर्तीकर्ताओं ने जानबूझ कर घटिया कच्चा माल भेजा है, क्या कर्मचारियों में प्रशिक्षण की कमी है, क्या गुणवत्ता नियंत्रण अधिकारी ने लापरवाही की है, आदि। माना कि समस्या के विश्लेषण के आधार पर यह जानकारी प्राप्त हुई कि मशीनों में खराबी होने के कारण माल वांछित किस्म का तैयार नहीं हो सका।

समस्या के विश्लेषण के संबंध में यह समझ लेना जरुरी है कि सभी सूचनाओं का प्राप्त होना इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि यह जानना कि कौन–कौन सी सूचनाएं उपलब्ध नहीं हुई हैं ताकि अंतिम निर्णय लेते समय उपलब्ध न हुई सूचनाओं को निर्णय की सीमाओं के रुप में स्वीकार कर लिया जाएँ और इन्हीं सीमाओं को लेकर निर्णय में जोखिम का निर्धारण किया जा सके अर्थात यदि कोई सूचना उपलब्ध न हो सके तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि निर्णय नहीं लिया जा सकता। निर्णय तो लिया ही जाएगा लेकिन उसमें वांछित सूचनाओं की कमी के कारण सर्वोत्तम निर्णय न लिए जाने का जोखिम रहेगा। अतः केवल यह पता लग जाए कि कौन–कौन सी सूचनाएं प्राप्त नही हुई हैं तो उनके महत्व को देखते हुए निर्णय में जोखिम की मात्रा निर्धारित की जा सकती है।

(iii) **विकल्पों का विकासः** निर्णयन प्रक्रिया का तीसरा कदम विभिन्न विकल्पों का विकास करना है। जब समस्या को परिभाषित किया जा चुका है और उसके कारणों का गहन अध्ययन भी हो चुका हो तो अब प्रश्न उठता है कि समस्या के संभावित समाधान क्या–क्या हैं? एक समस्या के समाधान के रुप में अनेक विकल्प हो सकते हैं। यदि किसी समस्या के समाधान के रुप में केवल एक विधि उपलब्ध है तो फिर निर्णय लेने की आवश्यता ही नहीं होगा क्योंकि वह विधि अपने–आप में निर्णय ही है।

निर्णयन प्रक्रिया में लिए गए उदाहरण को विकल्पों के विकास के संदर्भ में आगे बढ़ते हुए यह देखना होगा कि माल की घटिया किस्म के लिए जिम्मेदार मशीनों की कमी को दूर करने के लिए क्या–क्या विकल्प हो सकते हैं। मशीनों की कमी को दूर करने के संभावित विकल्प इस प्रकार हो सकते हैं – यदि मशीनें बहुत पुरानी नहीं हैं तो उनकी मरम्मत करवा कर काम चल सकता है, यदि मशीनें पुरानी

हैं तो नई मशीनें क्रय की जा सकती हैं, यदि मशीनें अधिक लागत की होने के कारण उनको क्रय करना संस्था की पहुंच से बाहर हो, तो उन्हें किराए पर लिया जा सकता है आदि। अतः विकल्पों का विकास करते समय सीमित घटकों को ध्यान में रखा जाना जरुरी है। मशीन की अधिक लागत वाले विकल्प में वित्त सीमित घटक हैं जो प्रबंधक को इस विकल्प को छोड़ने पर मजबूर कर सकता है।

एक प्रबंधक विकल्पों की खोज करते समय अनेक स्रोतो का प्रयोग कर सकता है, जैसे – अपना पूर्व का अनुभव, दूसरों द्वारा अनपाए गए तरीके तथा एकदम नया विचार।

(iv) **विकल्पों का मूल्यांकनः** विभिन्न विकल्पों को ढूंढने के बाद अगला कदम विकल्पों का मूल्यांकन करना है ताकि सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव किया जा सके। विकल्पों के मूल्यांकन के अंतर्गत उनके गुणों एवं दोषों का अध्ययन किया जाता है। मूल्यांकन करने पर प्रबंधक को विभिन्न विकल्पों में निहित जोखिम की जानकारी प्राप्त होती है।

विकल्पों का मूल्यांकन समय एवं मुद्रो के संदर्भ में किया जाना चाहिए और केवल उस विकल्प का ही चयन करना चाहिए जो सर्वाधिक मितव्ययी हो। मूल्यांकन का कार्य सरल हो जाता है यदि एक विकल्प अन्य विकल्पों की अपेक्षा अधिक अच्छा हो। दूसरी ओर, एक ही स्तर के अधिक विकल्प प्राप्त होने पर समस्या गम्भीर हो जाती है। ऐसी स्थिति में उनका और गहराई से अध्ययन किया जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि कोई भी विकल्प स्वीकार्य न करना भी अपने–आप में एक महत्वपूर्ण निर्णय है। ऐसी स्थिति में प्रबंधक को किसी और उपयुक्त विकल्प की खोज करनी चाहिए।

(v) **सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयनः** विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक विकल्प प्रस्तुत समस्या के समाधान में कहां तक सहायक हो सकता है। निर्णयन प्रक्रिया के पांचवें चरण पर विभिन्न विकल्पों के संभावित परिणामों की तुलना करके सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है। सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करते समय प्रबंधक अपने अनुभव एवं प्रयोग की सहायता लेता है। प्रबंधक अपने अनुभव की सहायता तब ले सकता है जबकि उसे पहले कभी इस तरह की

समस्या का सामना करना पड़ा हो। कई बार विकल्पों को व्यवहार में प्रयोग करके देखा जाता है और अनुकूल परिणाम प्राप्त होने पर ही उनके बारे में विचार किया जाता है। प्रस्तुत उदाहरण में, माना कि माल की गुणवत्ता को सुधारने के लिए मशीनों की मरम्मत करवाने का विकल्प चुना गया। इस प्रकार किसी विकल्प का अंतिम चयन करने को निर्णय कहते हैं। यहां पर निर्णय तो ले लिया गया है लेकिन निर्णयन प्रक्रिया अभी समाप्त नहीं हुई है। इसके बाद भी निर्णय को लागू करना और उसके प्रभाव को रखना जरुरी है।

(vi) **निर्णय को लागू करना** : जब एक बार विकल्प का चयन कर लिया गया है तो इसके पश्चात अगला कदम उसे प्रभावशाली ढंग से लागू करना है। क्योंकि निर्णय को प्रभावशाली बनाने के लिए अन्य लोगों की कार्यवाही की आवश्यकता है। (प्रबंधक निर्णय लेता है कार्यवाही नहीं करता) इसलिए निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

(क) प्रभावशली संदेशवहन: निर्णय का प्रभावशाली संदेशवहन जरुरी है। इसकी स्पष्ट सूचना उन सभी व्यक्तियों तक पहुंचा देनी चाहिए जो इसको कार्यवाही में परिवर्तित करेंगे अर्थात निर्णय को वास्तविक रुप देंगे।

(ख) कर्मचारियों की स्वीकृति प्राप्त करना: निर्णय को प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिए संबंधित कर्मचारियों से स्वीकृति लेना भी जरुरी है। कर्मचारियों की स्वीकृति एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न विकल्पों का विकास करते समय उनसे सलाह ली जाए।

(ग) निर्णय लागू करने का ठीक समय: प्रत्येक निर्णय कुछ न कुछ परिवर्तन लाता है और कर्मचारी का स्वभाव परिवर्तन का विरोध करना होता है। इसीलिए निर्णय उसी समय लागू करना चाहिए जब सब कुछ ठीक–ठाक हो अर्थात उसके विरोध किए जाने का कोई डर न हो।

(vii) **अनुसरण** : निर्णयन प्रक्रिया का अंतिम चरण अनुसरण करना है। जैसे ही निर्णय को कार्यवाही में बदला जाता है तो परिणाम आना शुरु हो जाते हैं। ये परिणाम आवश्यक रुप से इच्छित वांछित/अपेक्षित परिणामों के अनुकूल होने चाहिएं। वास्तविक और इच्छित परिणामों के अंतर को देखने से यह पता चलता है कि निर्णय

को उचित रुप में लागू कर दिया गया है या नहीं। यदि परिणाम अच्छे नहीं है तो इसका अभिप्राय यह है कि फिर से एक समस्या आ खड़ी हुई है और निर्णय प्रक्रिया को पुनः प्रारंभ करना होगा। इस प्रकार पहले लिए गए निर्णय में संशोधन करना होगा, पुनः उसके परिणाम की जांच की जाएगी और यदि परिणाम अनुकूल हैं तो निर्णय को लागू रहने दिया जाएगा। लेकिन विपरीत परिणाम आने पुनः पर संशोधन की जरुरत होगी। अतः अनुसरण भी निर्णयन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.4 क्या नियोजन एक प्रक्रिया है?
प्र.5 विकल्पों के मूल्यांकन का क्या अभिप्राय हैं?
प्र.6 अनुसरण की क्या महत्ता है?

2.7 उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन

उद्देश्यों द्वारा प्रबंध MBO

आज जबकि व्यवसाय का पैमाना बढ़ रहा है, उत्पादन की नई–नई तकनीकों का उदय हो रहा है तथा व्यवसाय के लाभ उद्देश्य के स्थान पर सेवा उद्देश्य को प्राथमिकता दी जा रही है। प्रबंधन की पुरानी धारणाएं अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने में असहाय जान पड़ती हैं। यही कारण है कि पुरानी धारणाओं के स्थान पर नई घारणाओं का प्रतिपादन किया। इनमें उद्देश्यो द्वारा प्रबंधन तथा उपवाद द्वारा प्रबंधन प्रमुख हैं।

- **उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन का अर्थ**

  MBO का शाब्दिक अर्थ है उद्देश्यों के आधार पर प्रबंधन करना। प्रबंधन के इस दृष्टिकोण के जन्मदाता **पीटर.एफ. ड्रकर** हैं। इन्होंने इस दृष्टिकोण की व्याख्या 1954 में अपनी पुस्तक The Practical of Management" में की है। ड्रकर ने MBO के माध्यम से प्रबन्धकों को बताया कि ''व्यवसायिक उपलब्धि के लिए आवश्यक है कि व्यवसाय में की जाने वाली प्रत्येक क्रिया अथवा जांच को सम्पूर्ण व्यवसाय के उद्देश्य प्राप्ति की ओर संचालित किया जाए।'' (Business performance requires that each job directed towards the objective of the whole business) इसके साथ ही उन्होंने इस बात पर भी

जोर दिया कि उद्देश्यों का निर्धारण सभी संबंधित अधिकारी व अधीनस्थ सामूहिक रुप से करें। सामूहिक उद्देश्य निर्धारण विचारधारा की मान्यता है–भागीदारी से जिम्मेदारी बढ़ती है (Participatian leads to Commitment) अर्थात जब सभी संबंधित व्यक्ति एक साथ बैठकर उद्देश्यों का निर्धरण करेंगे और उन्हें प्राप्त करने की योजना बनाएंगे तो वास्तविक काम करते समय कोई समस्या उत्पन्न नहीं होगी। काम करते समय सभी को लगेगा कि वे अब सभी काम कर रहे हैं किसी दूसरे का नहीं। जब ऐसी भावना जन्म लेती है तो थोपे गये नियंत्रण के स्थान पर स्वतः नियंत्रण (Self controlled instead of imposed control) स्थापित होगा। अर्थात उद्देश्यों में भागीदारी से अपनेपन की भावना जन्म लेती हैं और तब किसी बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। अतः ऐसी स्थिति में सफलता की गारंटी की बात की जाए तो बिल्कुल भी गलत नहीं होगा।

MBO एक कार्य प्रधान प्रक्रिया नहीं है बल्कि एक परिणाम प्रधान प्रक्रिया है इसीलिए MBO को परिणाम द्वारा प्रबंधन भी कहा जाता है।

टूल बाक्स – 2 **उद्देश्यों के आधार पर प्रबन्धन**
उद्देश्यों के आधार पर प्रबंधन करना। प्रबंधन के इस दृष्टिकोण के जन्मदाता पीटर.एफ. ड्रकर हैं।

उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन की परिभाषा

उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन की परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं :–

(i) **पीटर.एफ. ड्रकर** के अनुसार, ''उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन एक प्रणाली है जिसके अंतर्गत सम्पूर्ण व्यवसाय, विभागीय एवं व्यक्तिगत प्रबंधक के स्तर पर उद्देश्यों का निर्धारण करके व्यक्तिगत प्रबंधक एवं सम्पूर्ण उपक्रम दोनों की कार्यकुशलता में वृद्धि की जाती है।''

(ii) **जार्ज.एस.ओडिओर्न** के अनुसार, '' उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन की पद्धति का वर्णन एक ऐसी प्रक्रिया के रुप में किया जा सकता है जिसके द्वारा संगठन के वरिष्ठ एवं अधीनस्थ प्रबंधक सामूहिक रुप से उसके सामान्य लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं, प्रत्येक से

अपेक्षित परिणामों के संदर्भ में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के मुख्य क्षेत्रों को परिभाषित करते हैं तथा उस इकाई को संचालित करने एवं प्रत्येक सदस्य के योगदान के मूल्यांकन हेतु इन मापदंडों को मार्ग–दर्शन के रुप में प्रयोग करते हैं।

(iii) **तोसी एवं करोल** के अनुसार, ''उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्रबंधक एवं अधीनस्थ उन क्रियाओं, लक्ष्यों, तिथियों एवं उद्देश्यों के समूह के संबंध मे एकमत होते हैं जो भविष्य में अधीनस्थों की कार्य'–निष्पति एवं मूल्यांकन हेतु आधार स्वरुप प्रयुक्त किए जाएंगे।

(iv) **एम.के.चक्रवर्ती** के अनुसार, '' उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन एक परिणाम–केंद्रित, गैर–विशिष्ट, क्रियात्मक प्रक्रिया है जो कि व्यक्तियों को संगठन के साथ मिलकर तथा संगठन को वातावरण के साथ मिलकर संगठन की सामग्री, भक्ति एवं मानवीय का प्रभावशाली उपयोग करती है।

उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन की विशेषताएँ

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर एम.बी.ओ. की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

(i) **सभी क्रियाएं उद्देश्य–प्रधान होती हैं**: एम.बी.ओं. की प्रथम विशेषता, संस्था की सभी क्रियाओं का उद्देश्य–प्रधान होना है। इसका अभिप्राय यह हे कि संस्था में की जाने वाली सभी क्रियाएं उद्देश्य प्राप्ति के संदर्भ में ही की जाती हैं।

(ii) **संगठनात्मक, विभागीय एवं व्यक्तिगत उद्देश्यों में सामंजस्य** : एम.बी.ओ. का आधार उद्देश्यों का अधिकारियों व अधीनस्थों द्वारा सामूहिक रुप में निर्धारण व उसकी प्रभावपूर्ण ढंग से प्राप्ति होता है। एम.बी.ओ. के अंतर्गत उद्देश्य निम्न क्रम में निर्धारित किए जाते हैं :–

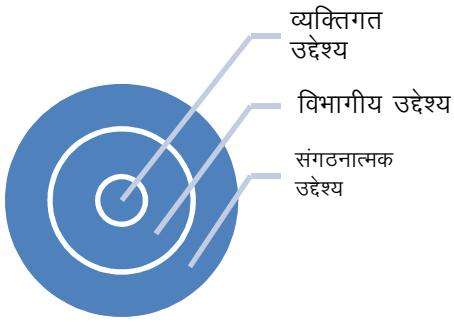

चित्र – 3.2 संगठनात्मक, विभागीय एवं व्यक्तिगत उद्देश्य

सर्वप्रथम एक संगठन/उपक्रम के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इन्हीं के संदर्भ में विभागीय उद्देश्य निश्चित किए जाते हैं। विभागीय उद्देश्यो को पूरा करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। अर्थात ऐसा प्रयास किया जाता है कि किसी भी स्तर पर उद्देश्यों में विरोध अथवा टकराव की स्थिति उत्पन्न न हो।

(iii) **एम.बी.ओ. संगठन को गतिशील इकाई मानता है** : एम.बी.ओ. की तीसरी विशेषता संगठन को एक गतिशील इकाई मानना है। प्रत्यके संगठन पर अनेक आंतरिक व बाहरी तत्वों का प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि संगठन को गतिशील इकाई माना गया है। संगठन के गतिशील होने का प्रभाव उद्देश्यो पर भी पड़ता है। हो सकता है आज जो उद्देश्य निर्धारित किए गये हों, कल उन्हें प्राप्त करना असंभव हो जाए। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर उद्देश्यों में परिवर्तन कर लेना चाहिए।

(iv) **एम.बी.ओ. एक भागीदारी प्रयास है** : एम.बी.ओ. की एक मान्यता यह है कि भागीदारी से जिम्मेदारी बढ़ती है। इसका अभिप्राय है कि जब हम किसी व्यक्ति को काम प्रारंभ करने से पहले ही साथ लेकर चलें तो अपने कार्य के प्रति उसकी निष्ठा बढ़ जाती है। यहां प्रारंभ से साथ लेकर चलने का अभिप्राय उद्देश्य निर्धारण में भागीदारी से है। निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि यदि कोई कर्मचारी उद्देश्य निर्धारण में भागीदारी करता है तो वह बढ़िया काम करने के लिए प्रोत्साहित होता है।

(v) **एम.बी.ओ. उद्देश्य एवं साधनों में सामंजस्य स्थापित करता है:** एम.बी.ओ. के अंतर्गत उद्देश्यों का निर्धारण उपलब्ध साधनों के संदर्भ में ही किया जाता है ताकि कोई भी क्रिया ऐसी न रह जाए जो साधनों के अभाव में अधूरी रह जाए। इसके अतिरिक्त आवश्यकता से अधिक साधन उपलब्ध होने पर उनके लाभकारी विनियोग की संभावनाओं की तलाश की जाती है।

(vi) **एम.बी.ओ. एक दर्शनशास्त्र है न कि एक पद्धतिः** एम.बी.ओ प्रबंधन की एक पद्धति नहीं है। यह तो प्रबंधन का दर्शनशास्त्र है। यहां पद्धति व दर्शनशास्त्र में अंतर समझ लेना जरुरी है। एक प्रबंधकीय पद्धति को कम्पनी के विशेष विभाग में ही लागू किया जा सकता है और अन्य विभागों में इसका प्रभाव नही के बराबर होता है। उदाहरण के लिए, एक स्टॉक नियंत्रण पद्धति का प्रयोग स्टॉक के संबंध में ही किया जा सकता है, न कि भर्ती व चयन प्रक्रिया में या किसी अन्य प्रक्रिया में। दूसरी ओर,

दर्शनशास्त्र का प्रभाव कम्पनी के सभी विभागों पर पड़ता है। जैसे – प्रशासकीय व्ययों को न्यूनतम स्तर पर लाने का निर्णय लेना। इस निर्णय से सभी विभाग प्रभावित होंगे क्योंकि एम.बी.ओ. एक ही समय पर पूरी संस्था को प्रभावित करता है इसलिए इसे प्रबंधन की एक पद्धति कहा गया है।

(vii) **एम.बी.ओ. पुनर्विचार एवं निष्पदान मूल्यांकन पर अधिक जोर देता है** : कर्मचारियो द्वारा किए जा रहे कार्य का समय–समय पर मूल्यांकन करते रहना एम.बी.ओ. की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इसके अंतर्गत देखा जाता है कि क्या सभी व्यक्ति अपेक्षित स्तर पर काम कर रहे हैं। क्या उनके काम में कोई बाधा तो उत्पन्न नहीं हो रही है। यदि आवश्यक हो तो उद्देश्यों एवं काम की विधियों पर पुनर्विचार किया जा सकता है और उनमें परिवर्तन किए जा सकते हैं।

(viii) **एम.बी.ओ. अधीनस्थों को अधिक स्वतंत्रता प्रदान करता है** : एम.बी.ओ. के अंतर्गत अधीनस्थों की केवल उद्देश्य निर्धारण में ही भागीदारी नहीं होती है बल्कि अपना काम करने में भी उन्हें पूरी स्वतंत्रता दी जाती है। उन्हें अपने पद से संबंधित निर्णय लेने के अधिकार प्रदान किए जाता है। इससे उनके पद की गरिमा बढ़ती है। परिणामस्वरुप वे अधिक रुचि से काम करते हैं और उन्हें पूर्ण कार्य संतुष्टि प्राप्त होती है।

(ix) **एम.बी.ओ. परिणाम पर जोर देता है न कि कार्य–विधि पर** : एम.बी.ओ. के अंतर्गत परिणाम पर अधिक ध्यान दिया जाता है अंतिम परिणाम पर पहुंचने के लिए किस विधि का प्रयोग किया जाए यह अधीनस्थों पर छोड़ दिया जाता है। अतः अधीनस्थों से सर्वश्रेष्ठ परिणामों की अपेक्षा की जाती है चाहे ये कैसे भी प्राप्त हो।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन क्या है?
प्र.8 पीटर ड्रकर की उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन में क्या योगदान हैं?
प्र.9 एम.बी.ओ. की दो विशषताएं बताएं।

उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन की प्रक्रिया

उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को निम्न चित्र में दर्शाया गया है :

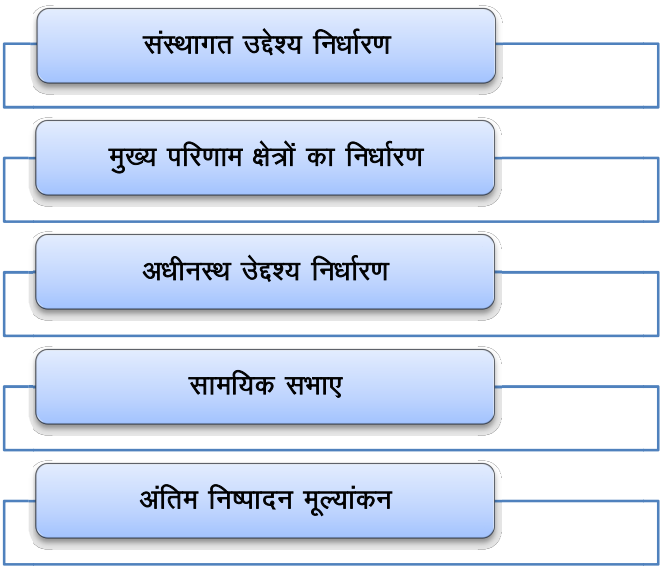

चित्र – 3.3 उद्देश्यों द्वारा प्रबंधकी प्रक्रिया

(i) **संस्थागत उद्देश्य निर्धारण**: एम.बी.ओ. का प्रथम चरण संस्थागत उद्देश्यों का निर्धारण करना है। प्रत्येक व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य व्यवसाय का विकास एवं विस्तार करना होता है। मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेक सहायक उद्देश्य निश्चित किए जाते हैं। ये उद्देश्य उच्च प्रबन्धकों द्वारा अधीनस्थ प्रबन्धकों की सलाह से निश्चित किए जाते हैं। मुख्य एवं सहायक उद्देश्यों में संस्था द्वारा किये जाने वाले कार्यों का लेखा–जोखा होता है। उद्देश्य निश्चित करते समय ध्यान रखना चाहिए कि ये प्राप्त करने योग्य हों। अर्थात ऐसे उद्देश्य निर्धारित करने चाहिए जिन्हें प्राप्त किया जा सके। एक बार जब ये उद्देश्य निर्धारित कर लिए जाएं तो इनकी जानकारी उपक्रम में काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को दे देनी चाहिए ताकि वे समझ सकें कि जिस उपक्रम के वे अंग हैं, आखिर उसका अंतिम लक्ष्य क्या है।

(ii) **मुख्य परिणाम क्षेत्रों का निर्धारण** : संगठनात्मक उद्देश्यों का निर्धारण करने के बाद मुख्य परिणाम क्षेत्रों का निर्धारण किया जाता है। मुख्य परिणाम क्षेत्रों का अभिप्राय उन क्षेत्रों अथवा क्रियाओं से है जिनमें व्यवसाय के स्वामी विशेष रुचि रखते हैं। ये क्षेत्र ही व्यवसाय की प्राथमिकताओं का निर्धारण करते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि ये वे क्षेत्र हैं जहां विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। प्रायः सभी

व्यवसायों में मुख्य परिणाम क्षेत्र इस प्रकार होते हैं – प्रबन्धकों की कार्यकुशलता, लाभदायकता, बाजार साख, सामाजिक दायित्व, वित्तीय साधन आदि।

(iii) **अधीनस्थ उद्देश्य निर्धारण** : संस्था के उद्देश्य निर्धारण करने के बाद अधीनस्थ कर्मचारियों के उद्देश्य विभागीय स्तर तथा व्यक्तिगत स्तर पर निश्चित करते समय ध्यान रखना चाहिए कि ये संस्थागत उद्देश्यों से भिन्न न हों। प्रत्येक स्तर पर निश्चित किए जाने वाले उद्देश्यों का अधीनस्थों से विचार विमर्श के बाद ही अंतिम रुप देना चाहिए। इस प्रकार किए गए विचार–विमर्श से अधीनस्थ प्रोत्साहित होते हैं। इस प्रकार से प्रोत्साहित कर्मचारी उद्देश्य प्राप्ति में सहायक होते हैं। इस स्तर पर निर्धारित किए जाने वाले उद्देश्य अल्पकालीन होते हैं। इसी चरण पर अधीनस्थों की सहमति से वास्तविक कार्य के मापदंड भी निश्चित कर दिये जाते हैं।

(iv) **सामयिक बैठक :** एम.बी.ओ. प्रक्रिया के इस चरण में वरिष्ठ एवं अधिनस्थ समय–समय पर इकट्ठे बैठकर देखते हैं कि वांछित कार्य प्रगति प्राप्त हो रही है या नहीं। यदि नहीं तो उसके क्या कारण है और उनका समाधान क्या होगा। सामयिक सभाएँ थोड़े– थोडें समय के बाद लगातार की जाती हैं। इनका उद्देश्य संगठन की कमजोरियो का समय पर पता लगाना है ताकि तुरन्त सुधारात्मक कार्यविधि करके संभावित हानि से बचा जा सके। यहां पर विशेष बात यह है कि सामयिक सभाओं का उद्देश्य कम काम करने वालों को सजा देना तथा अधिक काम करने वालों को ईनाम देना नहीं है। यह तो एम.बी.ओ. अवधाराणा का एक मुख्य हिस्सा है और इसके माष्यम से यह सुनिश्चित किया जाता है कि काम नियोजित ढंग से चल रहा है और संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया जाएगा।

सामयिक सभाओं से कर्मचारीयों में ऐसा संदेश जाता है कि उनका बॉस उनके काम में रुचि ले रहा है। इससे कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त सामयिक सभाओं से उद्देश्यों की प्राप्ति की संभावनाएं बढ़ जाती हैं।

(v) **अंतिम निष्पादन मूल्यांकन** : एक निश्चित समय के अंत में पूर्व निर्धारित मापदंडों के आधार पर अधीनस्थों के वास्तविक कार्य का मूल्यांकन किया जाता है। कार्य मूल्यांकन के आधार पर विचलनों का पता लगाया जाता है। जो कर्मचारी अपने

उद्देश्यों का प्रभावपूर्ण ढंग से पूरा नहीं कर पाते उनके लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है ताकि वे भविष्य में अच्छा कार्य कर सकें।

एक लगातार चलने वाले व्यवसाय में उद्देश्यों को बार–बार दोहराया जाता है। जैसे ही एक सत्र का काम पूरा होता है फिर अगले सत्र के लिए प्रक्रिया का पालन करना होता है।

उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन के लाभ

एम.बी.ओ. से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते है अथवा एम.बी.ओ का महत्व निम्नलिखित कारणों से है:

(i) **अधीनस्थों को प्रोत्साहन** : प्रत्येक कर्मचारी चाहता है कि संस्था में उसकी पहचान बने। यदि कर्मचारियों की यह इच्छा पूरी हो जाए तो वे प्रोत्साहित होते हैं। प्रोत्साहित कर्मचारी निश्चित रुप से अच्छा कार्य करते हैं। एम.बी.ओ के अंतर्गत उद्देश्य निर्धारण जैसे महत्वपूर्ण कार्य में अधीनस्थों को भागीदार बना कर उनकी इच्छा को पूरा किया जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि उन्हें अपनी कार्यविधि का चयन करने व अन्य निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता होती है। अतः कहा जा सकता है कि एम.बी. ओ. से अधीनस्थ प्रोत्साहित होते हैं। इसका संस्था के परिणामों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

(ii) **संदेशवाहन प्रक्रिया में सुधार** : अच्छा संदेशवाहन प्रत्येक संस्था की पहली आवश्यकता होती है। एम.बी.ओ. के अंतर्गत अधिकारी–अधीनस्थों में उद्देश्य निर्धारण से लेकर कार्य पूरा होने तक लगातार बैठकें होती रहती हैं। इससे एक उच्च स्तर का संदेशवाहन नैटवर्क स्थापित होता है। अर्थात विचारों के आदान–प्रदान में पूर्व स्वतंत्रता होती है।

(iii) **साधनों एवं क्रियाओं का अच्छा प्रबंध** : एम.बी.ओ. के अंतर्गत केवल उद्देश्यों का निर्धारण ही प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं किया जाता है बल्कि उन्हें पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन भी उपलब्ध कराये जाते हैं। उपलब्ध साधनों का बंटवारा इस ढंग से किया जाता है कि सभी क्रियाओं को पूरा किया जा सके। ऐसा प्रयास किया जाता है कि न तो साधनों के अभाव में कोई क्रिया अधूरी रह जाए और न ही साधन बेकार पड़े रहें।

(iv) **अनुसंधान को बढ़ावा** : एम.बी.ओ. के अंतर्गत परिणामों पर अधिक और उद्देश्य प्राप्ति के लिए अपनाई जाने वाली विधि पर कम ध्यान दिया जाता है। अधीनस्थों को काम करने की विधियों के चयन करने में पूरी स्वतंत्रता होती है। बेहतर प्रदर्शन दिखाने के लिए अधीनस्थ नई–नई कार्य विधियों की खोज करते हैं। इस प्रकार अनुसंधान को बढ़ावा मिलता है। इसका लाभ नियोक्ता व कर्मचारी दोनों को प्राप्त होता है।

(v) **संदेहों में कमी** : संस्था में काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की उद्देश्य निर्धारण में भागीदारी होने के कारण सभी को अपने अधिकार एवं दायित्वों की पूर्ण जानकारी होती है। सभी को मालूम होता है कि कौन किसका बॉस है और कौन किसका अधीनस्थ। अतः एम.बी.ओ. से अधिकार, दायित्व व आपसी संबंधों में अधिक स्पष्टता आती है।

(vi) **स्वतः नियंत्रणः** एम.बी.ओ. से थोपे गए नियंत्रण के स्थान पर स्वतः नियंत्रण व्यवस्था स्थापित होती है। यह मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि थोपे गए नियंत्रण से स्वयं नियंत्रण बहुत अच्छा होता है। अब प्रश्न यह उठता है एम.बी.ओ में यह परिवर्तन कैसे हो सकता है? एम.बी.ओं में अधीनस्थों की भागीदारी पर जोर दिया जाता है। भागीदारी से अपनेपन की भावना जागृत होती है। अपनेपन से स्वतः नियंत्रण होने लगता है। अर्थात जब कर्मचारी काम पर होते हैं तो उन पर किसी बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती बल्कि वे स्वयं ही नियंत्रण में रहकर काम करते हैं इससे संस्था को अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं और कर्मचारियों को कार्य संतुष्टि प्राप्त होती है।

(vii) **मुख्य परिणाम क्षेत्रों की स्पष्टताः** एम.बी.ओ. के अंतर्गत मुख्य परिणाम क्षेत्रों का निर्धारण किया जाता है। मुख्य परिणाम क्षेत्रों का अर्थ उन क्रियाओं से है जिन पर अधिक ध्यान देने की जरुरत है। ऐसा करने से प्रबंधकीय कार्यवाही को एक दिशा प्राप्त होती है। यह स्पष्ट हो जाता है कि किन क्रियाओं की सफलता पर उपक्रम की सफलता निर्भर करती है।

(viii) **परिवर्तन लागू करना आसान** : प्रत्येक संस्था अनेक आंतरिक व बाहरी तत्वों से प्रभावित होती है। इन तत्वों के साथ सामंजस्य करना जरुरी होता है। सामंजस्य स्थापित करने के लिए संस्था में अनेक परिवर्तन करने पड़ते हैं। जैसे– उत्पादन की

नई विधियों की खोज होने पर उन्हे लागू करना। प्रायः यह देखा जाता है कि कर्मचारी पुराने ढंग से ही काम करना चाहते हैं और किसी भी परिवर्तन का विरोध करते हैं। यहां पर मुख्य बात कर्मचारियों के विरोध से बचते हुए परिवर्तन को लागू करना है। एम.बी.ओ. के लागू किए जाने पर परिवर्तन को लागू करना आसान हो जाता है। इसका मुख्य कारण है कर्मचारियों को प्राप्त स्वतंत्रता। वे स्वयं ही नई–नई विधियों की खोज करते हैं। ऐसा करते–करते वे खोजप्रिय व गतिशील बन जाते हैं। वे परिवर्तन के विरोध की अपेक्षा उसे लागू करने में कार्यशील होते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.10 एम.बी.ओ. का पहला चरण क्या है?
प्र.11 मुख्य परिणाम क्षेत्र से आप क्या समझते हैं?
प्र.12 एम.बी.ओ. से क्या लाभ हो सकते हैं?

उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन की सीमाएँ

उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन के अनेक लाभ होते हुए भी इसकी कुछ सीमाएँ/समस्याएं/कमजोरियां है, इनका अध्ययन किया जाना आवश्यक हैं। एम.बी.ओ. की मुख्य सीमाएँ/समस्याएं/कमजोरियां निम्नलिखित है :–

(i) **कर्मचारियों पर अधिक दबाव** : एम.बी.ओं. के अंतर्गत संगठन के सभी स्तरों पर उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दबाव डाला जाता है। ऐसा करने से कर्मचारी अपने–आप को स्वतंत्र महसूस नहीं करते बल्कि हर समय दबाव में रहते हैं। दबाव से उनकी कार्यकुशलता में कमी होती है।

(ii) **समय की बर्बादी** : एम.बी.ओ. के अंतर्गत पूरे वर्ष सभाओं व प्रतिवेदनों के लेन–देन का दौर ही चलता रहता है। प्रबंधको का अधिक समय सभाओं में उपस्थित रहने व रिपोर्ट तैयार करने में ही लग जाता है। परिणाम स्वरुप, कुछ मुख्य कार्यों की ओर ध्यान न दिए जाने के कारण उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है। अतः कहा जा सकता है कि एम.बी.ओ. के लागू करने से समय की बर्बादी होती है।

(iii) **अमूल्य साधनों की बर्बादी**: भागीदारी से जिम्मदारी का बढ़ना, एम.बी.ओ. की एक आधारभूत मान्यता है। प्रथम चरण पर तो यह बिल्कुल ठीक है और इससे लाभ प्राप्त

होता है। लेकिन कई बार कर्मचारी अपनी जिम्मेदारी को कुछ ज्यादा ही महत्व देने लग जाते हैं। ऐसी स्थिति में वे अपना काम पूरा करने के प्रति अधिक उतावले हो जाते है। उनके उतावलेपन के कारण साधनों का दुरुपयोग होने लगता है। (हो सकता है।)

(iv) **उच्च प्रबंधन का अपूर्ण समर्थन** : एक संगठन में अधिकारों का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर चलता है। अर्थात उच्च प्रबंधन के अधिकार सर्वाधिक होते हैं। उच्च प्रबंधन अपने निर्णयों को अधीनस्थों पर थोपते हैं। ऐसा करना उन्हें अच्छा लगता है। दूसरी ओर एम.बी.ओ. में अधीनस्थों की चारदिवारी से उच्च प्रबंधकों के अधिकारों में कमी आती है, जिसे वे पसंद नहीं करते। अंततः एम.बी.ओ. को लागू करने में बाधा उत्पन्न होती है।

(v) **उद्देश्य निर्धारण में कठिनाई** : एम.बी.ओ. केवल उसी स्थिति में सफल होता है जब अधिकारी व अधीनस्थ दोनों एक–दूसरे की सीमाओं को ध्यान में रखकर उद्देश्यों का निर्धारण करें। प्रायः देखा जाता है कि वरिष्ठ अधिकारी ही उद्देश्यों का निर्धारण कर लेते हैं और अधीनस्थों को मात्र औपचारिकतावश बुलाया जाता है। उन्हें इतना समय नहीं दिया जाता कि वे अपने सुझाव दे सकें। और यदि वे अपने सुझाव देते भी हैं तो उन्हें अनदेखा कर दिया जाता है। इस प्रकार उद्देश्य निर्धारण में कठिनाई उत्पन्न होती है। इसका प्रभाव यह होता है कि उद्देश्यों को पूरा करना कठिन हो जाता है।

(vi) **दीर्घकालीन उद्देश्यों को महत्व देना:** एम.बी.ओ. की सफलता के लिए प्रबंधकों को चाहिए कि अल्पकालीन उद्देश्यों के साथ–साथ दीर्घकालीन उद्देश्यों के महत्व को भी समझें। ऐसा करने से अल्पकाल के साथ–साथ दीर्घकाल में भी संस्था की सफलता व विकास की उम्मीद बनी रहेगी।

(vii) **कर्मचारीयों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करना:** कुशल निपुण कर्मचारियों की कमी एम.बी.ओ. की सफलता को प्रभवित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व है। अतः इस कमी को पूरा करना अतिआवश्यक है। इसके लिए जरुरी है कि एम.बी.ओ. कार्यक्रम प्रारंभ करने से पूर्व ही संस्था में काम करने वाले हर व्यक्ति को इसकी जानकारी से परिचित करवा दिया जाए। प्रशिक्षण के दौरान ही कर्मचारियों के एम.बी.ओ. के संबंध में सभी संदेहों को दूर कर देना चाहिए। प्रायः कर्मचारी किसी भी नये

कार्यक्रम का लागू किए जाने का विरोध करते हैं। प्रशिक्षण के माध्यम से कर्मचारियों का मानसिक रुप से तैयार किया जा सकता है।

(viii) **भागीदारी प्रकृति का विकास करना**ः प्रायः देखा जाता है कि अधीनस्थों की प्रकृति भागीदारी की नहीं होती। इस समस्या के दूर करने के लिए अधीनस्थों को यह समझाया जाना चाहिए कि वे संस्था के मुख्य अंग हैं। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा दिये गये सुझावों को निर्णयों में उचित स्थान देना चाहिए। यदि एक बार उनके सुझाव को स्वीकार कर लिया गया तो वे बार–बार नये सुझावों के साथ आयेंगे। इस प्रकार भागीदारी की समस्या को समाप्त किया जा सकता है।

2.8 सारांश

सारांश

नियोजन या योजना बनाना प्रबंधन का आधारभूत प्राथमिक एवं महत्वपूर्ण कार्य है, जिस पर प्रबंधन के अन्य सभी कार्य निर्भर करते हैं। **हेनरी फेयोल** ने प्रबंधन के पांच कार्यों में नियोजन को प्रमुख कार्य माना है। नियोजन से अभिप्राय वर्तमान में यह निश्चित करने से है कि भविष्य में क्या किया जाना है। प्रत्येक प्रबंधक कार्य करने से पहले यह सोचता है कि क्या कार्य करना है, कहां करना है, कब करना है, कौन करेगा, किस विधि से किया जाएगा तथा किन साधनों से किया जाएगा आदि। अतः नियोजन कोई सरल कार्य नहीं है, इसके लिए पर्याप्त अध्ययन, चिन्तन व मनन की आवश्यकता होती हे। **हेयन्स तथा मैसी** ने ठीक ही कहा है कि 'नियोजन एक बौद्धिक प्रक्रिया है जिसके लिए सृजनात्मक विचारधारा तथा कल्पना की आवश्यकता होती है।'' नियोजन का प्रयोग संगठन के सभी स्तरों पर प्रबंधकों द्वारा किया जाता है। संगठन की स्थापना के समय, नियुक्तियां करते समय, निर्देश देते समय तथा नियंत्रण करते समय नियोजन को ध्यान में रखना पड़ता है। नियोजन एक व्यापक व निरंतर प्रक्रिया है। वास्तव में, प्रबंधन की सफलता, कुशलता एवं उचित नियोजन पर निर्भर है इसीलिए वैज्ञानिक प्रबंधन के जन्मदाता **श्री एफ.डब्ल्यू. टेलर** ने व्यवसाय में एक पृथक योजना विभाग की स्थपना पर बल दिया तथा शील्ड **के अनुसार ''योजना विभाग** प्रबंधन का हृदय है जिसका एकमात्र कार्य उत्पादन के विभिन्न पहलुओं में कार्यरत कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पूरा करना है।'' अतः नियोजन का अर्थ है संस्था के व्यापक उद्देश्यों को निश्चित करके योजना की अवधि के लिए व्यावसायिक पूर्वानुमान करना, लक्ष्य निर्धारित करना और एक समयबद्ध कार्यक्रम तैयार करना जो निम्न लागत औरा उच्च कुशलता के साथ प्राप्त करने में सहायता करें।

विभिन्न विकल्पों में से किसी एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प के चयन को निर्णयन की प्रक्रिया कहा जाता है। निर्णयन एक विकल्प को चुनने की क्रिया है। प्रायः संगठन में एक प्रबंधक को कदम–कदम पर विभिन्न विकल्पों में सं एक को चुन कर नियोजन करना होता है। ऐसा करने के लिए हर एक विकल्प का फायदा या नुकसान का मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। हर प्रबंधकीय कार्य, जैसे– नियोजन, स्टाफिंग इत्यादि में निर्णय लेना आवश्यक होता है।

निर्णय सभी प्रबंधकीय गतिविधियों एवं सभी कार्यों में किया जाता है। इस प्रतियोगी दुनिया में सही और उचित निर्णय ले कर एक संगठन को सुचारु रुप से चलाने में सहायक होता है।

उद्देश्य द्वारा प्रबंधन नियोजन की सहायक क्रिया है जिसमें एक संगठन के प्रबंधक एवं कर्मचारी एक साथ मिलकर लक्ष्य निर्धारित करते हैं। इस तकनीक का श्रेय प्रबंधन विशेषज्ञ **पीटर ड्रकर** को दिया जाता है जिन्होंने इसे 1950 के दशक में इस्तेमाल किया। एम.बी.ओ. के अंतर्गत एक संगठन में सभी पदे्न अधिकारी व कर्मचारी सक्रियता से संगठन के उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं व उन्हें प्राप्त करने में अपना पूरा योगान देते हैं। मिलकर बनाए गए लक्ष्य संगठन में आसानी से समायोजित हो जाते हैं।

2.9 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नियोजन को परिभाषित करें तथा इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।
2. नियोजन का चार विशेषताओं का वर्णन करें।
3. नियोजन की किन्हीं चार प्रकृति का वर्णन करें।
4. निर्णयन का क्या अर्थ है?
5. निर्णयन और नियोजन में क्या संबंध है?
6. निर्णयन को परिभाषित कीजिए।
7. निर्णयन क्या है? इसकी कोई दो विशेषताएँ बताइए।
8. उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन से आप क्या समझते हैं?
9. क्या एम.बी.ओ. से कार्य कुशलता में कमी आती है?
10. क्या किसी भारतीय उद्योग में एम.बी.ओ. लागू किया गया है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रभावी प्रबंधन के लिए नियोजन क्यों आवश्यक है।
2. योजनाओं के किन्हीं पांच प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन करें।
3. नियोजन के प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन करें।
4. उद्देश्य एवं नीतियों में अंतर बताइए।
5. बजट से आपका क्या अभिप्राय है? वर्णन करें।
6. निर्णयन एक चयनात्मक क्रिया है। क्या आप इससे सहमत हैं?
7. निर्णयन के बिना क्या नियोजन सफल हो सकता है? क्यों?
8. निर्णयन के पांच लाभ स्पष्ट करें।
9. 'उद्देश्यो द्वारा प्रबंधन' से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं तथा प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
10. एम.बी.ओ. की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
11. एम.बी.ओ. को परिभाषित कीजिए और इसके लाभ बताइये।
12. एम.बी.ओ. को परिभाषित कीजिए। इसकी सीमाएँ कौन–कौन सी हैं?

13. एम.बी.ओ. की कमजोरियों का वर्णन कीजिए और इसकी कुशलता को बढ़ाने के सुझाव दीजिए।
14. एम.बी.ओ. क्या है? इसके लाभ तथा कमियों को स्पष्ट कीजिए।
15. उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन क्या है? इसको प्रभावी बनाने के लिए आपके क्या सुझाव हैं?

2.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- देसाई, वसंत (2009) प्रबंधन के सिद्धांत, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
- अग्रवाल, आर. सी. एवं गुप्ता, संजय (2016) प्रबंध के सिद्धांत, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, आगरा
- Robbins, Stephen P., Coulter, M. &Vohra, N. (2011). Management. Pearson, New Delhi
- Tripathi, P.C. & Reddy, P.N. (2008), Principles of Management, 4th Edition, the McGraw Hill, New Delhi

इकाई – III : पूर्वानुमान एवं संगठन

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 पूर्वानुमान का अर्थ एवं आवश्यकता
3.3 पूर्वानुमान की तकनीक
3.4 संगठन का अर्थ एवं प्रक्रिया
3.5 अधिकार एवं उत्तरदायित्व
3.6 प्रबंधन का विस्तार
3.7 अधिकारों का प्रत्यायोजन
3.8 सारांश
3.9 बोध प्रश्न
3.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- प्रबंधन का अर्थ, प्रकृति एवं विशेषता को स्पष्ट कर सकेंगे।
- कार्य एवं स्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।
- प्रबंधन एवं प्रशासन में अंतर को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

एक प्रभावी योजना बनाने के लिए यह समझना आवश्यक है कि किसी विशिष्ट समय में व्यवसाय की स्थिति किस तरह दिखेगी। ऐसा करने से भविष्य में उत्पन्न होने वाल खतरों से भी नियाजित तरीके से सामना किया जा सकता है एव भविष्य में मिलने वाले मौकों का फायदा उठाने के लिए एक संगठन प्रयासरत हो सकता है । पूर्वानुमान के लिए मात्रात्मक व गुणात्मक तकनीकों का प्रयोग करते हुए एक संगठन भविष्य के बारे में बेहतर समझ कर अपने नियोजन को बदल सकती है।

किसी संस्था में कोई कार्य करने के लिए कुछ संसाधनों की आवश्यकता होती है। साथ ही जरुरी यह है कि उन संसाधनों को उपयोग करने के अधिकार भी हों। अधिकार का शाब्दिक अर्थ हुआ एक ऐसी शक्ति जिससे संसाधनों को प्रयोग में लाया जा सके। किन्तु यह भी आवश्यक है कि इन बहुमूल्य संसाधनों को बेकार खर्च न किया जाए। इसे उत्तरदायिता के साथ ही इस्तेमाल किया जाए।

सरल शब्दों में प्रत्यायोजन का एक आशय कार्य–भार सौंप देने से है। कार्य–भार सौंप देना एक संगठन की ही महत्वपूर्ण आवश्यकता है क्योंकि संगठन में जैसे–जैसे वृद्धि होती जाती है, कार्य बढ़ता चला जाता है, परिणामस्वरुप कर्मचारियों की संख्या भी बढ़ानी पड़ती है, क्योंकि संस्था के संपूर्ण प्रबंधन संचालक का कार्य कोई भी एक व्यक्ति नहीं कर सकता। यदि संगठन में अधीनस्थ नहीं होंगे तो संगठन का अस्तित्व ही नही होगा। वर्तमान बड़े पैमाने के युग में भारार्पण संगठन को कार्य–भार उसकी क्षमता से अधिक प्रभावित होता है तो वह अन्य व्यक्तियों को अपना प्राप्त कार्य–भार सौंप देता है और स्वंय उसकी देखभाल करता है और इसी प्रकार की प्रक्रिया उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर चलती रहती है।

3.2 पूर्वानुमान का अर्थ एवं आवश्यकता

पूर्वानुमान

पूर्वानुमान का अर्थ किसी भविष्य के बारे में पहले से ही अंदाज़ा लगाने से है। एक संगठन में कोई भी नियोजन लंबी दूरी का अथवा लघु दूरी का – पूर्वानुमान के आधार पर ही लिया जाता है। भविष्य परिवर्तनशील है किन्तु उसके बारे में वैज्ञानिक तरीके से अंदाज़ा लगाकर आने वाले खतरे से बचा जा सकता है। किसी प्रबन्धक द्वारा अपनी आज की नीती एवं भविष्य के नियोजन का आधार पूर्वानुमान होने से नियोजन का उद्देश्य सफलता से प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के लिए मौसम विशेषज्ञ आने वाले मौसम का पूर्वानुमान देते हैं, वैसे ही एक कुशल प्रबन्धक बाजार, उपभोक्ता, सरकारी नीतियों, आर्थिक हालात व अंर्तराष्ट्रीय स्तर की घटनाओं का पूर्वानुमान लगाकर एक संगठन को नियोजित करता है।

टूल बाक्स – 1
पूर्वानुमान
किसी भविष्य की घटना के बारे में वैज्ञानिक तरीके से अंदाज़ा लगाना पूर्वानुमान

कहलाता है।

पूर्वानुमान की मान्यताएँ

भविष्य को सही तौर पर देख पाना संभव नहीं है। किन्तु आने वाले खतरे से बचना व मौके का फायदा उठाने के लिए पूर्वानुमान का होना अच्छी प्रक्रिया है। पूर्वानुमान कुछ मान्यताओं पर आधारित हैः

(i) पूर्वानुमान क्षितिज : निकटतम भविष्य का पूर्वानुमान दूरस्थ समय के पूर्वानुमान से अधिक स्पष्ट व सटीक होगा। पूर्वानुमान का क्षितिज जितना कम होगा, उसे बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

टूल बाक्स – 2

पूर्वानुमान क्षितिज

पूर्वानुमान कितने समय के लिये किया जा रहा है।

(ii) व्यक्तिगत वस्तुओं या नतीजों की तुलना में एक संगठन की पूरी वस्तुओं का पूर्वानुमान अधिक सक्षम व सटीक होता हैं। उदाहरण के लिए, एक संगठन के किसी विक्रय कर्मचारी के एक साल का प्रदर्शन का पूर्वानुमान लगाने से बेहतर पूरी विक्रय विभाग के अंदाजा लगाना अधिक सटीक होगा।

(iii) पूर्वानुमान की सीमाः भविष्य के बारे में निश्चित तौर पर कुछ भी कह पाना संभव नहीं है। हालांकि एक बुद्धिमान प्रबंधक समझदारी से पूर्वानुमान लगाता है। किन्तु पूर्वानुमान की सीमाएँ होती हैं।

टूल बाक्स – 3

पूर्वानुमान की मान्यताएं

(i) पूर्वानुमान क्षितिज

(ii) पूर्वानुमान की सीमा

पूर्वानुमान की विशेषताएं

विलियम जे स्टीवेंसन ने अच्छे पूर्वानुमान की कुछ विशेषताओं की सूची दी है :

(i) सटीक : सटीकता की कुछ मात्रा निर्धारित कर लेना किसी भी नियोजन में सहायक होता है।

(ii) विश्वसनीय : पूर्वानुमान के लिए उपयोग किए जाने वाली विधि विश्वसनीय होना चाहिए।

(iii) पूर्वानुमान क्षितिज : अच्छे पूर्वानुमान की समय सीमा होना आवश्यक है। पूर्वानुमान अनिश्चित काल के लिए नही संभव है और न ही सटीक।

(iv) समझने व उपयोग करने में आसानः पुर्वानुमान का सही अध्ययन करने के लिए उसका सहज होना आवश्यक है ।

(v) लागत–प्रभावी : अच्छे पूर्वानुमान से भविष्य को सुरक्षित जरुर बनाया जा सकता है। किंतु संगठन को यह समझना आवश्यक है कि पूर्वानुमान करने की लागत, पूर्वानुमान से प्राप्त लाभ से अधिक न हो।

टूल बाक्स – 4
स्टीवेंसन के अनुसार पूर्वानुमान की विशेषताएँ (i) सटीक (ii) विश्वसनीय (iii) पूर्वानुमान क्षितिज (iv) सहज व सरल (v) लागत–प्रभावी

3.3 पूर्वानुमान की तकनीक

पूर्वानुमान की अनेक तकनीकें इस्तेमाल में लाई जा सकती हैं। इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

मात्रात्मक या गुणात्मक

(क) मात्रात्मक तकनीकें – मात्रात्मक तकनीकें, गुणात्मक की तुलना अधिक वस्तुपरक है। इनमें समय – श्रृंखला, साहचर्य मॉडल का प्रयोग किया जा सकता हैं इन कार्यों के कुछ पैटर्न हो सकते हैं। पैटर्न में – रुझान, नियमित विविधताएँ, अनियमित विविधताएँ एवं रैडम विविधताएँ शामिल हैं।

(ख) गुणात्मक तकनीकें – मात्रात्मक तकनीकों की तुलना में गुणात्मक तकनीके अधिक व्यक्तिपरक हैं। इसमें कुछ विविधयां –जैसे, डेल्फी तकनीक, नैतिकता, ग्रुप तकनीक (एन.जी.टी), बिक्री स्तर राय, कार्यकारी राय व बाजार अनुंसंधान शामिल हैं।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.1	संगठन में पूर्वानुमान की क्या आवश्यकता है?
प्र.2	क्या पूर्वानुमान एक भविष्यवाणी की तरह की जाती है?
प्र.3	पूर्वानुमान की गुणात्मक तकनीक क्या है?
प्र.4	मात्रात्मक पूर्वानुमान से आप क्या समझते हैं?

3.4 संगठन का अर्थ एवं प्रक्रिया

संगठन का अर्थ

प्रबन्ध का प्रथम कार्य नियोजन कर लेने के बाद प्रबंधकों को संगठन ढांचा तैयार करने की जिम्मेदारी होती है। इस कार्य को हम संगठन कहते हैं। इसके अंतर्गत निर्धारित किया जाता है कि क्या क्रियाएं की जाएंगी, क्रियाओं का समूहीकरण कैसे होगा, उत्तरदायित्व व अधिकारों का अंतरण कैसे होगा तथा कौन किसको रिपोर्ट करेगा।

टूल बाक्स – 5
संगठन
इसका अभिप्राय सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न अंगों में मैत्रीपूर्ण समायोजन करना है।

- **संगठन की परिभाषाएं**

विभिन्न विद्वानों ने संगठन के अर्थ के संबंधन में निम्नलिखित मत प्रस्तुत किये हैं:

(i) **हैने के अनुसार**, ''किसी सामान्य उद्देश्य अथवा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशेष अंगो का मैत्रीपूर्ण संयोजन ही संगठन कहलाता है।''

(ii) **हेमेन के अनुसार**, ''संगठन एक ढांचागत फ्रेमवर्क है जिसके अंतर्गत विभिन्न क्रियाओं को समन्वित तथा एक–दूसरे से संबंधित किया जाता हैं''

(iii) **मैक्फारलैंड के अनुसार**, ''संगठन का अभिप्राय व्यक्तियों के एक विशेष समूह से है जो एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ती के लिए मिलकर कार्य करते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है – एक संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं के निर्धारण करने एंव समूहीकरण करने तथा कर्मचारियों के मध्य औपचारिक संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया को संगठन कहते हैं।

- **संगठन की विशेषताएं**

विभिन्न प्रबन्धन विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तुत की गई परिभाषाओं के अध्ययन से संगठन की विशेषताओं अथवा प्रकृति के बारे में निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती है:

(i) **कार्य–विभाजन** – कार्य विभाजन संगठन का आधार होता है। अर्थात कार्य – विभाजन के बिना संगठन नहीं हो सकता। कार्य–विभाजन के अंतर्गत व्यवसाय के पूरे काम को अनेक विभागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक विभाग के कार्य को पुनः उपकार्यों में विभाजित कर दिया जाता है।

(ii) **समन्वय** – संगठन के अंतर्गत विभिन्न लोगों को अलग–अलग काम सौंपे जाते हैं लेकिन सभी का प्रयास एक ही होता है – उपक्रम के उद्देश्यों को पूरा करना। संगठन ऐसी व्यवस्था है कि सभी लोगों का काम अलग–अलग होते हुए भी एक –दूसरे से संबंधित होता है। परिणामतः समन्वय स्थापित करने में सहयोग मिलता है।

(iii) **अनेक व्यक्ति** – संगठन अनेक व्यक्तियों का समूह होता है जो समन्वय उद्देश्य को पूरा करने के लिए एकत्रित होते हैं। एक अकेला व्यक्ति संगठन का निर्माण नहीं कर सकता।

(iv) **सामान्य उद्देश्य** – संगठन के अनेक अंग होते हैं, सभी के अलग–अलग कार्य होते हैं लेकिन सभी एक सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने की ओर अग्रसर रहते हैं।

(v) **संगठन प्रबन्ध का एक यंत्र है** – संगठन को प्रबन्धन का संयंत्र माना जाता है। यह एक ऐसी मशीन है जिसमें यदि एक पुर्जा भी खराब हो जाये अथवा सही जगह पर न लगाया जाए तो मशीन काम नहीं करेगी। अर्थात यदि क्रियाओं के विभाजन में गलती हो जाए या पदों का स्थापन ठीक प्रकार से न हो तो सम्पूर्ण प्रबंध व्यवस्था विफल हो जाएगी।

- **संगठन का महत्व**

संगठन का महत्व अथवा लाभ निम्नलिखित बिंदुओं से स्पष्ट होता है:

(i) **विशिष्टीकरण**: संगठन के अंतर्गत सम्पूर्ण कार्यों को अनेक उपकार्यों में बांट दिया है। सभी उपकार्यों पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है। जो एक ही कार्य को बार–बार करके उसके विशेषज्ञ बन जाते हैं। इस प्रकार कम से कम समय में अधिक से अधिक कार्य होने लगते हैं और संस्था को विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं।

(ii) **कार्य संबंधों में स्पष्टता**: संगठन कर्मचारियों के साथ कार्य संबंधों को स्पष्ट करना है। इससे स्पष्ट होता है कि कौन किसको रिपोर्ट करेगा। परिणामतः संगठन भावी होता है। यह उत्तरदेयता निर्धारण में भी सहायक है।

(iii) **संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग**: संगठन प्रक्रिया के अंतर्गत कुल काम को अनेक छोटी–छोटी क्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक क्रिया को करने वाला एक अलग कर्मचारी होता है। ऐसा करने से न तो कोई क्रिया पूरी होने से छूटती है और न ही किसी क्रिया को अनावश्यक रुप से दो बार किया जाता है। परिणामतः संगठन में उपलब्ध सभी संसाधनों जैसे – सामग्री, मशीन, वित्त, मानव–शक्ति, 'संसाधन' आदि) का अनुकूलतम उपयोग संभव होता है।

(iv) **परिवर्तन में सुविधा** : संगठन प्रक्रिया एक संस्था को इस योग्य बना देता है कि वह कर्मचारियों के पद से संबंधित किसी भी परिवर्तन को आसानी से सहन कर लेती है। ऐसा ऊपर से नीचे सभी प्रबन्धकों का एक स्पष्ट अधिकार श्रृंखला में बंधे होने के कारण होता है। जब भी कोई प्रबंधकीय पद रिक्त होता है तो पदोन्नति द्वारा उसे तुरंत भर दिया जाता है। क्योंकि प्रत्येक अधिनस्थ अपने बॉस की कार्य–प्रणाली से पहले से ही भली भाँती परिचित होता है इसलिए उन्हें नया पद ग्रहण करने में कोई असुविधा नहीं होती।

(v) **प्रभावी प्रशासन** : प्रायः देखा जाता है कि प्रबंधकों के अधिकारों को लेकर भ्रम की स्थिति बनी रहती है। संगठन प्रक्रिया प्रत्येक प्रबन्धक द्वारा की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं व प्राप्त अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख करती हैं। यह भी स्पष्ट कर दिया जाता है कि प्रत्येक प्रबन्धक किस कार्य के लिए किसको आदेश देगा। प्रत्येक कर्मचारी को यह भी जानकारी होती है कि वह किसके प्रति उत्तरदायी है? इस प्रकार अधिकारों को लेकर उत्पन्न होने वाली भ्रम की स्थिति समाप्त हो जाती है। परिणामतः प्रभावी प्रशासन संभव होता है।

(vi) **कर्मचारियों का विकासः** संगठन प्रक्रिया के अंतर्गत अधिकार अंतरण किया जाता है। ऐसा एक व्यक्ति की सीमित क्षमता के कारण ही नहीं बल्कि काम करने की नई विधियों की खोज करने के लिए किया जाता है। इसमें अधिनस्थों को निर्णय लेने के अवसर प्राप्त होते हैं। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए वे नवीनतम विधियों की खोज करते हैं व उन्हें लागू करते है, परिणामतः उनका विकास होता है।

(vii) **विस्तार एवं विकासः** संगठन प्रक्रिया के अंतर्गत कर्मचारियों को प्राप्त निर्णय स्वतंत्रता से उनका विकास होता है। वे नई चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार रहते हैं। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए उपक्रम का विस्तार किया जा सकता है। विस्तार से उपक्रम की लाभ क्षमता बढ़ती है जो उनके विकास में सहायक सिद्ध होती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि संगठन प्रक्रिया में पदों, भूमिकाओं, अधिकारों व संबंधों की स्पष्ट व्याख्या करके नियोजन में बताए गए उद्देश्यों को वास्तविकता में बदलने के लिए ढ़ांचा तैयार किया जाता है। इस ढ़ांचे के आधार पर ही प्रबंध के आगे के कार्यों को

पूरा किया जाता है। इस संदर्भ में कहा जाता है कि संगठन का प्रबंधन में वही स्थान है जो मानव शरीर में हड्डियों के ढांचे का अर्थात संगठन प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.5	संगठन प्रक्रिया क्या है?
प्र.6	क्या संगठन प्रभावी प्रशासन में सहायक सिद्ध होता है।
प्र.7	क्या संगठन स संस्था को विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते है?
प्र.8	संगठन की परिभाषा से आप क्या समझते हैं?

संगठन प्रक्रिया

- **संगठन प्रक्रिया**

  प्रबंध के प्रथम कार्य नियोजन के अंतर्गत निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रबंधन का

  दूसरा कार्य 'संगठन' किया जाता है। प्रबंध के संगठन कार्य को पूरा करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैं।

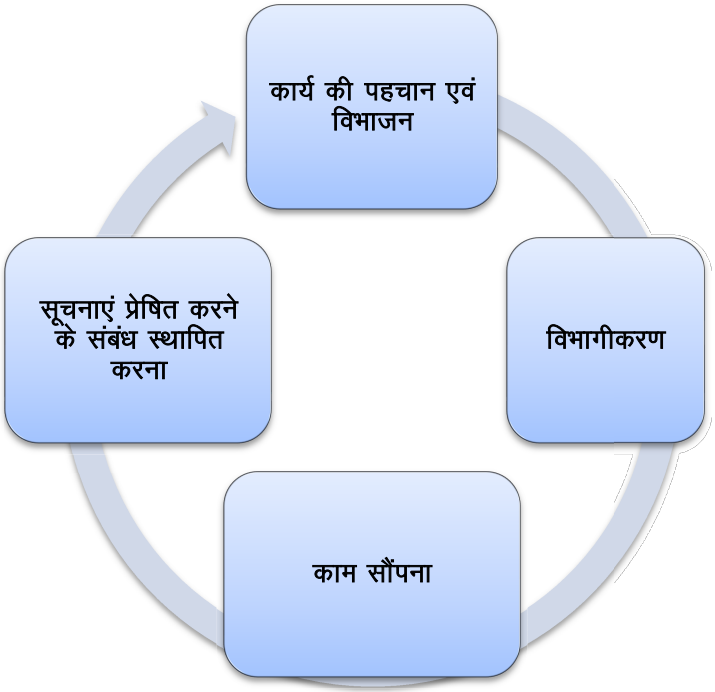

चित्र – 4.1 संगठन प्रक्रिया

(i) **कार्य की पहचान एवं विभाजन** : संगठन प्रक्रिया का प्रथम चरण कार्य की पहचान एवं विभाजन करना है। इस चरण पर कुल काम को अनेक क्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, एक कम्पयूटर का निर्माण करने वाली कम्पनी की विभिन्न क्रियाएं इस प्रकार हो सकती हैं।

- कच्चा माल क्रय करना।
- तैयार पुर्जे क्रय करना।
- उत्पादन।
- माल का स्टॉक रखना।
- अनुसंधान।
- विज्ञापन।
- विक्रय।
- वित्त व्यवस्था।
- लेखांकन।
- कर्मचारियों की व्यवस्था करना, आदि।

(ii) **विभागीकरण** : संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न क्रियाओं का निर्धारण कर लेने के बाद क्रियाओं का विभागीकरण किया जाता है। विभागीकरण के अंतर्गत एक समान क्रियाओं का एक समूह बना कर (इसे समूहीकरण कहते हैं) एक विशेष विभाग को सौंप दिया जाता है, जैसे – कच्चा माल क्रय करना, तैयार पुर्जे क्रय करना, आदि को क्रय विभाग को तथा उत्पादन करना, माल का स्टॉक रखना, अनुसंधान, आदि क्रियाओं को उत्पादन विभाग को सौंपा जा सकता है। इसी प्रकार विज्ञापन का कार्य विपणन विभाग को तथा वित्तीय व्यवस्था, लेखांकन एवं पत्र–व्यवहार का कार्य वित्त विभाग को सौंपा जा सकता है। क्रियाओं के समूहीकरण एवं विभागीकरण को निम्न चित्र में समझाया गया है जहां कम्पनी का उद्देश्य कम्पयूटर तैयार करना है।

(iii) **काम सौंपना** : इस चरण पर यह निश्चित किया जाता है कि प्रत्येक पद पर या व्यक्ति को क्या–क्या काम करने हैं: जैसे क्रय प्रबंधक को वस्तुओं को क्रय करने का

उत्तरदायित्व सौंपा जाएगा, विक्रय प्रबंधक को वस्तुओं के विक्रय का, विज्ञापन प्रबंधक को विज्ञापन का तथा इसी प्रकार वित्तिय प्रबंधक को वित्त व्यवस्था का कार्यभार सौंपा जाएगा। काम सौंपते समय काम की प्रकृति तथा व्यक्ति की योग्यता का मिलान करना आवश्यक है।

(iv) **सूचनाएं प्रेषित करने के संबंध स्थापित करना** : जब दो या अधिक व्यक्ति एक समान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं तो उनके संबंधों की स्पष्ट व्याख्या की जानी जरुरी है। इन संबंधों को 'रिपोर्टिंग रिलेशनज़' कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को यह पता होना चाहिए कि कौन उसका अधिकारी है तथा कौन अधीनस्थ। उदाहरण के लिए क्रय विभाग में काम करने वाले सभी व्यक्तियों का अधिकारी क्रय प्रबंधक होगा, उसी से उन्हें आदेश मिलेंगे और उसके प्रति ही वे उत्तरदायी होंगे।

3.5 अधिकार एवं उत्तरदायित्व

अधिकार

प्रबंधकीय कार्यो के निष्पादन के लिए प्रबंधक को अधिकारों की आवश्यकता होती है। इसके आधार पर ही वह अपने अधीनस्थों को कार्य का निष्पादन करने का आदेश देता है। अधिकार से आशय विशिष्ट स्वत्व, शक्ति अथवा अनुमति से लगाया जाता है। यदि अधिकार न हो, तो वह प्रबंधक ही नहीं है। अधिकार से आशय किसी व्यक्ति को प्राप्त उस शक्ति से है जिसके आधार पर वह अधीनस्थों को कार्य के निष्पादन के संबंध में आदेश देता है तथा उनसे कार्य लेता है। संगठन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन के अंतर्गत कार्य करने की गतिविधियों का मार्ग–दर्शन करने तथा उससे कार्य लेने के आदेश देने हेतु प्राप्त शक्ति अधिकार होती है। **थियो हैमन** के शब्दों में, ''अधिकार वह उचित शक्ति है जिसे धारण करने से विरत रहने के लिए कह सकता है और यदि वह इन निर्देशों का अनुसरण न करे, तो प्रबंधक इस स्थिति में होता है कि आवश्यकता होने पर अनुशासन की कार्यवाही कर पाए। यहां तक कि अधीनस्थ व्यक्ति को नौकरी से पृथक कर सके। अधिकार के बिना केवल अस्त–व्यस्तता ही बढ़ेगी।'' अधिकार एक वैधानिक शक्ति है अर्थात यह आदेश देने अथवा कार्य कराने का अधिकार है। प्रबंधन के क्षेत्र में अधिकार शब्द का उपयोग करने पर इसका आशय इस प्रकार है – ''अधिकार दूसरों को आदेश देने की शक्ति है। यह

उपक्रम अथवा विभागीय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, शक्ति प्राप्तकर्ता के निर्देशों के अनुरुप कार्य करने अथवा न करने का आदेश है।'' शक्ति में आदेशों का पालन निहित होता है। आदेशों का यह पालन मंजूरी, शक्ति, प्रार्थना, उत्पीड़न, डांट–डपट, आग्रह आर्थिक या अनार्थिक दंड अथवा प्रतिबंधों द्वारा कराया जा सकता है।

टूल बाक्स – 1
अधिकार
अधिकार एक वैधानिक शक्ति है अर्थात यह आदेश देने अथवा कार्य कराने का अधिकार है।

अधिकार या सत्ता की परिभाषाएं

प्रबंधन साहित्य में अधिकार या सत्ता शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। इसका कारण अधिकार के विभिन्न स्त्रोतो का होना है। विभिन्न विद्वानों ने सत्ता को अलग–अलग प्रकार से परिभाषित किया हे। यहां कुछ प्रमंख परिभाषाओं का उल्लेख किया गया है –

- **ऐलन** के अनुसार, ''सत्ता उन समस्त अधिकारों एवं शक्ति का योग है जो किसी व्यक्ति को प्रत्यायोजित कार्यों के निष्पादन को संभव बनाने के लिए सौंपे जाते हैं''
- **हेनरी फेयोल** के अनुसार, ''अधिकार प्रदान करने का अधिकार तथा आज्ञा पालन के लिए बाध्य करने की शक्ति को सत्ता कहते हैं''
- **एच.ए. साइमन** के अनुसार, ''अधिकार सत्ता निर्णय लेने एवं अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं को मार्गदर्शन करने की शक्ति है। यह दो व्यक्तियों के मध्य उच्चाधिकारी एवं अधीनस्थ का संबंध है। उच्च अधिकारी निर्णय लेते हैं एवं इस आशा एवं विश्वास के साथ उनका संवहन करते हैं कि अधीनस्थ उनका पालन करेंगे। अधीनस्थों के क्रियाकलाप ऐसे निर्णयों से ही निर्धारित होते हैं।''
- **कूण्टज एवं ओ' डोनेल** के अनुसार, ''अधिकार का तात्पर्य वैधानिक या स्वत्वाधिकार से संबंधी शक्ति से होता है। दूसरे शब्दों में, आदेश दने या कार्य करने का स्वत्व ही अधिकार है।''

- **थियो हैमेन** के अनुसार, ''अधिकार वह उचित कानूनी शक्ति है जिसे धारण करने वाला अधीन व्यक्ति को कुछ करने या न करने का आदेश दे सकता है और यदि वह इन निर्देशों का अनुसरण न करे तो प्रबंधक इस स्थिति में होता हे कि आवश्यक होने पर अनुशासन की कार्यवाही कर सके, यहां तक कि अधीन व्यक्ति को नौकरी से पृथक कर दे अधिकार के बिना केवल अस्त–व्यस्तता ही बढ़ेगी।''

अधिकार या सत्ता के स्रोत

अधिकार अपने कार्यक्षेत्र में स्वतंत्र निर्णय लेने के अधिकार से लेकर अपना कार्य कुशलतापूर्वक करने के लिए निश्चित धनराशी खर्च करने, संस्था को अपने वचन से वचनबद्ध करने का अधिकार तक, कुछ भी हो सकता है। प्रबंधन के क्षेत्र में यह अधिकार, सहायक लोगों का आदेश देने तथा उनसे आदेश पूर्ती करने से संबंध रखता है। अधिकार के उपयोग का मुख्य उद्देश्य अधीनस्थों के व्यवहार को इस प्रकार प्रभावित करना है कि वे संगठन के उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए जाते हैं क्योंकि किसी भी संगठन के संस्थापक उस संगठन के अधिकार स्त्रोत कहलाते हैं, लेकिन कुछ परिस्थितियों में ये नीचे से या बराबर के स्रोत से भी प्राप्त किए जा सकते हैं।

(i) **औपचारिक अधिकार – सत्ता की विचारधारा**

इस विचारधारा के अनुसार प्रत्येक अधिकारी को सत्ता अपने से उच्च अधिकारी से प्राप्त होती है और इस दृष्टि से मुख्य प्रबंधक सत्ता का स्त्रेात होता है। यदि सत्ता स्त्रोत की खोज आगे भी जारी रखी जाए तो हम पाएंगे कि मुख्य प्रबंधक को, कंपनी के सभापति को संचालक मंडल और संचालक मंडल को संस्थान के अंशधारियों अथवा स्वामियों से सत्ता प्राप्त होती है। अतः संस्थान के स्वामियों में सत्ता का अंतिम निवास माना जा सकता है, लेकिन सत्ता स्त्रोत की खोज को सत्ता कहां से प्राप्त होती है? स्वामियों को सत्ता देश के संविधान के अंतर्गत प्राप्त होती हैं जबकि संविधान देश के सभी विधान का मूल स्त्रोत माना जा सकता है। संविधान का निर्माण, संशोधन एवं परिवर्तन, देशवासियों द्वारा किया जा सकता है और इस प्रकार किसी भी प्रजातांत्रिक देश में सर्वोच्च सत्ता देशवासियों के हाथों में रहती है। इस प्रकार सत्ता सामाजिक स्वीकृति पर निर्भर करती है। एक बड़ी संस्था में सत्ता का

विवरण ऊपर से नीचे की ओर किया जाता है। संगठन की सर्वोच्च सत्ता इसके संस्थापकों के हाथों में मानी जाती ह जो इसे सर्वोच्च प्रबंधकों के हाथ में सौप देते हैं। सर्वोच्च प्रबंधक क्यो की सारा काम स्वयं नहीं कर पाते, अपनी सहायता के लिए सहायक अधिकारी नियुक्त करते है और उन्हें उनकी निपुणता व उत्तरदायित्व के अनुरुप कुछ काम सौंप देते हैं। ये सहायक प्रबंधक भी अपनी पारी में अपनी जिम्मेदारी बढ़ जाने पर आगे कुछ सहायक नियुक्त करते हैं और उन्हें सौपे गए कार्यों के अनुरुप कुछ अधिकार सौंप देते हैं। प्रबंधकों की यह क्रमिक नियुक्ति एक ओर संगठन के औपचारिक ढांचे को जन्म देती है और दूसरी ओर संगठन को भरने वाले अधिकारियों को तरह–तरह के अधिकारियों से युक्त कर देती है।

(ii) **स्वीकृति का सिद्धान्त :**

सइमन तथा बर्नार्ड इस सिद्धान्त के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन विद्वानों के मतानुसार किसी भी प्रबंधक के अधिकारों का अस्तित्व केवल उसी दशा में होता है जबकि अधीनस्थ कर्मचारी उन्हें स्वीकार करें। औपचारिक सत्ता एक नाममात्र की सत्ता है। यह सत्ता उसी समय प्रभावशाली बन पाती है, जबकि अधीनस्थ इस सत्ता को स्वीकार कर लें। इस प्रकार सत्ता का वास्तविक स्त्रोत उन व्यक्तियों में निहित होता है जिन पर सत्ता का प्रयोग किया जाना है और इस प्रकार के प्रयोग को स्वीकृति प्रदान करते हैं। **टैननबाम** के अनुसार, किसी व्यक्ति के पास औपचारिक सत्ता हो सकती है लेकिन यह सत्ता उस समय तक व्यर्थ ही होगी, जब तक कि उसके प्रभावशाली प्रयोग के लिए अधनस्थों की स्वीकृति अप्राप्त है। अधीनस्थ, आदेश की सत्ता को उस समय 'स्वीकार' करेगा जब वह उन आदेशों को समझता हो तथा उसके स्वंय के हितों के विरुद्ध नहीं है और वह उन्हें शारीरिक तथा मानसिक रुप से पूरा करने के लिए सक्षम है।

(iii) **क्षमता का सिद्धान्त** : कभी–कभी प्रभावशाली व्यक्तित्व भी अधिकार के स्त्रोत का कार्य करता

है। उदाहरण के लिए, ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जिन्हें यद्यपि औपचारिक रुप से कुछ भी अधिकार प्राप्त नही होते, किंतु प्रभावी व्यक्तित्व तथा विशिष्ट तकनीकी योग्यता के कारण उन्हें विशेष मान्यता दी जाती है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ऐसा ही प्रभावशाली

व्यक्तियों में से थे, जिनसे अनेक व्यक्ति आदेश प्राप्त करते थे। अनेक कुशल इंजीनियर तथा विद्वान अर्थशास्त्री भी इसी श्रेणी में सम्मिलित किए जा सकते है। इसी प्रकार धार्मिक संस्थाओं के प्रबन्धकों के अधिकार प्रायः समाज के मूलभूत आदर्शों तथा व्यक्तियों के आचरणों द्वारा निर्धारित होते हैं एवं उनमें परिवर्तन होने पर प्रबन्धकों के अधिकारों में भी परिवर्तन हो जाता है। इस विचारधारा के अनुयायी उच्च अधिकारी अपने क्षेत्र में स्वीकृति, योग्यता व निपुणता को उसके अधिकार और सत्ता का स्त्रोत मानते हैं। उदाहरण के लिए, औद्योगिक संगठन में एक औद्योगिक मनोवैज्ञानिक से इसलिए सलाह ली जाती है क्योंकि वह संस्था में लगे कर्मचारियों के मनोविज्ञान के बारे में एक साधारण प्रबंधक से कहीं अधिक जानता है और इसलिए कर्मचारी प्रबंधक को कार्य करने एवं अच्छा वातावरण तैयार करने, उनके लिए सही प्रेरणात्मक पारिश्रामिक नीति तय करने में, तथा औद्योगिक संबंधों को अधिक मधुर बनाने की दशा में कहीं अधिक अच्छा परामर्श दे सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 अधिकार शब्द का क्या अर्थ है?
प्र.2 किसी कर्मचारी को अधिकार कैसे प्राप्त हो सकते हैं?
प्र.3 क्षमता एवं अधिकार का क्या संबंध है?

उत्तरदायित्व

प्रबंध साहित्य के क्षेत्र में उत्तरदायित्व शब्द बहुत भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि विभिन्न प्रबंधकों द्वारा इसे अलग–अलग अर्थों में प्रयोग किया गया है। उत्तरदायित्व शब्द को कर्तव्य, कार्य तथा अधिकार के रुप में प्रयोग किया जाता है। कर्तव्य या कार्य के रुप में इसकी एक परिभाषा **मोरिस** हर्ले ने निम्न प्रकार दी है –

''उत्तरदायित्व वह कर्तव्य है जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति अपने स्थिति या कार्य के कारण से बाध्य है। कुछ उत्तरदायित्वों में उस व्यक्ति के निर्देश का पालन गर्भित होता है जो कि भारार्पण करते हैं।'' कुछ व्यक्ति उत्तरदायित्व शब्द को एक आबंधन या दायित्व के रुप में परिभाषित करते है। इस संबंध में निम्नलिखित परिभाषाएं महत्वपूर्ण हैं –

- **जार्ज आर टेरी** के अनुसार, "उत्तरदायित्व एक ऐसा आबंधन या दायित्व है, जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति सौपे गए कर्तव्यों को अपनी सर्वश्रेष्ठ क्षमता से सम्पन्न करता है।''
- **कुण्टज एवं ओ'डोनेल** के अनुसार, ''उत्तरदायित्वों को एक अधीनस्थ कर्मचारी के ऐसे दायित्व के रुप में परिभाषित किया गया है जिसको कोई कार्य सौपा गया है और वह उसे पूरा करता है।''
- **लुइस ए. एलन** के अनुसार, ''उत्तरदायित्व मानसिक तथा शारीरिक क्रियाऐं होती है जिन्हें किसी कार्य के करने अथवा कर्तव्य का पालन करने के लिए किया जाना चाहिए।''
- **आर.सी.डेविस** के अनुसार, ''उत्तरदायित्व का आशय अपनी सक्षमता व अधिकारी के निर्देश के अनुसार कार्य करने की सहमति देने से है।''
- **एक.ई. हर्ले** के अनुसार, ''उत्तरदायित्व वह कर्तव्य है जिससे व्यक्ति अपनी परिस्थिति के कारण बंधा होता है।

टूल बाक्स – 2
सतत उत्तरदायित्व यदि संगठन संरचना के अंतर्गत निरंतर चलते रहने वाले कार्य का भार संभालने हेतु कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के अधीन नियुक्त किया जाता है तो उसका उत्तरदायित्व सतत रहता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.4 उत्तरदायित्व का क्या अर्थ है?
प्र.5 उत्तरदायित्व की कोई दो परिभाषाएं बताइए।
प्र.6 सतत उत्तरदायित्व क्या है?

अधिकार व उत्तरदायित्व में अंतर

अधिकार : 'अधिकार का अभिप्राय निर्णय लेने की शक्ति से है।' निर्णय संसाधनों के प्रयोग करने अथवा कोई काम करने या न करने से संबंधित हो सकते हैं।

विशेषताएं

(i) अधिकार को दूसरे व्यक्ति को सौंपा जा सकता है।

(ii) इसका संबंध पद से है (पद के बदलते ही अधिकार बदल जाते हैं)

(iii) इससे निर्णयो का पालन करवाना संभव होता है।

(iv) अधिकारों को प्रबन्धकीय पद की कुंजी माना जाता है। क्योंकि यदि किसी पद के साथ अधिकार नहीं जुड़े हैं तो वह प्रबन्धकीय पद नहीं हो सकता।

उत्तरदायित्व : 'उत्तरदायित्व का अर्थ सौंपे गए काम को ठीक ढंग से पूरा करने की अधीनस्थ की जिम्मेदारी से है।' जब एक अधिकारी अपने अधीनस्थ को कोई काम सौंपता है तो उसे पूरा करना अधीनस्थ का उत्तरदायित्व बन जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उत्तरदायित्व शब्द काम सौंपने पर ही उत्पन्न होता है। अतः काम सौंपने का ही प्रकार उत्तरदायित्व सौंपना कहा जा सकता है।

विशेषताएं

(i) उत्तरदायित्व को दूसरे व्यक्ति को सौंपा जा सकता है।

(ii) इसका सार कर्त्तव्य का पालन करना है।

(iii) इसकी उत्पत्ति अधिकारी–अधीनस्थ संबंधों के कारण होती है।

अधिकार एवं उत्तरदायित्व में अंतर

अंतर का आधार	अधिकार	उत्तरदायित्व
1. **अर्थ**	निर्णय लेने की शक्ति	दिया गया कार्य जिम्मेदारी से पूर्ण करना
2. **दिशा एवं प्रवाह**	अधिकारों का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है।	उत्तरदायित्व का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर होता है।
3. **उद्‌गम**	यह संगठन में औपचारिक पद के कारण होता है।	यह अधिकारी–अधीनस्थ संबंध के कारण उत्पन्न होता है।
4. **सार**	इसका सार निर्णयो का पालन करवाना है।	इसका सार कर्तव्यों का पालन करना है।

- **जवाबदेही अथवा उत्तरदेयता**: 'जवाबदेही का अभिप्राय अधीनस्थ द्वारा कार्य निष्पादन के लिए अधिकारी को जवाब देने से है।' अन्य शब्दों में जब अधिकारी अधीनस्थ को

काम अथवा उत्तरदायित्व सौपता है और उसें पूरा करने के लिए आवश्यक अधिकार देता है तो अधीनस्थ कार्य निष्पादन के लिए अधिकारी के समक्ष जवाबदेह होता है।

विशेषताएं

(i) जवाबदेही को दूसरे व्यक्ति को नहीं सौंपा जा सकता।

(ii) यह केवल अधिकार सौंपने वाले व्यक्ति के प्रति होती है

(iii) इसका आधार अधिकारी–अधीनस्थ संबंध है।

(iv) यह अधिकार सौपने के कारण उत्पन्न होती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 अधिकार व उत्तरदायित्व में क्या संबंध है?
प्र.8 जवाबदेही से क्या अभिप्राय है?
प्र.9 क्या उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही एक ही प्रक्रिया है?

3.6 प्रबन्धन के विस्तार

प्रबन्धन के विस्तार का अर्थ

विस्तार का शब्दिक अर्थ किसी ढांचे अथवा भवन को सहारा देने वाले दो खंभों के बीच की दूरी से है। भवन को मजबूती प्रदान करने के लिए खंभों की दूरी न तो बहुत ज्यादा होनी चाहिए और न ही बहुत कम। यदि दूरी को ज्यादा रखा जाएगा तो अधिक खंभों की जरुरत पड़ेगी और परिणामतः भवन निर्माण की लागत अधिक प्रदान करने, और लागतों को न्यूनतम रखने के लिए दो खंभों के बीच में आदर्श दूरी का होना जरुरी है।

प्रबंधन में 'प्रबंधन के विस्तार' का अभिप्राय अधीनस्थों की उस संख्या से है जिसे प्रभावपूर्ण ढंग से नियंत्रित किया जा सके। अर्थात ऐसा संभव नहीं है कि एक प्रबन्धक बड़ी मात्रा में अधीनस्थों का निरीक्षण कर सके। भवन निर्माण में दो खंभों की आदर्श दूरी की बात प्रबंधन में भी लागू होती है। यहां आदर्श दूरी का अभिप्राय अधीनस्थों की ऐसी संख्या से है जिससे लागतें भी कम आएं और प्रबन्ध को मजबूती भी प्रदान की जा सके।

प्रबन्ध के विस्तार को नियंत्रण का विस्तार तथा निरीक्षण का विस्तार भी कहा जाता है।

टूल बाक्स – 3
प्रबंधन का विस्तार इसका अभिप्राय अधीनस्थों की उस संख्या से है जिस पर एक प्रबंधक नज़र रख सके। यह संख्या सामान्यतः 5–6 होती है।

प्रबन्धन के विस्तार की परिभाषा

मैक्फॉरलैंड के अनुसार, 'नियंत्रण का विस्तार अधीनस्थों की वह संख्या है जिसका एक अधिकारी निरीक्षण करता है।''

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि नियंत्रण का विस्तार अथवा प्रबन्ध का विस्तार अधीनस्थों की वह संख्या है जिसका एक अधिकारी कुशलतापूर्वक निरीक्षण कर सकता है।

प्रबन्ध के विस्तार की आवश्यकता

प्रबन्ध के विस्तार का विस्तृत अध्ययन करने से पहले यह जानने की जरुरत है कि ऐसे कौन–से तत्व हैं जिनके कारण प्रबन्धकों की निरीक्षण करने की सीमा होती है। प्रबन्ध की निरीक्षण क्षमता के सीमित हाने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

(i) **सीमित शक्तिः** प्रत्येक प्रबन्धक की मानसिक एवं शारीरिक शक्ति सीमित होती है जिसके कारण वह एक सीमा से अधिक अधीनस्थों का निरीक्षण ठीक प्रकार से नहीं कर सकता।

(ii) **सीमित समयः** एक प्रबन्धक को एक नहीं बल्कि अनेक काम करने होते हैं जिसके कारण उसका समय बंट जाता है। यदि इतने समय में उसे अधिक अधीनस्थों की देख–रेख भी करनी पड़ जाए तो कोई भी काम ठीक प्रकार से नहीं हो सकेगा।

(iii) **सीमित ध्यान शक्तिः** एक प्रबन्धक एक समय में केवल कुछ ही समस्याओं की ओर ध्यान केन्द्रित कर सकता है। अधीनस्थों की संख्या अनावश्यक रुप से बढ़ जाने के कारण वह उनकी सभी समस्याओं को नहीं सुलझा सकता।

एक उपयुक्त 'प्रबन्ध का विस्तार' क्या है?

यह स्पष्ट कर लेने के बाद कि प्रबन्धक निश्चित सीमा में ही अधीनस्थों का निरीक्षण कर सकता है, अब प्रश्न उठता है कि यह निश्चित सीमा क्या है? अर्थात एक प्रबन्धक कितने अधीनस्थों का निरीक्षण प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकता है। इस संबंध में विभिन्न प्रबन्ध विशेषज्ञों में गहरा मतभेद है। विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारों को दो भागों में बांटा जा सकता है:

(i) **परंपरावादी विचारधारा** : इस विचारधारा के मुख्य समर्थक सर हेमिलटन, उर्विक, अर्नस्ट डेल, जे.एच.हैली तथा वी.ए. ग्रेकुनाज हैं। सर हेमिल्टन के अनुसार, अधीनस्थों की आदर्श संख्या 3 से 6 तक होती हे। उर्विक ने उच्च स्तर पर अधीनस्थों की संख्या 4 तथा निम्न स्तर पर 8 से 12 बताया है। अर्नेस्ट डेल ने उच्च स्तर पर प्रबन्ध के विस्तार को 8 से 9 तक बताया है। जे.एच.हैली ने कहा है कि उच्च स्तर पर अधिनस्थों की संख्या 5 से अधिक नहीं होनी चाहिए और निम्न स्तर पर यह संख्या 7 या 8 होनी चाहिए। वी.ए.ग्रेकुनाज जोकि फ्रांसीसी प्रबन्ध विशेषज्ञ हैं, ने प्रबन्ध के विस्तार को स्पष्ट करने के लिए एक गणितीय सूत्र का आविष्कार किया है जिसका वर्णन निम्न है:

प्रबन्ध के विस्तार के बारे में ग्रेकुनाज का विचार: इनके अनुसार, ''अधीनस्थों की संख्या जैसे–जैसे अंकगणितिय रुप से बढ़ती है, वरिष्ठ एवं अधीनस्थों के मध्य संबंधो की संख्या में लगभग रेखा गणितीय अनुपात में वृद्धि होती है।''

ग्रेकुनाज के अनुसार, प्रबन्धक एवं अधीनस्थों के मध्य तीन प्रकार के संबंध उत्पन्न होते हैं:

(i) प्रत्यक्ष संबंध

(ii) समूह संबंध

(iii) प्रति संबंध

ग्रेकुनाज ने अपने निष्कर्ष में कहा है कि इन संबंधो की संख्या को ध्यान में रखकर ही प्रबन्ध के विस्तार को निश्चित करना चाहिए। ग्रेकुनाज की इस विचारधारा को निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है:

यदि ''M' प्रबन्धक है और S_1व S_2 दो अधिनस्थ हैं तो ऊपर बताए गए तीनों प्रकार के संबंध इस प्रकार होंगे:

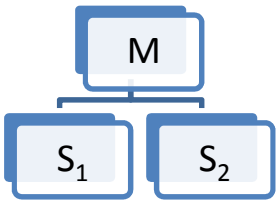

चित्र – 5.1 ग्रेकुनाज – प्रबन्धक एवं अधीनस्थों के मध्य संबंध

(i)	प्रत्यक्ष संबंध	M का S_1 से	=2
		M का S_2से	
(ii)	समूह संबंध	M का S_1 से जबकि S_2 भी साथ है	=2
		M का S_2 से जबकि S_1 भी साथ है	
(iii)	प्रति संबंध	S_1 का S_2 से	=2
		S_2 का S_1 से	
		कुल संख्या	=6

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि एक प्रबंधक के साथ दो अधीनस्थ हैं तो उनके मध्य संबंधों की संख्या 6 होगी। संबंधों की संख्या ज्ञात करने के लिए ग्रेकुनाज का सूत्र इस प्रकार है।

संबंधों की संख्या

उपरोक्त सूत्र के आधार पर अधीनस्थों की विभिन्न संख्याओं से उत्पन्न संबंधो को अप्रलिखित तालिका में दिखाया गया है:

अधीनस्थों की संख्या	संबंधो की संख्या
1	1
2	6
3	18
4	44
5	100
6	222
7	4910
8	1080
9	2376
10	5210
11	11374
12	24708

ग्रेकुनाज के मतानुसार, एक प्रबन्धक 222 संबंधों अर्थात 6 अधीनस्थों का निरीक्षण प्रभावपूर्णा ढंग से कर सकता है। उन्होंने कहा कि उच्च स्तर पर 5 से 6 और निम्न स्तर पर 20 अधीनस्थों की एक आदर्श संख्या है।

(ख) **आधुनिक विचारधारा**: आधुनिक प्रबन्ध विशेषज्ञ परंपरावादी विचारधारा से सहमत नहीं है। ग्रेकुनाज के विचार का विरोध करते हुए कहा गया है कि इसके द्वारा किए गए सभी संबंध प्रतिदिन उत्पन्न नहीं होते और कुछ तो ऐसे हैं जो कभी भी उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकार संबंधो की संख्या को अनावश्यक रुप से बढ़ाया गया है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार प्रबन्धक की क्षमता निश्चित न होकर उसकी अपनी क्षमता पर निर्भर करती है। हो सकता है कि एक प्रबन्धक किसी विशेष परिस्थिति में अधिक लोगों का कुशलतापूर्वक निरीक्षण कर ले, जबकि दूसरा प्रबन्धक वैसी ही परिस्थितियों में कम लोगों का कुशलतापूर्वक निरीक्षण न कर सके। निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि प्रबन्धक के व्यक्तिगत गुण व अनेक अन्य तत्व प्रबन्ध के विस्तार का निर्धारण करते हैं। प्रबन्ध के विस्तार का निर्धारण करने वाले तत्वों का वर्णन निम्नलिखित है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.10 प्रबन्ध का विस्तार क्या है?
प्र.11 विस्तार की आधुनिक विचारधारा क्या है?
प्र.12 प्रबन्ध के विस्तार के बारे में ग्रेकुनाज का क्या योगदान है?

प्रबन्ध के विस्तार को प्रभावित करने वाल तत्व

प्रबन्ध का विस्तार अर्थात एक प्रबन्ध के अधीनस्थों की संख्या पर निम्नलिखित तत्वों का प्रभाव पड़ता है:

(i) **कार्यों की जटिलता** : यदि कार्य जटिल प्रकृति का है तो कम अधिनस्थों का ही निरीक्षण किया जा सकता है। क्योंकि जटिल कार्य होने के कारण अधीनस्थ बार–बार प्रबन्धक से मिलने जाएगा और उनकी समस्याओं को सुलझाने में समय भी अधिक लगेगा। इसके विपरीत, यदि कार्य समान है तो समास्याएं कम उत्पन्न होंगी और एक

प्रबन्धक अपेक्षाकृत अधिक अधिनस्थों का ध्यान रख सकेगा अर्थात 'प्रबन्ध का विस्तार' अधिक होगा।

(ii) **प्रबन्ध की योग्यता** : प्रबन्ध का विस्तार बहुत कुछ प्रबन्धक के ज्ञान, शक्ति, अनुभव तथा रुचि पर निर्भर करता है। एक अधिक योग्य प्रबन्धक अपेक्षाकृत अधिक अधिनस्थों पर नियंत्रण कर सकता है। फलस्वरुप प्रबन्ध का विस्तार बढ़ जाता है।

(iii) **अधीनस्थों की योग्यता** : यदि अधिनस्थों में इतनी योग्यता है कि वे सौंपे गए काम को आसानी से कर सकते हैं तो प्रबन्धकों को उन पर अधिक ध्यान नहीं करना पड़ेगा और परिणास्वरुप एक ही समय पर अधिक अधीनस्थों का निरीक्षण संभव होता है। इसके विपरीत, यदि अधिनस्थ अयोग्य अथवा कमजोर है तो उन पर प्रबन्धकों का अधिक समय लगता है और परिणामतः प्रबन्ध का विस्तार कम हो जाता है।

(iv) **विशेषज्ञो की सेवाओं की उपलब्धताः** यदि प्रबन्धकों अथवा लाईन अधिकारियों की सहायता के लिए स्टाफ अधिकारी उपलब्ध है तो प्रबन्ध का विस्तार अधिक होगा क्योंकि विभिन्न जटिल समस्याओं के बारे में विशेषज्ञों की राय मिलती रहेगी और समस्याओं का निपटारा शीघ्र होता रहेगा।

(v) **भारार्पण की मात्रा** : प्रत्येक वह प्रबन्धक जो निर्णय लेने के अधिक अधिकार अपने पास ही रखता है, वह कम अधिनस्थों की देखभाल कर सकता है। इसके विपरीत, प्रत्येक वह प्रबन्धक जो निर्णय लेने के अधिक अधिकार अधिनस्थों को सौंप देता है, अधिक अधीनस्थों की देखभाल कर सकता है और प्रबन्ध का विस्तार अधिक होता है।

(vi) **अधिकारों एवं दायित्वों की स्पष्टता** : यदि संगठन में कार्यरत सभी कर्मचारियों के अधिकार एवं दायित्वों की स्पष्ट व्याख्या की जाए तो प्रबन्ध विस्तार अधिक होगा क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति को पहले से ही पता होता है कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं। इस तरह वे अधिकारियों का अधिक समय खराब नहीं करते।

(vii) **संदेशवाहन प्रणाली** : आधुनिक संदेशवाहन प्रणाली का प्रयोग किए जाने पर प्रबन्धक एक ही समय पर अनेक अधीनस्थों को निर्देश दे सकता है जिससे प्रबन्ध का विस्तार बढ़ता है।

(viii) **स्थाई योजनाओं का प्रयोग** : स्थाई योजनाओं, नीतियों, नियमों एवं कार्यविधियों के प्रयोग के किए जाने पर कार्यभार में कमी आती है। इसके अंतर्गत एक जैसी सभी समस्याओं के लिए पहले से ही समाधान बता दिए जाते हैं जिसके कारण अधीनस्थों को बार–बार प्रबन्धकों के पास नहीं जाना पड़ता। परिणामतः प्रबन्ध का विस्तार अधिक होगा।

(ix) **भौगोलिक स्थिति** : प्रबन्ध के विस्तार पर अधीनस्थों की भौगेलिक स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि एक कार्यालय प्रबंधक तथा उसके 20 अधीनस्थ एक ही कमरे में बैठे हैं तो वह उन पर ठीक से नियंत्रण कर सकता है। लेकिन यदि एक विक्रय प्रबंधक के साथ 20 सेल्ज़मैन काम करते हैं और सभी के कार्यालय अलग – अलग शहरों में स्थित हैं तो उन पर नियंत्रण कर पाना मुश्किल है। परिणामतः प्रबंधन का विस्तार कम होगा।

(x) **आर्थिक बंधन** : जैसा कि प्रबंध का विस्तार जितना कम होगा उतने ही अधिक प्रंबंधकों की नियुक्ति करनी पड़ेगी और इस प्रकार संस्था पर प्रबंधकीय खर्चों का भार बढ़ेगा। इसके विपरीत, यदि प्रबंधन का विस्तार बढ़ा दिया जाता है तो कम प्रबंधकों की जरुरत होगी और प्रबंधकीय खर्चों मे बचत होगी। अतः जो संस्थाएं वित्तिय रुप से कमजोर है उनमें प्रबंधन का विस्तार अधिक रखा जाता है तथा जो संस्थाएं वित्तिय रुप सें सुदृढ़ है उनमें प्रबंधन का विस्तार कम रखा जा सकता है।

प्रबन्धन के विस्तार के प्रकार

प्रबंधन का विस्तार या तो विस्तृत हो सकता है या संकीर्ण। प्रबन्धन एवं संगठनात्मक ढ़ांचे में गहरा संबंध है। प्रबन्धन के विस्तार के आधार पर संगठनात्मक ढ़ांचे के भी दो प्रकार हो सकते हैं:

प्रबन्धन के विस्तार के प्रकार		**संगठनात्मक ढ़ांचे के प्रकार**
विस्तृत ' प्रबन्ध का विस्तार'	⟶	चपटा अथवा समतल ढ़ांचा
संकीर्ण ' प्रबन्ध का विस्तार'	⟶	ऊँचा अथवा लम्बवत ढांचा

(क) विस्तृत प्रबन्धन का विस्तार : यदि एक प्रबन्धक एक ही समय में अनेक अधीनस्थों की देख–रेख करता है तो इसे विस्तृत 'नियंत्रण का विस्तार' कहा जाएगा। ऐसी

दशा में प्रबन्धकीय स्तर कम होने के कारण संगठन का ढांचा चपटा अथवा समतल होगा। उदाहरण के लिए, एक विक्रय प्रबन्धक के नीचे 12 सेल्ज़मैन काम करते हैं और वह उन सभी की कुशलता देख–रेख कर रहा है। इसका अभिप्राय यह है कि संगठन ढांचा समतल है और यहां पर केवल एक ही अधिकारी की जरुरत है। इसे निम्न चित्र में दिखाया गया है:

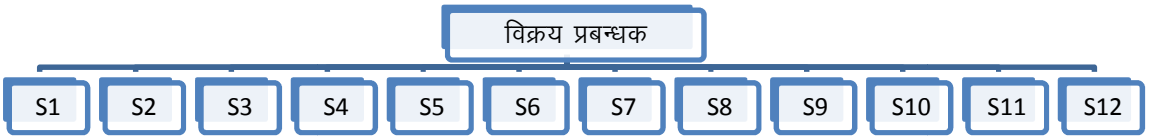

चित्र 5.2: विस्तृत 'प्रबन्ध का विस्तार'

विस्तृत 'प्रबन्ध के विस्तार' के लाभ व दोष :

- **लाभ** :

(1) कम निरीक्षण अधिकारियों की आवश्यकता होने के कारण प्रबन्धकीय लागतें कम आती हैं।

(2) अधिकारी एवं अधीनस्थों में सीधा संपर्क होने के कारण अधिक सहयोग रहता है।

(3) संदेशवाहन व्यवस्था प्रभावपूर्ण रहती है।

- **दोष :**

(1) एक ही समय पर अनेक अधीनस्थों की देख–रेख करने के कारण नियंत्रण कमजोर रहता है।

(2) अधिक कार्यभार होने के कारण निर्णय देरी से लिए जाते हैं।

(3) दैनिक कार्यों अथवा समस्याओं में उलझे रहने के कारण रचनात्मक कार्य नहीं हो पाते।

(ख) संकीर्ण 'प्रबन्ध का विस्तार' : यदि एक प्रबन्धक एक समय में कम अधीनस्थों की देख–रेख करता है तो इसे संकीर्ण 'प्रबन्ध का विस्तार' कहेंगे। ऐसी दशा में

प्रबन्धकीय स्तर अधिक होने के कारण संगठन का ढांचा ऊँचा अथवा लम्बवत् होगा। उदाहरण के लिए, यदि एक विक्रय प्रबन्धक 12 अधीनस्थों (सेल्ज़मैन) पर नियंत्रण करने में कठिनाई महसूस करता है तो वह अपने नीचे 3 उप–प्रबन्धक नियुक्त कर सकता है तथा प्रत्येक उप–प्रबन्धक को 4–4 अधीनस्थ सौप देता हे। इस प्रकार अब एक अधिकारी के स्थान पर विक्रय प्रबन्धक सहित चार अधिकारियों की जरुरत पड़ेगी। इसे चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है:

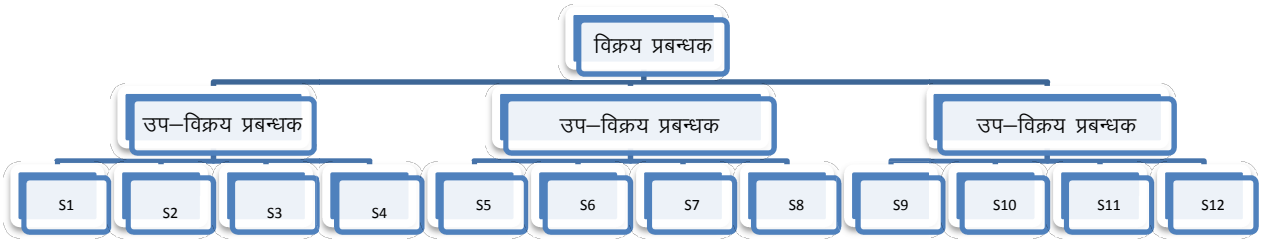

चित्र 5.3: संकीर्ण 'प्रबंधन का विस्तार'

संकीर्ण प्रबन्ध के विस्तार के लाभ व दोष निम्नलिखित हैं:

- **लाभ** :

(1) अधीनस्थों की संख्या कम होने के कारण नियंत्रण अधिक प्रभावपूर्ण होता है।

(2) कार्यभार कम होने के कारण निर्णय अच्छे एवं शीघ्र से लिए जाते हैं।

(3) दैनिक समस्याएं कम होने के कारण रचनात्मक कार्यों की ओर ध्यान दिया जा सकता है।

- **दोष :**

(1) अधिक निरीक्षण अधिकारियों की नियुक्ति किए जाने के कारण प्रबंधकीय लागता में वृद्धि होती है।

(2) अधिकारियों एवं कर्मचारियों में सीधा संपर्क न रहने के कारण समन्वय की समस्या उत्पन्न होती है।

(3) अधिक प्रबंधकीय स्तरों के कारण संदेशवाहन प्रभावपूर्ण नहीं रहता।

- **उपयुक्तता :**

  जिन संस्थाओं में कार्य की प्रकृति जटिल है और व्यवसाय का आकार बड़ा है वहां संकीर्ण प्रबंधन के विस्तार का प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसा करने से उनकी समस्याएं भी सुलझ जाएंगी और क्योंकि वे वित्तिय रुप से सुदृढ़ होती हैं इसलिए उन्हें प्रबंधकीय खर्चों का बोझ भी महसूस नहीं होगा। इसके विपरीत, जिन संस्थाओं का आकार छोटा है और कार्य की प्रकृति सरल है उनमें विस्तृत 'प्रबंधन के विस्तार' का प्रयोग किया जाना अधिक उपयोगी रहता है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.13	एक उपयुक्त प्रबंधन का विस्तार क्या है?
प्र.14	विस्तृत प्रबंधन का विस्तार क्या है?
प्र.15	जटिल प्रकृति के व्यवसाय में कौन सा प्रबंधन का विस्तार योग्य है?

विकेंद्रिकरण

विकेंद्रिकरण भारार्पण का ही एक विस्तृत रुप है। जब किसी अधिकारी द्वारा अधीनस्थ कर्मचारीयों को अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में अधिकारों का भारार्पण किया जाता है तो वह विकेंद्रिकरण कहलाता है। विकेंद्रिकरण के अंतर्गत केवल उन अधिकारों को छोड़कर, जिनको उच्च अधिकारियों के लिए सुरक्षित रखना जरुरी है, शेष सारे अधिकार अधीनस्थों को स्थाई रुप से सौंप दिए जाते हैं। विकेंद्रिकरण में निर्णय लेने के केन्द्रों में वृद्धि हो जाती है, क्योंकि मध्य एवं निम्न स्तर के प्रबंधकों का भी महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार प्रदान किए जाते हैं।

विकेंद्रिकरण की परिभाषाएं

विकेंद्रिकरण की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(1) **हैनरी फेयोल के अनुसार,** ''हर वह कदम जो अधीनस्थों की भूमिका के महत्व को बढ़ावा देता है, विकेंद्रिकरण कहलाता है तथा हर वह कदम जो इसको कम करता है, वह केंद्रिकरण कहलाता है।''

(2) **कीथ डेविस के अनुसार,** ''संगठन की छोटी से छोटी इकाई तक, जहां तक व्यवहारिक हो, अधिकार एवं दायित्व का वितरण विकेंद्रिकरण कहलाता है।''

(3) **लुइस ए. ऐलन के अनुसार, "** विकेंद्रिकरण का आशय केवल केन्द्रिय बिन्दुओं पर ही प्रयोग किए जाने वाले अधिकारों को छोड़कर शेष सभी अधिकारों को व्यवस्थित रुप से निम्नतम स्तरों को सौंपने से है।'

टूल बाक्स – 4
विकेंद्रिकरण इसका अभिप्राय अधिकार एवं उत्तरदायित्व को पूरे संगठन में निम्नस्तर पर सौंपकर अधीनस्थों के महत्व को बढ़ाना है।

विकेंद्रिकरण की विशेषताएं

विकेंद्रिकरण की मुख्य विशषताएं निम्नलिखित हैं:

(1) यह भारार्पण का एक विस्तृत रुप है।

(2) यह अधिनस्थों की भूमिका के महत्व को बढ़ावा देता है।

(3) यह संपूर्ण संगठन में लागू होने वाली प्रक्रिया है।

(4) यह उच्चस्तरीय प्रबन्धकों के कार्यभार में कमी करता है।

(5) इसमें निर्णय उन कर्मचारियों द्वारा लिए जाते हैं जिन्हें इन निर्णयों को लागू करना होता है।

(6) इसमें अधिकारों के साथ–साथ उत्तरदेयता का भी हस्तांतरण हो जाता है।

विकेंद्रिकरण की मात्रा को प्रभावित करने वाले तत्व

एक संगठन के विकेंद्रिकरण की मात्रा निम्नलिखित तत्वों से प्रभावित होती है:

(i) **संगठन का आकार :** संगठन का आकार विकेंद्रिकरण की मात्रा को प्रभावित करने वाला एक मुख्य घटक है। संगठन के आकार का निर्धारण विक्रय की मात्रा, कर्मचारियों की संख्या, मशीनों की संख्या आदि पर निर्भर करती है। संगठन में इनकी

मात्रा जितनी अधिक होगी संगठन का आकार उतना ही अधिक बड़ा होगा और वहां विकेंद्रिकरण की आवश्यकता पड़ेगी।

(ii) **प्रबंधकीय दृष्टिकोण** : विकेंद्रिकरण की मात्रा बहुत कुछ उच्च प्रबंधकों के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। यदि प्रबन्धक तानाशाह प्रकृति के हैं तो वे अधिकतर अधिकार अपने पास ही रखना चाहेंगे और परिणामस्वरुप विकेंद्रिकरण कम होगा। इसके विपरीत, यदि वे प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण रखते हैं तो विकेंद्रिकरण अधिक होगा।

(iii) **संगठन का इतिहास** : यदि संस्था का कारेबार आरंभ से ही बड़े पैमाने पर स्थापित किया जाता है तो अधिक, विकेंद्रिकरण पाया जाएगा। इसके विपरीत, यदि संस्था का इतिहास धीरे–धीरे विकास करने का है तो विकेंद्रिकरण कम पाया जाएगा क्योंकि ऐसी संस्थाओं में उच्च अधिकारियों का हस्तक्षेप पहले से अधिक रहता है और उसकी यह आदत बन जाती है।

(iv) **योग्य अधीनस्थों की उपलब्धता**: यदि संस्था में योग्य एवं प्रशिक्षित अधीनस्थ कर्मचारी उपलब्ध हैं तो विकेंद्रिकरण की मात्रा अधिक होगी क्योंकि उच्च अधिकारी निर्णय लेने के अधिकार अधीनस्थों को सौपने में कोई जोखिम नहीं समझेंगे। इसके विपरीत, यदि योग्य अधिनस्थों की कमी है तो विकेंद्रिकरण कम होगा।

(v) **नियंत्रण की तकनीक**: यदि संगठन में अच्छी नियंत्रण तकनीकें लागू हैं तो उच्च प्रबन्धक विकेंद्रिकरण के इच्छुक होंगे, क्योंकि अच्छी नियंत्रण व्यवस्था के कारण गलत निर्णय लेने के संभावना कम हो जाती है।

(vi) **निर्णयों में जोखिम** : यदि संस्था में लिए जाने वाले अधिकतर निर्णय जोखिमपूर्ण हैं तो उच्च प्रबन्धकों में विकेंद्रिकरण की प्रवृत्ति कम पाई जाएगी। इसके विपरीत, यदि ज्यादातर निर्णय जोखिम रहित हैं अर्थात सस्ते हैं तो विकेंद्रिकरण की मात्रा अधिक होगी।

(vii) **विभिन्नीकरण की सीमा** : एक ऐसी संस्था जिसमें अनेक वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है और उसके कारोबार का फैलाव अधिक है तो विकेंद्रिकरण अधिक होगा, क्योंकि अलग–अलग वस्तुओं के उत्पादन एवं विक्रय हेतु अलग–अलग स्वतंत्र इकाईयों का निर्माण करना होगा। ऐसा करने से निर्णय अच्छे व शीघ्रता से लिए जा सकेंगे।

(viii) **सरकारी हस्तक्षेप** : सरकारी हस्तक्षेप जितना अधिक होगा विकेंद्रिकरण की मात्रा उतनी ही कम होगा, क्योंकि सरकार नीतियों को केन्द्रित स्तर के प्रयास से सरलता से लागू किया जा सकता है।

(ix) **गतिशील वातावरण**: जिस संस्था के कारोबार में अधिक अनिश्चितता (तकनीक, मांग, बाजार आदि में लगातार परिवर्तन होना) पाई जाती है उनमें विकेंद्रिकरण का अधिक महत्व है, क्योंकि बदलती परिस्थितियों का सामना पूरा संगठन एक साथ मिलकर ही कर सकता है और संगठन में एकता तभी होगी जब सभी को निर्णयों के अधिकार दिए गए हों। इसके विपरीत, स्थाई वातावरण में चलने वाले व्यवसायों में विकेंद्रिकरण कम पाया जाता है।

(x) **नीतियों में समरुपता की आवश्यकता**: विकेंद्रिकरण की मात्रा इस बात पर भी निर्भर करती है कि उच्च प्रबन्धकों द्वारा नीतियों की समरुपता को कितना महत्व दिया जाता है। यदि सभी विभागों के लिए एक जैसी नीतियां बनाना जरुरी है तो विकेंद्रिकरण कम होगा।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.16	विकेंद्रिकरण क्या है?
प्र.17	संगठन के आकार का विकेंद्रिकरण पर क्या प्रभाव होता है?
प्र.18	विकेंद्रिकरण की दो विशेषताएं बताइए।

विकेंद्रिकरण के सिद्धान्त अथवा विकेंद्रिकरण को अधिक प्रभावशाली बनाने वाले घटक

संगठन में विकेंद्रिकरण को प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन करना जरुरी है:–

(i) **अच्छे कार्य विभाजन का सिद्धान्त** : विकेंद्रिकरण की सफलता अच्छी भारार्पण पद्धति पर निर्भर होती है। यदि संस्था के उच्च अधिकारी भारार्पण कला का सही प्रयोग नहीं करते अथवा इसके आधारभूत सिद्धान्तों की अवहेलना करते हैं तो विकेंद्रिकरण की सारी योजना पूरी तरह विफल हो जाएगी। इसलिए यह जरुरी है कि अधिकार सौपने

वाले अधिकारियों को भारार्पण कला की पूरी जानकारी हो। इसके लिए अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(ii) **उपयुक्त संप्रेषण एवं समन्वय का सिद्धान्त** : विकेंद्रिकरण की सफलता में सबसे बड़ी समस्या उस समय उत्पन्न होती है जबकि स्वतंत्र निर्णय लेने वाली सभी इकाईयां उच्च प्रबन्ध को अनदेखा करके हर बात में अपनी मनमानी करने लगती हैं। इस परिस्थिति से बचने के लिए उपयुक्त संदेशवाहन एवं समन्वय के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए।

(iii) **उपयुक्त नियंत्रण का सिद्धान्त** : विकेंद्रिकरण का यह अर्थ कदापि नहीं कि उच्च स्तरीय प्रबंन्धक निम्न स्तरीय प्रबंन्धकों को निर्णय लेने के अधिकार सौप दें और स्वयं अलग हो जाएं तथा वे अपनी मनमानी करते रहें। लेकिन उस पर नियंत्रण की जरुरत होती है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि अधीनस्थों द्वारा लिया गया प्रत्येक निर्णय संगठन के मूल उद्देश्यों के अनुरुप है, उच्च स्तरीय प्रबंन्धकों को अपना नियंत्रण कायम रखना चाहिए। यहां पर नियंत्रण का अभिप्राय यह नहीं है कि उनकी दैनिक कार्यवाही में ही हस्तक्षेप होने लगे बल्कि समय–समय पर लिए गए कुछ विशेष निर्णयों पर नज़र रखने की जरुरत है। नियंत्रण के उद्देश्य से अधीनस्थों की सफलता मापने का मापदण्ड स्थापित किए जा सकते हैं। अब अधीनस्थ प्रबंन्धकों को यह मालूम होगा कि उन्हें निर्धारित मापदण्डों के अनुसार काम करके दिखाना है तो वे अपने काम को एक चुनौति के रुप में स्वीकार करते हुए पूरे उत्साह के साथ काम करते हैं। अतः विकेंद्रिकरण में पूर्ण नियंत्रण के स्थान पर उपयुक्त नियंत्रण के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए।

(iv) **विकेंद्रिकरण कभी भी केंद्रिकरण से अलग नहीं हो सकता है :** इस सिद्धान्त के अनुसार संगठन एक सूत्र में बंधा है। एक कार्यालय द्वारा ही विभिन्न विभागों की मुख्य योजनाए एवं नीतियां बनाई जाती हैं और इनके कार्यो में तालमेल बिठाया जाता है। एक शोध के अनुसार, 'अमेरिका की जनरल मोटर कम्पनी में 95 प्रतिशत निर्णय निम्न स्तरों पर ही लिए जाते हैं जहां उन्हें लागू करना होता है तथा केवल 5 प्रतिशत निर्णय इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि कम्पनी के अधिकांश निर्णय किसी न

किसी रुप में इनसे अवश्य प्रभावित होते हैं। अतः कुछ बहुत महत्वपूर्ण निर्णय केन्द्रिय स्तर पर लिए जाने जरुरी हैं।

(v) **उपयुक्त अभिप्रेरणा का सिद्धान्त** : विकेंद्रिकरण में अधीनस्थों एवं उच्च प्रबंन्धकों के मध्य अधिक दूरी होती जाती है। इस दूरी के कारण उन्हें निरंतर अभिप्रेरणा नहीं मिल पाती और परिणामस्वरुप उनके उत्साह में गिरावट आ जाती है। अतः विकेंद्रिकरण को सफल बनाने के लिए उच्च प्रबंन्धकों द्वारा अधीनस्थों की सफलता पर उन्हें उचित पुरस्कार एवं सम्मान प्रदान किया जाना चाहिए ताकि उनके उत्साह में गिरावट न आने लगे।

(vi) **न्यूनतम हस्तक्षेप का सिद्धान्तः** न्यूनतम हस्तक्षेप विकेंद्रिकरण का आधार होता है अर्थात अधिकार सौपने के बाद अधीनस्थों के कार्यों मे हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। बार–बार हस्तक्षेप करने से वे हतोत्साहित होते हैं और उनके आत्म–विकास में कमी आती है। उच्च प्रबन्धकों का हस्तक्षेप कुछ बहुत महत्वपूर्ण निर्णयों के संबंध में ही होना चाहिए।

विकेंद्रिकरण के लाभ अथवा महत्व

विकेंद्रिकरण के महत्व के संबंध में कहा जाता है कि, 'प्रश्न यह नहीं है कि विकेंद्रिकरण किया जाए या नहीं बल्कि यह है कि विकेंद्रिकरण की मात्रा कितनी हो। अर्थात विकेंद्रिकरण के बारे में यह विचार करने की जरुरत है कि इसे लागू किया जाए या नहीं बल्कि ये देखने की जरुरत है कि कितने अधिकारों को अधीनस्थों तक पहुंचाया जाए और कितने उच्च प्रबन्धकों के पास सुरक्षित रखे जाएं। यह बात विशेषकर बड़ी संस्थाओं के लिए बिल्कुल सत्य है। इस बात की सत्यता का आधार है विकेंद्रिकरण के लाभ जो कि निम्नलिखित हैं:

(i) **उच्च अधिकारियों की अत्याधिक कार्यभार से मुक्तिः** विकेंद्रिकरण के अंतर्गत दैनिक प्रबन्धकीय कार्यों को अधीनस्थों को सौंप दिया जाता है। इसके फलस्वरुप उच्च प्रबन्धकों के पास पर्याप्त समय बचता है जिसका प्रयोग वे नियोजन, समन्वय, नीति निर्धारण, नियंत्रण आदि में कर सकते है।

(ii) **विभिन्नीकरण में सुविधा** : इस बात से इंकार नहीं किया जाता कि एक व्यक्ति का नियंत्रण सर्वत्र होता है लेकिन इसकी भी एक सीमा होती है। यहां सीमा को अभिप्राय व्यवसाय के आकार से है। अर्थात जब तक व्यवसाय का आकार छोटा है तो उच्च स्तर पर सभी अधिकारों को केन्द्रित करके व्यवसाय को कुशलतापूर्वक चलाया जा सकता है। लेकिन जब उसमें उत्पादन की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा अधिक हो जाती है तब केन्द्रिय नियंत्रण से काम नहीं चल सकता क्योंकि अकेला व्यक्ति सभी समस्याओं की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सकता। इस परिस्थिति में विकेंद्रिकरण का सहारा लिया जाता है। अतः विकेंद्रिकरण से व्यवसाय का विस्तार संभव होता है।

(iii) **प्रबन्धकीय विकास** : विकेंद्रिकरण का अभिप्राय है – निम्नस्तर के प्रबन्धकों को भी अपने कार्यो के संबंध में निर्णय लेने के अधिकार देना। इस प्रकार निर्णय लेने के अवसर प्राप्त होने से सभी स्तरों के प्रबन्धकों के ज्ञान एवं अनुभव में वृद्धि होती है और इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह व्यवसाय प्रशिक्षण का काम करती है।

(iv) **कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि** : विकेंद्रिकरण के कारण प्रबन्ध में कर्मचारियों की भागीदारी बढ़ती है। इस संस्था में उनकी पहचान बनती है। जब संस्था में किसी व्यक्ति की पहचान बने अथवा उसका महत्व बढ़े तो उसके मनोबल में वृद्धि होना स्वाभाविक है। मनोबल में वृद्धि होने से वे अपनी इकाई की सफलता के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने से भी नहीं घबराते।

(v) **शीघ्र एवं श्रेष्ठ निर्णय** : सभी प्रबन्धकीय निर्णयों का बोझ कुछ ही व्यक्तियों पर न होकर अनेक व्यक्तियों में बंट जाने के कारण निर्णय शीघ्र लिए जाते हैं। सभी व्यक्तियों को अपनी इकाई अथवा विभाग की समस्याओं का पूरा ज्ञान होता है। और इसी कारण वे अच्छे से अच्छे निर्णय लेने में सक्षम होते हैं।

(vi) **प्रभावपूर्ण नियंत्रण** : विकेंद्रिकरण में अधीनस्थों का कार्यक्षेत्र सीमित होने के कारण उनकी गलतियों को शीघ्र पकड़ा जा सकता है और उन्हें उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। उत्तरदायीत्व के डर से प्रबन्धक अपनी इकाई को सफलता के बारे में अधिक चिंतित रहते हैं और परिणामस्वरुप वे सभी क्रियाओं पर पूरा नियंत्रण रखते हैं।

(vii) **औद्योगिक संबंधों में सुधार** : एक–दूसरे की समस्याओं को समझना औद्योगिक संबंधों में सुधार की कुंजी होती है। एक–दूसरे की समस्या को तभी समझा जा सकता है जब पीड़ित व्यक्ति और समस्या का समाधान करने वाले व्यक्ति में निकटतम संबंध हो और ऐसा विकेंद्रिकरण द्वारा संभव है। विकेंद्रिकरण में निर्णय लेने के अधिकार निम्नतम स्तर पर सौंपे जाते हैं। निम्नस्तर के प्रबन्धकों को अपने अधीनस्थों के साथ सीधा संपर्क होता है जिससे वे आसानी से एक–दूसरे की कठिनाइयों को समझ लेते हैं तथा आपसी मेल–जोल से समस्याओं को सुलझा लेते हैं। इस प्रकार विकेंद्रिकरण द्वारा औद्योगिक संबंधों में मधुरता आती है।

(viii) **पहल–क्षमता में वृद्धि** : पर्याप्त अधिकारों के अभाव में अधीनस्थ अपने कार्यक्षेत्र में आने वाली रुकावटों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देते और न ही उन्हे समझने का प्रयास करते है। विकेंद्रिकरण के अंतर्गत सभी इकाईयों को पर्याप्त अधिकार प्राप्त होने के कारण इकाई प्रबन्धक अपने क्षेत्र की समस्याओं के प्रति सचेत रहते हैं और उनका अतिशीघ्र हल ढूंढने का प्रयास करते हैं। इस प्रयास को प्रोत्साहित करने वाली शक्ति अधिकारों की प्राप्ति है।

(ix) **लाभ–केन्द्रों की स्थापनाः** विकेंद्रिकरण द्वारा स्थापित विभिन्न इकाईयों को अलग – अलग लाभ–केन्द्रों के रुप में माना जा सकता है। प्रत्येक इकाई का लाभ–हानि खाता अलग तैयार करके उसका व्यक्तिगत लाभ मालूम किया जा सकता है। ऐसी व्यवस्था में सभी विभाग एक दूसरे से अधिक लाभ प्राप्त करने की होड़ में लग जाते हैं और संस्था में उपलब्ध सभी मानवीय एवं भौतिक साधनों का कुशलतम उपयोग होने लगता है।

(x) **संदेशवाहन की समस्या में कमी** : जैसे–जैसे संगठन का विस्तार होता है वैसे–वैसे उच्च प्रबन्धकों को निर्णय लेने के लिए जरुरी सूचनाओं को एकत्रित करने में कठिनाई होती है। विकेंद्रिकरण में निर्णय का अधिकार उन्हीं व्यक्तियों को सौंप दिया जाता है जिनसे सूचनाएं प्राप्त होती है। इस प्रकार जहां सूचनाएं होती हैं वहीं निर्णय लिए जाने से संदेशवाहन की समस्या में कमी आती है।

(xi) **बाजार का विस्तार :** एक संस्था जो विकेंद्रिकरण व्यवस्था को अपनाती है अनेक स्थानों पर अपनी शाखाएं खोलकर अपनी वस्तुओं के बाजार का विस्तार कर सकती

हैं। इस व्यवस्था में शाखा के संबंध में सभी निर्णयों के अधिकार दिए जाते हैं। इन अधिकारों का प्रयोग करके शाखा प्रबन्ध सभी स्थानीय समस्याओं को स्वयं ही सुलझा लेते हैं। इस प्रकार बाजार का विस्तार भी होता है और स्थानीय दशाओं का पूर्ण लाभ भी प्राप्त होता है।

विकेंद्रिकरण के दोष अथवा सीमाएं

विकेंद्रिकरण के मुख्य दोष सीमाएं निम्नलिखित हैं :

(i) **अधीनस्थों की योग्यता पर निर्भता** : विकेंद्रिकरण व्यवस्था में संस्था की सफलता पूरी तरह से अधीनस्थों की योग्यता पर निर्भर करती है। अधीनस्थों को दैनिक निर्णयों के साथ–साथ अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार भी होते हैं। यदि अधीनस्थ अयोग्य सिद्ध हुए तो संस्था को काफी बड़ी कीमत चुकानी पड़ सकती है।

(ii) **सहयोग में कमी** : सभी विभाग एक स्वतंत्र इकाई होने के कारण उनके प्रबन्धक केवल अपने विभाग की ही प्रगति का बात सोचते हैं। कई बार तो दूसरे विभागों को नीचा दिखाने के लिए आपसी प्रतिस्पर्धा इतनी बढ़ जाती है कि एक–दूसरे के साथ सहयोग करने के स्थान पर विरोध करने लगते हैं। यह समस्या उस समय और भी गम्भीर हो जाती है जब दो एक–दूसरे पर निर्भर विभाग आपसी प्रतिस्पर्धा करने लगें। उदाराणार्थ, उत्पादन विभाग विक्रय विभाग की स्थिति खराब करने के लिए वस्तुओं के उत्पादन में जानबूझ कर देरी कर सकता है।

(iii) **निर्णयों में एकरुपता का अभाव** : विकेंद्रिकरण में स्वतंत्र इकाईयां सीमित हो जाने के कारण सभी विभाग अपनी अलग–अलग नीतियां निर्धारित करते हैं। यही कारण है कि कई बार एक जैसी समस्या का समाधान करने के लिए विभिन्न विभागों द्वारा एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत निर्णय भी लिए जा सकते हैं। इस प्रकार एक विभाग के सफल निर्णय का लाभ दूसरा विभाग नहीं उठा सकता।

(iv) **महंगी व्यवस्था–** विकेंद्रिकरण व्यवस्था को अपनाने का साहस केवल बहुत बड़ी संस्थाएं ही कर सकती हैं क्योंकि यह एक महंगी व्यवस्था है। इसके अतंर्गत प्रत्येक विभाग को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं प्रदान करना आवश्यक है जिसके लिए अनेक उपकरणों एवं कर्मचारियों की आवश्यकता होती है।

उदाहरणार्थ, यदि एक संस्था में एक ही समय पर अनेक वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय किया जा रहा है तो इस व्यवसाय के अंतर्गत सभी वस्तुओं के अलग–अलग विभाग बनाए जाएंगे और सभी में उत्पादन, विपणन, लेखांकन, कर्मचारी नियुक्ति आदि के कार्य भी अलग – अलग किए जाएंगे जिससे काम की अनावश्यक रुप से दोहराई होती हैं। जहां एक ही लेखांकन विभाग से काम चल सकता था इस व्यवसाय में अनेक लेखांकन विभाग स्थापित करने पड़ते हैं। इस प्रकार खर्चो में अनावश्यक वृद्धि होती है।

(v) **निर्णयन बिंदुओं पर विशेषज्ञों के मार्ग–दर्शन का अभाव** : विकेंद्रिकरण में अधिक कुशल एवं योग्य व्यक्तियों के उच्च प्रबन्ध में सम्मिलित कर लिया जाता है और जहां निर्णय लिए जाते हैं वहां उनकी कमी रहती है। इस प्रकार विशेषज्ञों की राय उपलब्ध न होने के कारण कई बार अच्छे निर्णय नहीं लिए जाते।

(vi) **नियंत्रण का अभाव** : उच्च प्रबन्धक अपने अधिकारों को अन्य लोगों को सौंप कर स्वंय आराम करने लगते हैं। उनकी यह लापरवाही पूरे संगठन में नियंत्रण को ढीला कर देती है और सभी अपनी मनमानी करने लगतें हैं।

- **उपयुक्तता**: विकेंद्रिकरण के लाभ एवं दोषों का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इसके लाभ भी है और इसमें जो दोष दिखाई देते हैं वे सभी इसके सिद्धान्तों को ठीक से न समझ पाने के कारण ही उत्पन्न होते है। लेकिन इस बात से भी इंकार नहीं किया सकता कि यह एक महंगी व्यवस्था है। इसलिए यह उन संस्थाओं में अधिक उपयोगी है जहां संगठन बहुत बड़ा व जटिल हो तथा योग्य एवं कुशल प्रबन्धक उपलब्ध हों।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.19	क्या विकेंद्रिकरण छोटे व्यवसाय में जरुरी है?
प्र.20	विकेंद्रिकरण से क्या लाभ हैं?

केंद्रिकरण का अर्थ

जब निर्णय लेने के अधिकार का प्रयोग अधिकतर उच्चाधिकारियों द्वारा किया जाता है तो ऐसी व्यवस्था को केंद्रिकरण कहते हैं। इसके अंतर्गत सभी निर्णय उच्च स्तरीय प्रंबन्धकों द्वारा

लिए जाते हैं और मध्यस्तरीय प्रबन्धकों का काम केवल उन निर्णयों की व्याख्या करना एवं उन्हें लागू करना होता है। जहां एक ओर, विकेंद्रिकरण में लगभग सभी अधिकारों को संबंधित अधीनस्थों को सौंप दिया जाता है वहीं दूसरी ओर, केंद्रिकरण में लगभग सभी अधिकार केन्द्रिय बिंदु पर ही रोक लिए जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि दोनों व्यवस्थाएं एक–दूसरे के बिल्कुल विपरीत है।

टूल बाक्स – 5
केन्द्रिकरण
इसका अभिप्राय लगभग सभी अधिकारों को उच्च प्रंबन्धकों द्वारा अपने पास ही रखने से है।

केंद्रिकरण की परिभाषाएं

केंद्रिकरण की मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(1) **लुईस ए. ऐलन के अनुसार,** ''केंद्रिकरण संगठन में अधिकारों को केन्द्रिय बिंदु पर व्यवस्थित एवं नियमित रुप से सुरक्षित रखने को कहते हैं।''

(2) हेनरी फेयोल के अनुसार, ''हर वह कदम जो अधीनस्थों की भूमिका के महत्व को बढ़ाता है, विकेंद्रिकरण कहलाता है तथा हर वह कदम जो इसको कम करता है, केंद्रिकरण कहलाता है।''

केंद्रिकरण की विशेषताएं

केंद्रिकरण की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(1) निर्णय लेने के लगभग सभी अधिकारों के उच्च स्तर पर सुरक्षित रखना।

(2) अधीनस्थों की भूमिका के महत्व में कमी। अर्थात उनका काम केवल निर्णयों को लागू करना ही रह जाता है।

(3) अधिकार सौपने की प्रक्रिया का न्यूनतम प्रयोग।

(4) कार्य–स्थल एवं निर्णय–स्थल में दूरी।

केंद्रिकरण के लाभ अथवा महत्व

प्रायः वे सभी दोष जो विकेंद्रिकरण में पाए जाते हैं केंद्रिकरण व्यवस्था उन दोषों से मुक्त होती है और यही कारण है कि कुछ संस्थाओं में (प्रायः छोटी संस्थाएं) केंद्रिकरण को ही प्राथमिकता दी जाती है। केंद्रिकरण के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं:

(1) **स्वतंत्र व्यवस्था** : केंद्रिकरण व्यवस्था में अधीनस्थों की भूमिका कम होने के कारण उच्चाधिकारी स्वतंत्र रहते हैं अर्थात उनकी अधीनस्थों पर कोई निर्भरता नहीं रहती। उच्चधिकारी अधीनस्थों द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों की जोखिम के डर से भी मुक्त हो जाते हैं।

(2) **अधिक समन्वय** : संस्था के सभी विभाग एक ही केन्द्रिय कार्यालय द्वारा संचालित होने के कारण उनमें संपूर्ण समन्वय बना रहता है। कोई भी विभाग अन्य विभागों के कार्यो मे रुकावट नहीं बनता।

(3) **निर्णयों में एकरुपता** : सभी निर्णय केंद्रिकरण कार्यालय में लिए जाने के कारण निर्णयों में एकरुपता रहती है। किसी विभाग के लिए, लिए गए किसी सफल निर्णय का प्रयोग अन्य विभागों की समस्या को सुलझाने के लिए आसानी से लागू किया जा सकता है।

(4) **सस्ती व्यवस्था** : केंदियकरण के अंतर्गत सभी विभागों को आत्म–निर्भर बनाने के लिए आवश्यक सुविधाएं जुंटाने की जरुरत नहीं होती। केवल केन्द्रिय कार्यालय पर ही अधिक ध्यान दिया जाता हैं परिणामतः प्रशासनिक लागतों में कमी आती है।

(5) **विशेषज्ञों की सेवाओं का लाभ** : इस व्यवस्था में विशेषज्ञों की नियुक्ति केन्द्रिय कार्यालय में ही की जाती है। क्योंकि केंद्रिकरण में सभी निर्णय वहीं पर लिए जाते हैं इसलिए विशषज्ञों की सेवा का पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

(6) **अधिक नियंत्रण** : प्रायः सभी निर्णय लेने की जिम्मेदारी उच्चाधिकारियों की ही होती है इसलिए वे काम में लापरवाही नहीं कर सकते। उनकी लापरवाही न करने का सीधा प्रभाव नियंत्रण पर पड़ता है।

केंद्रिकरण के दोष एवं सीमाएं

केंद्रिकरण व्यवस्था के अनेक लाभ होते हुए भी इसे दोषारहित नहीं माना जा सकता। क्योंकि इस संस्था को जो लाभ विकेंद्रिकरण की स्थिति में प्राप्त हो सकते हैं वे केंद्रिकरण में नहीं मिल सकते। अर्थात विकेंद्रिकरण के लाभों को ही केंद्रिकरण के दोष अथवा कमियाँ कहा जा सकता है। केंद्रिकरण के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं:

(1) **उच्च अधिकारियों पर अत्याधिक कार्यभारः** सभी निर्णय उच्च स्तर पर लिए जाने के कारण उच्चाधिकारियों के कार्यभार में वृद्धि हो जाती है और परिणामस्वरुप सुदृढ़ निर्णय नही लिए जा सकते।

(2) **विभिन्नीकरण असंभव** : विभिन्नीकरण (अनेक वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय) तथा केंद्रिकरण दोनों ही विपरीत बाते हैं। अर्थात एक ही समय पर दोनों का पाया जाना असंभव है। विभिन्नीकरण से व्यवसाय का विस्तार होता है जिसके लिए अधिकारों को अधीनस्थों में सौंपना जरुरी है। अतः केंद्रिकरण व्यवसाय के विस्तार की इच्छा रखना संभव नहीं है।

(3) **श्रमिक पैदा करने वाली व्यवस्था** : सभी अधिकारों का प्रयोग केवल उच्च स्तर पर ही किए जाने के कारण मध्यस्तरीय प्रबन्धकों का विकास रुक जाता है। उन्हें प्रबन्धकीय निर्णयों से दूर रखे जाने के कारण धीरे–धीरे उनकी योग्यता में कमी आने लगती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि व्यवस्था केवल श्रमिक पैदा करती है प्रबन्धक नहीं।

(4) **कर्मचारियों के मनोबल में कमी :** प्रबन्ध में कर्मचारियों की भागीदारी कम होने के कारण उनके मनोबल में कमी आती है।

(5) **निर्णयों में देरी** : उच्च स्तर पर निर्णयों का बोझ पड़ जाने के कारण प्रायः सभी निर्णय देरी से लिए जाते हैं और निणयों की गुणवता मे भी कमी आ जाती है।

(6) **अप्रभावी नियंत्रण :** केंद्रिकरण से नियंत्रण में वृद्धि एवं कमी दोनो ही होती हैं। उच्च स्तर पर प्रबन्धकों की लापरवाही के कारण नियंत्रण व्यवस्था सुदृढ़ होती है। लेकिन कर्मचारियों के गलत कामों के लिए उनको उत्तरदायी ठहराने में कठिनाई के कारण नियंत्रण अप्रभावी रहता है।

(7) **औद्योगिक झगड़े:** कार्य–स्थल एवं निर्णय–स्थल में दूरी के कारण अधिकारी अधीनस्थों की समस्याओं को ठीक से नहीं समझ पाते और परिणामतः औद्योगिक झगडे पैदा होते हैं।

(8) **पहल–क्षमता में कमी:** अधिकारों के अभाव में अधीनस्थ अपने कार्य–क्षेत्र में आने वाली रुकावटों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देते और न ही उन्हें समझने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार उनमें पहल–क्षमता की कमी आ जाती है।

(9) **लाभ–केन्द्रों की स्थापना संभव नहीं:** केंद्रिकरण में स्वतंत्र इकाईयों की स्थापना न होने के कारण लाभ–केन्द्र स्थापित नहीं हो सकते। अर्थात सभी विभागों का अलग–अलग लाभ–हानि ज्ञात नहीं कि जा सकती। यही कारण है कि प्रबन्धकों में आपसी प्रतियोगिता कम हो जाती है और उनकी कार्यक्षमता घटने लगती है।

(10) **संदेशवाहन की समस्या:** केंद्रिकरण के कारण उच्च प्रबन्धकों को निर्णय लेने के लिए जरुरी सूचनाएं एकत्रित करने में कठिनाई आती है, क्योंकि सूचनाएं निम्न स्तर पर होती हैं और निर्णय उच्च स्तर पर लिए जाते हैं।

- **उपयुक्तता :**

  केंद्रिकरण के लाभ एवं दोषो का अध्ययन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि केंद्रिकरण उन संस्थाओं में अधिक उपयोगी हैं जहां व्यवसाय छोटे पैमाने पर हो अथवा प्रबन्धक योग्य हो।

  यदि विकेंद्रिकरण एवं केंद्रिकरण को सामूहिक रुप में देखा जाए तो कहा जाएगा कि न तो पूर्ण विकेंद्रिकरण और न ही पूर्ण केंद्रिकरण संभव हैं। अतः संगठन में ऐसी व्यवस्था लागू की जानी चाहिए जिससे दोनों व्यवस्थाओं के लाभ प्राप्त हो सकें। अर्थात सभी महत्वपूर्ण निर्णय उच्च स्तर पर लिए जाने चाहिएं और दैनिक व कम महत्वपूर्ण निर्णयों को मध्यास्तरीय एवं निम्नस्तरीय प्रबन्धकों के लिए छोड़ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय स्तर पर समन्वय एवं नियंत्रण की पूरी व्यवस्था की जानी चाहिए।

केंद्रिकरण एवं विकेंद्रिकरण में अंतर

	अंतर का आधार	केंद्रिकरण	विकेंद्रिकरण
1	अधिकार सौंपना	प्रायः सभी अधिकार उच्चस्तरीय प्रबन्धकों के पास ही होते हैं।	लगभग सभी अधिकार मध्यस्तरीय एवं निम्नस्तरीय प्रबन्धकों को सौंप दिए जाते हैं।
2	निर्णयो प्रक्रिया	उच्चस्तरीय प्रबन्धकों पर अधिक कार्यभार होने के कारण निर्णयों में देरी होती है।	विभागीय प्रबन्धकों द्वारा निर्णय शीघ्रता से लिए जाते हैं।
3	निर्भरता	केंद्रिकरण में अधिनस्थों पर निर्भरता कम होती है।	इसमे अधिनस्थों पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है।
4	निर्णयों में एकरुपता	निर्णयो में एकरुपता रहती है।	निणयों में एकरुपता नहीं रहती।
5	सहयोग	केन्द्रिय नियंत्रण होने के कारण अधिक सहयोग रहता है।	केन्द्रिय नियंत्रण के अभाव में सहयोग में कमी आती है।
6	अधिकारियों का कार्यभार	अधिकारियों का कार्यभार बढ़ता है।	अधिकारियों के कार्यभार में कमी आती है
7	कर्मचारियों का विकास	इसमें कर्मचारियों का विकास रुक जाता है।	इसमें कर्मचारियों का पूर्ण विकास संभव होता है।
8	औद्योगिक झगड़े	औद्योगिक झगड़े बढ़ते हैं।	औद्योगिक झगड़ों मे कमी आती है।
9	उपयुक्तता	यह छोटे व्यवसायों के अधिक उपयोगी हैं।	यह बड़े व्यवसायों के लिए अधिक उपयोगी है।
10	बाजार का विस्तार	इसमें बाजार का विस्तार संभव नहीं है।	इसके द्वारा बाजार का पूर्ण विस्तार किया जा सकता है।

3.7 अधिकारों का प्रत्यायोजन

प्रत्यायोजन का अर्थ एवं परिभाषा

प्रत्यायोजन की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :

- **एफ.जी.मुरे** के अनुसार, ''अधिकार अंतरण से आशय अन्य लोगों को कार्य सौंपने तथा उसे करने के लिए अधिकार प्रदान करना है।''
- **लुईस.ए.ऐलन** के अनुसार, ''अधिकार अंतरण प्रबंधन की शक्ति है। यह एक प्रक्रिया है जिसे अपनाकर प्रबन्धक अपने कार्यों का विभाजन करता है, जिससे वह संपूर्ण कार्य के उस भाग का निष्पादन करे जिसे केवल वह स्वयं ही संगठन में अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण प्रभावशाली ढंग से कर सकता है और इस प्रकार वह शेष कार्य की पूर्ती के लिए अन्य व्यक्तियों की सहायता प्राप्त करता है।''
- **मैक्फरलैंड** के अनुसार, ''भारार्पण संगठन प्रक्रिया का वह भाग है जिसके द्वारा अधिकारी, प्रशासक अथवा प्रबन्धक अन्य व्यक्तियों के लिए कंपनी के कार्यों को पूरा करने में भाग लेने को संभव बनाता है। उनके ही अनुसार, ''इसमें कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्वों और अधिकार के अभिहस्तांकन की प्रक्रिया भी सम्मिलित है, जिनसे वह अपने कार्य में सहायता की आशा करता है।''
- **प्रो. थियो हैमेन** के अनुसार, ''अधिकार के भारार्पण का आशय है प्रबन्ध प्रकिया के चार तत्वों में से प्रत्येक का एक अंश दूसरों को हस्तांरित करना।''
- **ई.एफ.एल. ब्रेच** के अनुसार, ''अधिकार का प्रत्यायोजन तब होता है जब पर्यवेक्षक किसी निम्न कर्मचारी को अधिकार देता है।''

टूल बाक्स – 1 **अधिकार का प्रत्यायोजन**
एफ.जी.मुरे के अनुसार, ''अधिकार अंतरण से आशय अन्य लोगों को कार्य सौंपने तथा उसे करने के लिए अधिकार प्रदान करना है।''

प्रत्यायोजन की विशेषताएं

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर भारार्पण को सरल रुप में निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है:–

भारार्पण से आशय सहायकों तथा अधीनस्थ कर्मचारियों को निश्चित सीमा के अन्तर्गत कार्य करने हेतु अधिकार प्रदान करने से है जिसके अंतर्गत उन्हें परिणाम के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।'' भारार्पण की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

(i) भारार्पण का आशय होता है एक प्रबन्धक द्वारा स्वतंत्र रुप से अधिकारों का प्रयोग करना। इस संबंध में उच्च अधिकारी कुछ सीमाएं भी लगा सकता है। इन सीमाओं के अंतर्गत संस्था की नितियों, नियमों तथा कार्यविधियों को ध्यान में रखकर ही कार्य किया जाना चाहिए।

(ii) भारार्पण का आशय यह नहीं होता कि उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को जो कुछ अधिकार सौंपे गए हैं उन्हें आवश्यकता पड़ने पर कम किया जा सकता है, बढ़ाया जा सकता है या वापिस लिया जा सकता है।

(iii) जो अधिकार सौंपे गए है उन्हें आवश्यकता पड़ने पर कम किया जा सकता है, बढाया जा सकता है या वापिस किया जा सकता है।

(iv) एक प्रबन्धक ऐसे अधिकारों को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को नहीं सौंप सकता, जो उसे स्वयं ही प्राप्त न हों।

(v) अधिकारों के भारार्पण में यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रायः सामान्य प्रकृति के कार्य ही अधीनस्थ कर्मचारियों को सौंपे जाएं।

(vi) अधिकारों का प्रत्यायोजन भारार्पण मौखिक अथवा लिखित भी हो सकते हैं।

(vii) भारार्पण एक कला है इसलिए इसका प्रयोग करते समय कुछ नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।

(viii) अधिकार सौंपने वाले अधिकारी की उत्तरदेयता निम्न अधिकारी के ऊपर नहीं जाती है। दूसरे शब्दों में उच्च अधिकारी ही अंतिम परिणाम के लिए अंतिम रुप से उत्तरदायी माना जाएगा।

(ix) अधिकार सौंपने की मूल प्रक्रिया में निम्न तीन बातें शामिल करते हैंः–

(अ) काम सौंपना,

(ख) अधिकार प्रदान करना तथा

(ग) उत्तरदायित्व निर्धारित करना।

(x) अधिकारों का भारार्पण ऊपर से नीचे की ओर होता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 अधिकारों का प्रत्यायोजन क्या है?
प्र.2 अधिकारों के प्रत्यायोजन की कोई दो परिभाषाएं बताइए।

प्र.3 भारार्पण की कोई दो विशेषताएँ समझाइए।

प्र.4 क्या सौंपे गए अधिकार वापिस लिए जा सकते हैं?

प्रत्यायोजन को प्रभावित करने वाले तत्व

अधिकारों के प्रत्यायोजन की स्थिति निम्न कर्मचारियों के स्वभाव, उच्च अधिकारियों के स्वभाव और संगठन की व्यवस्था से होती है। अधिकारों के अंतरण को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं–

(i) **निम्न कर्मचारियों की सहमति** : प्रत्यायोजन की स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि कर्मचारी उत्तरदायित्व लेने के लिए तैयार हों। अगर कर्मचारी अधिक उत्तरदायित्व उठाने के लिए सहमत नहीं है तो अधिकारी अधिकारों का प्रत्यायोजन नहीं कर सकते। प्रत्यायोजन के लिए कर्मचारियों को अधिक उत्तरदायित्व उठाने के लिए सहमत होना होता है।

(ii) **कार्य का भार** :– प्रत्यायोजन कार्य के भार पर निर्भर करता है। कार्य छोटा होने पर उसे प्रत्यायोजित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जब कार्य बढ़ता है तो प्रत्यायोजन भी बढ़ता है।

(iii) **प्रबन्धक का स्वभावः** प्रत्यायोजन का कार्य प्रबन्धक के स्वभाव पर भी निर्भर करता है। प्रबंधक को प्रत्यायोजित करने के लिए तैयार होना चाहिए और कर्मचारी को अपनाने के लिए।

(iv) **कर्मचारीयों में विश्वासः** प्रत्यायोजन इस बात से निश्चित होता है कि अधिकारियों में कितना विश्वास है। अगर कर्मचारियों को योग्य न समझा जाए तो अंतरण नहीं होगा।

(v) **दबाव बनाए रखने की इच्छा** : यदि अधिकारी दबाव रखने के इच्छुक हैं तो वे अधिकार अंतरण को प्रभावित नहीं करते। वे महत्वपूर्ण कार्य अपने पास रखते हैं तथा छोटे निर्णय प्रत्यायोजित कर देते हैं।

टूल बाक्स – 2 प्रत्यायोजन को प्रभावित करने वाले तत्व
• निम्न कर्मचारियों की सहमति • कार्य का भार • प्रबन्धक का स्वभाव • कर्मचारीयों में विश्वास • दबाव बनाए रखने की इच्छा

अधिकारों के प्रत्ययोजन की प्रक्रिया

अधिकारों के प्रत्यायोजन की प्रक्रिया निम्नलिखित है।

(i) प्रत्यायोजन योग्य कार्य का चयन करना

(ii) अधिकार प्रदान करना, तथा

(iii) उत्तरदायित्व निर्धारित करना।

(क) **प्रत्यायोजन योग्य कार्य का चयन करना :** किसी उपक्रम में संगठन के सभी कार्य को एक प्रबंधक स्वयं सम्पन्न नहीं कर सकता। अतः निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्य का कुछ भाग अपने अधीनस्थों को सौंपना चाहिए। कार्य का विभाजन करने के पश्चात प्रबंधक को यह निश्चित करना होता है कि वह किन विभागों की क्रियाओं को अपने पास रखना चाहता है और किन क्रियाओं का कार्यभार अपने अधीनस्थों को सौंपना चाहता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि किसी उपक्रम का एक प्रधान कार्यालय है तथा कई शाखाएं है, ऐसी स्थिति में वह स्वयं प्रधान कार्यालय का कार्यभार संभाल लेगा तथा शाखाओं का कार्यभार अपने अन्य अधीनस्थों को सौंप देगा। वास्तव में ऐसा वह इसलिए करेगा क्योंकि व्यावहारिक रुप से उसके लिए यह संभव नहीं है कि समस्त कार्य स्वयं ही कर सके। अतः अतिरिक्त कार्य–भार को जिससे वह स्वयं पूरा नहीं कर सकता, उसे दूसरे व्यक्तियों को सौपना होगा ताकि वह विशेष कार्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सके। कार्यों को सौंपने के संबंध में दो

सामान्य नियमों का पालन किया जाना चाहिए। प्रथम, कार्यों एवं कत्तव्यों का बंटवारा, द्वितीय, अधीनस्थों द्वारा उनको भली प्रकार समझा जाना चाहिए।

(ख) **अधिकार प्रदान करना:** अधीनस्थ कर्मचारियों को कार्य सौंपने के बाद उसे पूरा करने के लिए कुछ आवश्यक अधिकार भी सौंपे जाने चाहिए। जिस प्रकार के अधिकारों की आवश्यकता स्वयं प्रबंधक को उन कार्यों को करने के लिए होती, ठीक वैसे ही अधिकारों को प्रबंधक अधिनस्थों को सौंपेगा ताकि कार्य सम्पन्न किया जा सके। अतः यह स्पष्ट है कि जब तक अधीनस्थों को कार्य–भार पूरा करने के लिए आवश्यक अधिकार प्राप्त नहीं हों, तब तक वह भला कैसे अपने कर्त्तव्य को प्रभावी ढंग से निभा सकेंगे। उदाहरण के लिए जब किसी व्यक्ति को क्रय विभाग का भार सौंपा जाता है तो इस प्रत्यायोजन के साथ–साथ उसको अनेक अधिकार भी प्रदान किए जाते हैं, जैसे – कच्चे माल के क्रय के लिए टैंडर आमंत्रित करना, माल का निरीक्षरण करना, श्रेष्ठ माल के लिए आदेश देना, त्रुटिपूर्ण पूर्ती को निरस्त करना आदि।

(ग) **उत्तरदायित्व निर्धारित करना** : अधिकारों का भारार्पण एक ऐसा कार्य है, जिसके माध्यम से हम इच्छित परिणामों की उपलब्धि चाहते हैं, इसलिए अधीनस्थों को कार्य–भार सौंपने तथा उन्हें अधिकार प्रदान किए जाने पर पता लग पाएगा कि अधीनस्थ अपना कार्य ठीक प्रकार से कर रहे हैं या नहीं। जो भी कार्य–भार सौंपा जाता है उसे नियमित विधि से पूरा करने का दायित्व या जवाबदेही भी सम्मिलित होती है। दायित्व अथवा जवाबदेही को सौंपा नहीं जा सकता, यह तो सदा उच्च अधिकारी के प्रति होती है। इसके अतिरिक्त यह जवाबदेही सदैव एक व्यक्ति अथवा संस्था के प्रति होती है, नीचे के अधिकारी के प्रति नहीं। उदाहरण के लिए, कंपनी में अंशधारी संचालक मंडल को, संचालक मंडल जनेरल मैंनेजर को जनरल मैनेजर विभागीय मैनेजर को, और विभागीय मैनेजर अपने अधीनस्थों को कार्य–भार सौंपते हैं। ऐसी परिस्थिति में अधीनस्थों का दायित्व या जवाबदेही विभागीय मैनेजर के प्रति, विभागीय मैनेजर का दायित्व या जवाबदेही जनरल मैनेजर के प्रति, जनरल मैनेजर का दायित्व संचालक के प्रति और संचालक मंडल का दायित्व या जवाबदेही कंपनी के अंशधारियों के प्रति होगा।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.5 प्रबन्धक के स्वभाव का प्रत्यायोजन से क्या संबंध है?
प्र.6 क्या प्रत्यायोजन के लिए निम्न कर्मचारियों की सहमित चाहिए?
प्र.7 प्रत्यायोजन के तीन प्रमुख तत्व क्या हैं?

प्रत्यायोजन के प्रकार

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रत्यायोजन अथवा भारार्पण को विभिन्न आधारों पर निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :–

- विशिष्ट तथा सामान्य भारार्पण।
- लिखित तथा मौखिक भारार्पण।
- औपचारिक तथा अनौपचारिक भारार्पण।
- अधोगामी, ऊर्ध्वगामी एवं समपार्श्विक भारार्पण।
- प्रशासनिक, क्रियात्मक, भौगोलिक एवं तकनीकी भारार्पण।

(क) **विशिष्ट तथा सामन्य भारार्पण** : सामान्य भारार्पण के अंतर्गत किसी विभाग की समस्त क्रियाओं का कार्यभार किसी एक व्यक्ति को सौंप दिया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी उपक्रम के जनरल मैनेजर को सौंपा गया कार्यभार सामान्य भारार्पण के अंतर्गत आता है। इसके विपरीत जब किसी व्यक्ति को निश्चित कार्य भार सौंप दिया जाता है तो वह विशिष्ट कहलाता है, जैसे–क्रय प्रबंधक आदि को सौंपे गए कार्यभार।

(ख) **लिखित तथा मौखिक भारार्पण** : लिखित रुप में सौंपे गए कार्यभार को 'लिखित भारार्पण' कहते हैं। इसके विपरीत जब मौखिक रुप से ही भारार्पण किया जाता है, तो वह 'मौखिक भारार्पण कहलाता है। मौखिक भारार्पण की तुलना में लिखित भारार्पण अधिक निश्चित होता है।

(ग) **औपचारिक तथा अनौपचारिक भारार्पण** : सामान्य भारार्पण का स्वरुप औपचारिक होता है। औपचारिक भारार्पण संगठन की अधिकार रेखाओं द्वारा निर्धारित सीमाओं के आधार पर होता है। इन सीमाओं का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है, इसके विपरीत, अनौपचारिक भारार्पण के अंतर्गत अधीनस्थ कर्मचारी उच्च अधिकारियों की

आज्ञा पूरी नहीं, अपितु स्वतः प्रेरणा से कार्य करते हैं। इसका उद्देश्य लालफीताशाही को काटकर समय की बचत करना होता है। सार्वजनिक उद्योगों में लालफीताशाही का बोलबाला होता है, क्योंकि वहां पर केवल औपचारिक विधियों से ही भारर्पण होता है, जबकि निजी उद्योगों में औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही विधियों से भारार्पण होता है जिसके कारण लालफीताशाही की आशंका नहीं रहती।

(घ) **अधोगामी उर्ध्वगामी एवं समपार्श्विक भारार्पण** : अधिकांश भारार्पण अधेगामी होते हैं, क्योंकि उच्च अधिकारी अपने से निम्न अधिकारी को कार्य भार सौंपता है। लेकिन कभी–कभी एक अधिकारी के द्वारा अपने से उच्च अधिकारी को भी भारार्पण किया जा सकता है। इस प्रकार का भारार्पण उर्ध्वगामी भारार्पण कहलाता है। कभी–कभी समस्तरीय भारार्पण भी हो सकते हैं इसे समपार्श्विक भारार्पण कहते हैं। अनौपचारिक भारार्पण पार्श्विक भी हो सकता है। जब कार्य संपादन के लिए समस्तरीय अधिकारी की सहायता प्राप्त करना आवश्यक हो तो इस प्रकार के भारार्पण की आवश्यता उत्पन्न होती है। वर्तमान समय में बहुत कम कार्य स्वतंत्र (बिना अन्य व्यक्तियों के सहयोग प्राप्त किए हुए) रुप से पूरे किए जा सकते हैं। अतः इस प्रकार के भारार्पण का महत्व कार्यों की जटिलताओं एवं उनके परंपरावलंबी होने के कारण बढ़ता जा रहा है।

(ङ) **प्रशासनिक, क्रियात्मक, भौगोलिक एवं तकनीकी भारार्पण** : जब केवल प्रशासकीय कार्यों का ही प्रत्यायोजन किया जाता है तो उसे 'प्रशासकीय भारार्पण' कहते हैं। ऐसे प्रत्यायोजन में कोई समस्या पैदा नहीं होती क्योंकि प्रशासकीय कार्य अधिकांशतः दैनिक प्रकृति के होते हैं। जब प्रत्यायोजन क्रियाओं के आधार पर किया जाता है, जैसे– क्रय, विक्रय, विपणन, वित्त, विज्ञापन आदि तो उसे क्रियात्मक या कार्यकारी प्रत्यायोजन कहते हैं। वृहत व्यवसायिक गृहों में, जब कारोबार देशव्यापी होता है, तो प्रबंधकीय अधिकारों व शक्तियों को क्षेत्रीय प्रबंधाधिकारियों को सौंप देते हैं, जैसे–जीवन बीमा निगम के क्षेत्रिय कार्यालय। इस प्रकार का भारार्पण प्रधान कार्यालय को प्रभावशाली प्रबंधन संपन्न करने में सहायता प्रदान करता है। जब विविध प्रकार के तकनीकी कार्यों का भारार्पण किया जाता है। (जैसे– मोटर इंजन

बनाना, पेंटिंग करना, बॉडी मेंकिग इत्यादि) तो इसे तकनीकी प्रत्यायोजन कहते हैं। यह वास्तव में क्रियात्मक भारर्पण) ही है।

3.8 सारांश

पूर्वानुमान का अर्थ किसी भविष्य के बारे में पहले से ही अंदाज़ लगाने से है। एक संगठन में कोई भी नियोजन लंबी दूरी का अथवा लघु दूरी का – पूर्वानुमान के आधार पर ही लिया जाता है। भविष्य परिवर्तनशील है किन्तु उसके बारे में वैज्ञानिक तरीके से अंदाज़ लगाकर आने वाले खतरे से बचा जा सकता है। किसी प्रबन्धक द्वारा अपनी आज की नीती एवं भविष्य के नियोजन का आधार पूर्वानुमान होने से नियोजन का उद्देश्य सफलता से प्राप्त हो सकता है। कारोबारी माहौल में भविष्य के बारे में समझना एक प्रमुख प्रबंन्धन कार्य है। एक प्रभावी योजना बनाने के लिए यह समझना आवश्यक है कि किसी विशिष्ट समय में व्यवसाय की स्थिति किस तरह दिखेगी। ऐसा करने से भविष्य में उत्पन्न होने वाल खतरों से भी नियाजित तरीके से सामना किया जा सकता है एव भविष्य में मिलने वाले मौकों का फायदा उठाने के लिए एक संगठन प्रयासरत हो सकता है । पूर्वानुमान के लिए मात्रात्मक व गुणात्मक तकनीकों का प्रयोग करते हुए एक संगठन भविष्य के बारे में बेहतर समझ कर अपने नियोजन को बदल सकती है।

संगठन के उद्देश्य के प्रति अपने प्रयासों का योगदान दे रहे लोगों को एक ग्रुप के रुप में देखा जाता है। संगठन का उद्‌गम मानव सभ्यता की प्रारंभिक अवस्थाओं से जुड़ा है जब दो या अधिक व्यक्ति खाने, पहनने, रहने तथा जीवन के संरक्षण की अपनी मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक साथ जुड़ने तथा सहयोग करने लगे। अतः संगठन का जनम तब हो जाता है जब दो या अधिक व्यक्ति किसी सामान्य उद्देश्य के लिए अपने प्रयासों को एकजुट करते है। यह सार्वभौमिक सत्य है कि एक व्यक्ति अकेले अपनी जरुरतो और अभिलाशाओं को पूरा करने में असमर्थ होता है क्योंकि उसके पास शक्ति, योग्यता तथा संसाधानों की कमी होती है। अतः उसको अन्य लोगों के सहयोग की आवश्यकता होती है। प्रबंधकों का मुख्य कार्य व्यक्तियों के समूह से कार्य लेना है न कि स्वयं कार्य करना।

किसी संस्था में कोई कार्य करने के लिए कुछ संसाधनों की आवश्यकता होती है। साथ ही जरुरी यह है कि उन संसाधनों को उपयोग करने के अधिकार भी हों। अधिकार का शाब्दिक अर्थ हुआ एक ऐसी शक्ति जिससे संसाधनों को प्रयोग में लाया जा सके। किन्तु यह

भी आवश्यक है कि इन बहुमूल्य संसाधनों को बेकार खर्च न किया जाए। इसे उत्तरदायित्व के साथ ही इस्तेमाल किया जाए। प्रबंधन में 'प्रबंधन के विस्तार' का अभिप्राय अधीनस्थों की उस संख्या से है जिसे प्रभावपूर्ण ढंग से नियंत्रित किया जा सके। अर्थात ऐसा संभव नहीं है कि एक प्रबन्धक बड़ी मात्रा में अधीनस्थों का निरीक्षण कर सके। भवन निर्माण में दो खंभों की आदर्श दूरी की बात प्रबंधन में भी लागू होती है। यहां आदर्श दूरी का अभिप्राय अधीनस्थों की ऐसी संख्या से है जिससे लागतें भी कम आएं और प्रबन्ध को मजबूती भी प्रदान की जा सके। जब निर्णय लेने के अधिकार का प्रयोग अधिकतर उच्चाधिकारियों द्वारा किया जाता है तो ऐसी व्यवस्था को केंद्रिकरण कहते हैं। इसके अंतर्गत सभी निर्णय उच्च स्तरीय प्रंबन्धकों द्वारा लिए जाते हैं और मध्यस्तरीय प्रबन्धकों का काम केवल उन निर्णयों की व्याख्या करना एवं उन्हें लागू करना होता है। जहां एक ओर, विकेंद्रिकरण में लगभग सभी अधिकारों को संबंधित अधीनस्थों को सौंप दिया जाता है वहीं दूसरी ओर, केंद्रिकरण में लगभग सभी अधिकार केन्द्रिय बिंदु पर ही रोक लिए जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि दोनों व्यवस्थाएं एक–दूसरे के बिल्कुल विपरीत है।

प्रबन्धकों को कुछ ऐसे अधिकार प्राप्त होते हैं जिनके आधार पर वे पुराने कार्य करवाते हैं। इस अधिकार को हम 'सत्ता' या 'अधिकार' कहकरा पुकारते हैं। सत्ता को प्रबंधन की कुंजी माना जाता है, जिसके आधार पर प्रत्येक प्रबंधक के कार्य एवं व्यवहार निर्देशित होते हैं। संगठन में 'शक्ति' से आशय दूसरों पर अपना प्रभाव उत्पन्न करके उसकी क्रियाओं व कार्यों को प्रभावित करने एवं निर्देशित करने की योग्यता है। यह अपनी इच्छानुसार दूसरों से कार्य करवाने की योग्यता है। शक्ति द्वारा ही प्रबंधक संगठन में वांछित परिवर्तन लाने में सक्षम होता है तथा लक्ष्यों को प्राप्त करता है। प्रबंधन साहित्य के क्षेत्र में उत्तरदायित्व शब्द बहुत भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि विभिन्न प्रबंधकों द्वारा इसे अलग–अलग अर्थों में प्रयोग किया गया है। उत्तरदायित्व शब्द को कर्तव्य, कार्य या कार्य के रुप में इसकी एक परिभाषा **मोरिस हर्ले** ने निम्नप्रकार दी है – ''उत्तरदायित्व वह कर्तव्य है जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति अपने स्थिति या कार्य के कारण से बाध्य है। कुछ उत्तरदायित्व में उस व्यक्ति के निर्देश का पालन गर्भित होता है जो कि भारार्पण करते हैं।'' कुछ व्यक्ति उत्तरदायित्व शब्द को एक आबंधन या दायित्व के रुप में परिभाषित करते हैं। बड़ी संस्थाओं में प्रबंधन को कई कार्य करने होते हैं जो प्रबंधन अकेले नहीं कर सकता। इसलिए प्रबंधक अपना काम दूसरों

के साथ बांटता है ताकि दिया गया काम समय पर पूरा हो सके। अधीनस्थों को काम बांटने को ही अधिकार को प्रत्यायोजन कहते हैं। यह दूसरों को कुछ अधिकार व उत्तरदायित्व देकर उनसे काम करवाने की एक महत्वपूर्ण तकनीक है। इसके द्वारा प्रबंधक अपने काम का भार अधीनस्थों को बांट सकता है। विकेन्द्रिकरण भारार्पण का ही एक विकसित रुप है। जब किसी उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ कर्मचारी को अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में अधिकारों का भारार्पण किया जाता है तो वह 'विकेन्द्रिकरण' कहलाता है। प्रशासन की शब्दावली में विकेन्द्रिकरण वह स्थिति है जब प्रशासन से संबंधित अधिकांश निर्णय उन्हीं लोगों द्वारा लिए जाएं जो उन निर्णयों से संबंध रखते हों और उस स्तर पर निर्णय को लागू किया जाएगा। विकेन्द्रिकरण की स्थिति में केवल उन थोड़े–से अधिकारों को छोड़कर, जो केन्द्रिय अधिकारियों के लिए सुरक्षित रखने आवश्यक हैं, शेष सभी अधिकार उन अधिकारियों को व्यवस्थित ढंग से सौप दिए जाते हैं, जो विभिन्न कायों को करवाने के लिए उत्तरदायी हों।

3.9 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संगठन में पूर्वानुमान की क्या आवश्यकता है?
2. पूर्वानुमान की गुणात्मक तकनीक क्या है?
3. मात्रात्मक पूर्वानुमान से आप क्या समझते हैं?
4. संगठन प्रक्रिया क्या है?
5. क्या संगठन प्रभावी प्रशासन में सहायक सिद्ध होता है।
6. क्या संगठन स संस्था को विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते है?
7. संगठन से आप क्या समझते हैं?
8. प्रबंधन के विस्तार से आप क्या समझते हैं?
9. उन घटकों का वर्णन कीजिए जिन पर 'प्रबंधन का विस्तार' निर्भर करता है।
10. प्रबंधन के विस्तार से आप क्या समझते हैं? एक संगठन के विस्तार का निधार्रण कैसे किया जाता है?
11. 'प्रबंधन के विस्तार' का परिभाषित कीजिए। ग्रेकुनाज के नियंत्रण के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
12. नियंत्रण के विस्तार से आप क्या समझते हैं? संकीर्ण एवं विस्तृत नियंत्रण के विस्तार की व्याख्या करो।
13. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिएः
    a) नियंत्रण का विस्तार
    b) प्रबंधन का विस्तार
    c) प्रबंधन के विस्तार की आवश्यकता
    d) ग्रेकुनाज का नियंत्रण के विस्तार का सिद्धान्त।
14. अधिकारों का प्रत्यायोजन क्या है?
15. अधिकारों के प्रत्यायोजन की कोई दो परिभाषाएं बताइए।
16. भारार्पण की कोई दो विशेषताऐं समझाइए।
17. क्या सौंपे गए अधिकार वापिस लिए जा सकते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पूर्वानुमान की तकनीक क्या है?
2. संगठन कार्य को पूरा करने के लिए क्या कदम उठाए जाते है?
3. क्या पूर्वानुमान एक भविष्यवाणी की तरह की जाती है?
4. पूर्वानुमान के पांच लाभ स्पष्ट करें।
5. विशिष्टीकरण से आप क्या समझते हैं? संगठन में इसकी विशेषताओं तथा प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
6. पूर्वानुमान को परिभाषित कीजिए। इसकी सीमाएं कौन–कौन सी हैं?
7. पूर्वानुमान की कमजोरियों का वर्णन कीजिए और इसकी कुशलता को बढ़ाने के सुझाव दीजिए।
8. संगठन क्या है? इसको प्रभावी बनाने के लिए आपके क्या सुझाव हैं?
9. केंद्रिकरण का अर्थ क्या है?
10. विकेंद्रिकरण के लाभ व दोष का वर्णन कीजिए।
11. केंद्रिकरण तथा विकेंद्रिकरण की परिभाषा दीजिए तथा इन दोनों में अंतर बताइए।
12. 'विकेंद्रिकरण संगठन अच्छा माना जाता है।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? कारण दीजिए।
13. प्रबंधन के विस्तार की चार विशेषताएं बताइए।
14. ग्रेकुनाज का नियंत्रण के विस्तार का सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है?
15. प्रत्यायोजन के अर्थ व विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
16. प्रत्यायोजन को प्रभावित करने वाले तत्वों का वर्णन करें।
17. प्रत्यायोजन क्या है? इसके विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करें।

3.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- देसाई, वसंत (2009) प्रबंधन के सिद्धांत, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
- अग्रवाल, आर. सी. एवं गुप्ता, संजय (2016) प्रबंध के सिद्धांत, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, आगरा
- Robbins, Stephen P., Coulter, M. &Vohra, N. (2011). Management. Pearson, New Delhi

- Tripathi, P.C. & Reddy, P.N. (2008), Principles of Management, 4th Edition, the McGraw Hill, New Delhi

इकाई – IV : समन्वय एवं विभागीयकरण

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 समन्वय का अर्थ एवं महत्व
4.3 विभागीयकरण का अर्थ एवं महत्व
4.4 विभागीयकरण का आधार
4.5 सारांश
4.6 बोध प्रश्न
4.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- समन्वय का अर्थ, प्रकृति, आवश्यकता एवं महत्व को समझ सकेंगे।
- विभागीयकरण का अर्थ, महत्व, आधार एवं पद्धतियों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन को समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

विभिन्न क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने का उत्तरदायित्व उच्च प्रबंधन का होता है। उच्च–प्रबंधन क्रियाओं का निर्धारण तथा उनमें समन्वय स्थापित करता है। उपक्रम का प्रत्येक कार्य सामूहिक सहयोग से होने के कारण उपक्रम में संलग्न सभी व्यक्तियों की क्रियाओं में सामंजस्य लाने के लिए समन्वय का सहारा लिया जाता है। समन्वय की प्रक्रिया इसलिए की जाती है जिससे उपक्रम अपने निर्धारित लक्ष्यों को पा सके। यदि क्रियाओं में समन्वय न हो तो उपक्रम अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाएगा। समन्वय के माध्यम से व्यक्तियों के प्रयत्नों में एकता स्थापित की जाती है। समन्वय प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। उच्च प्रबंधन को समन्वय करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना होता है।

4.2 समन्वय का अर्थ एवं महत्व

समन्वय का अर्थ एवं परिभाषाएं

सरल शब्दों में, समन्वय का अर्थ है तालमेल अर्थात एकता। सहयोग एवं कुशलता बढ़ाने के लिए भिन्न – भिन्न व्यक्तियों, कार्यो, साधनों, हितों तथा लक्ष्यों में तालमेल बैठाना समन्वय कहलाता है। जिस भी संगठन में दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करते हैं, वहां उनकी शक्ति का सही व पूरा सहयोग करने के लिए उनकी क्रियाओं में समन्वय करने की आवश्यता होती है।

किसी व्यवस्था के विभिन्न अंगों अथवा गतिविधियों में सामंजस्य स्थापित करना समन्वय कहलाता है। एक व्यावसायिक उपक्रम के संदर्भ में, समन्वय का अर्थ व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं, (क्रय, विक्रय, उत्पादन, वित्त, सेविवर्गीय आदि) को संतुलित करना है ताकि व्यवसाय के उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सके। समन्वय की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(i) **कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल** के अनुसार, ''समन्वय प्रबंधन का सार तत्व है जोकि एक समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तिगत प्रयासों में सामंजस्य लाने के लिए किया जाता है।''

(ii) **मैक्फारलैंड** के अनुसार, ''समन्वय वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अधिकारी अपने अधीनस्थों के सामूहिक प्रयासों के एक व्यक्तिगत स्वरुप का विकास करता है और सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु क्रियाओं में एकरुपता को सुनिश्चित करता है।''

(iii) **मूने व रेले के** अनुसार 'कार्य में एकता की स्थापना के लिए सामूहिक प्रयास की नियमित व्यवस्था को समन्वय कहते हैं।'

(iv) **ई.एफ.एल. ब्रैच** के अनुसार, ''समन्वय कार्य दल में संतुलन बनाने तथा उसे एकजुट बनाए रखने की प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न व्यक्तियों के बीच काम का सही–सही बंटवारा किया जाता है तथा यह देखा जाता है कि ये लोग मिलकर तथा एकता के साथ अपना–अपना कार्य कर सकें।''

(v) **जेम्स स्टोनर** के अनुसार, ''समन्वय संगठन के लक्ष्यों को कुशलता पूर्वक प्राप्त करने के लिए संगठन की भिन्न इकाइयां (विभागों या कार्यकारी क्षेत्रों) के उद्देश्यों और क्रियाओं के बीच एकीकरण करने की प्रक्रिया है।''

(vi) **थियो हैमेने** के अनुसार, ''समन्वय अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों की गति, प्रगति और किस्म से मेल खाए तथा आपस में मिलकर समन्वय के समान उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हों।''

टूल बाक्स – 1
समन्वय
सहयोग एवं कुशलता बढ़ाने के लिए व्यक्तियों, कार्यो, साधनों, हितों तथा लक्ष्यों में तालमेल बैठाना समन्वय कहलाता है।

समन्वय की विशेषताएं

समन्वय की विभिन्न परिभाषाओं का विवेचन करने पर समन्वय की निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं –

(i) **प्रबंधकीय उत्तरदायित्व** : समन्वय एक प्रबंधकीय उत्तरदायित्व है। यह कार्य नियोजन के साथ ही प्रारंभ हो जाता है। संगठन निर्माण के समय इसे योजनाबद्ध विधि से स्थापित किया जाता है और बदलती हुई परिस्थितियों में प्रबंधक इसे बनाए रखने का प्रयास करते रहते हैं।

(ii) **सामूहिक प्रयास** : समन्वय की आवश्यकता सामूहिक प्रयासों के संबध में होती है क्योंकि व्यक्तिगत प्रयास किसी दूसरे के कार्य को प्रभावित करते रहते है।

(iii) **एक निरंतर तथा गतिशील प्रक्रिया** : संगठन में किसी न किसी प्रकार के समन्वय की आवश्यकता निरंतर बनी रहती है। प्रबंधन उच्च स्तर का समन्वय प्राप्त करने का प्रयास करता है।

(iv) **कार्यवाही की एकता** : समन्वय का उद्देश्य कार्यवाही की एकता उत्पन्न करना है, जिससे कि सभी प्रयास एक ही दिशा में प्रशस्त हों, संतुलित हो तथा एक–दूसरे की सहपूर्ती करें।

(v) **प्रक्रह्व समन्वय** : आंतरिक समन्वय के अंतर्गत संगठन के भिन्न–भिन्न भागों कार्यों एवं उद्देश्यों में तालमेल करना पड़ता है, जबकि बाह्व समन्वय के अंतर्गत संगठन तथा इसके बाहरी वातावरण का समन्वय शामिल है।

टूल बाक्स – 2
समन्वय की विशेषताएं • प्रबंधकीय उत्तरदायित्व • सामूहिक प्रयास • एक निरंतर तथा गतिशील प्रक्रिय • कार्यवाही की एकता • प्रक्रह्व समन्वय

समन्वय की प्रकृति

समन्वय एक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करने वाली प्रक्रिया है। समन्वय की परिभाषाएं इसकी प्रकृति के बारे में निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत करती हैं :–

(i) **समन्वय सामूहिक प्रयास में सामंजस्य स्थापित करता है** : समन्वय की आवश्यकता उस समय पड़ती है जब किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेक व्यक्तियों के प्रयासों की जरुरत हो। संक्षेप में, समन्वय का संबंध सामूहिक प्रयास से है न कि एकाकी प्रयास से। यदि एक ही व्यक्ति काम करने वाला हो तो समन्वय का प्रश्न ही नहीं उठता।

(ii) **समन्वय प्रयास में एकता सुनिचित करता है** : समन्वय की प्रकृति प्रयास में एकता पैदा करने की है। इसका अभिप्राय प्रक्रिया के दौरान एक संगठन की विभिन्न क्रियाओं में एकता पैदा करने के प्रयास से है। उदाहरण के लिए, क्रय तथा विक्रय विभागों को अपनी क्रियाओं को इस ढंग से समन्वित करना होता है ताकि क्रय आदेशों की पूर्ती की जा सके।

(iii) **समन्वय एक सतत् प्रक्रिया है :** यह कोई ऐसा कार्य नहीं है जो हमेशा के लिए एक ही बार में पूरा कर दिया जाए बल्कि इसकी आवश्यकता कदम–कदम पर होती है। व्यवसाय में अनेक क्रियाएं की जाती हैं। इनमें से कोई न कोई क्रिया आवश्यकता से

अधिक या कम होती रहती है जो पूरे संतुलन को बिगाड़ देती है। अतः सभी क्रियाओं में संतुलन बनाए रखने के लिए उन पर लगातार निगरानी रखनी पड़ती है।

(iv) **समन्वय एक सर्वव्यापक कार्य है :** सर्वव्यापकता का अर्थ उस सत्य से है जो सभी क्षेत्रों (व्यावसायिक तथा गैर–व्यावसायिक) तथा सभी स्थानों पर समान रुप से लागू होता हो और समन्वय की ऐसी प्रकृतिः जैसे – एक शिक्षण संस्था में टाईम टेबल बनाना समन्वय स्थापित करने का एक अच्छा उदाहरण है। किसी भी सामूहिक खेल, जैसे– फुटबॉल में सभी खिलाड़ियों को पूर्व निर्धारित स्थनों पर खड़ा करना समन्वय ही है। इसी प्रकार एक व्यावसायिक इकाई में क्रय और विक्रय, उत्पादन, वित्त आदि विभागों की क्रियाओं में मिलान स्थापित करना समन्वय है।

(v) **समन्वय सभी प्रबंधकों का उत्तरदायित्व है** : समन्वय की जरुरत उच्च, मध्य व निम्न तीनों प्रबंधकीय स्तरों पर होती है। सभी स्तरों पर की जाने वाली विभिन्न क्रियाएं अपने आप में महत्वपूर्ण होती हैं। अतः सभी प्रबंधकों का यह उत्तरदायित्व है कि समन्वय स्थापित करने का प्रयास करें। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि समन्वय का किसी विशेष प्रबंधकीय स्तर पर अथवा कियी विशेष प्रबंधक के लिए अधिक महत्व है।

(vi) **समन्वय जानबूझ कर किया जाने वाला कार्य है :** समन्वय कभी भी अपने–आप स्थापित नहीं होता बल्कि यह जानबूझ कर किया जाने वाला एक प्रयास होता है। केवल सहयोग से बात नहीं बनती। सहयोग के साथ समन्वय का होना जरुरी है। उदाहरण के लिए, एक सेल्स एक्ज़ीक्यूटिव किसी उत्पाद का वितरण करना चाहता है जिससे कि संस्था के लाभ में वृद्धि हो। किंतु निश्चित समय पर अपेक्षित मात्रा में उत्पाद न मिलने की सूरत मे समन्वय के अभाव में आती है। दूसरी ओर, सहयोग के अभाव में समन्वय कर्मचारियों को असंतुष्ट करता है। अतः एक ही समय पर दोनों का होना जरुरी है।

टूल बाक्स – 3
समन्वय की प्रकृति
• समन्वय सामूहिक प्रयास में सामंजस्य स्थापित करता है • समन्वय प्रयास में एकता सुनिचित करता है

- समन्वय एक सतत् प्रक्रिया है
- समन्वय एक सर्वव्यापक कार्य है
- समन्वय सभी प्रबंधकों का उत्तरदायित्व है
- समन्वय जानबूझ कर किया जाने वाला कार्य है

अपनी प्रगति जांचिए

प्र.1 समन्वय क्या है?

प्र.2 किसी सामूहिक कार्य में एकता की क्यों आवश्यकता होती है?

प्र.3 समन्वय के किसी एक परिभाषा की समीक्षा कीजिए।

समन्वय का महत्व

एक औद्योगिक संगठन में समन्वय का महत्व निम्नलिखित कारणों से होती है। –

(i) **श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण** : श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण के परिणामस्वरुप एक मुख्य क्रिया को अनेक छोटी–छोटी उपक्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक उपक्रिया को अलग–अलग व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों को सौंपा जाता है। जोकि उस क्रिया के विशेषज्ञ होते हैं जिससे अधिकतम कार्यकुशलता का लाभ उठाया जा सके। जहां एक ओर, हम श्रम–विभाजन और विशिष्टीकरण से लाभ प्राप्त करते हैं, वहीं दूसरी ओर समन्वय की कठिनाई का भी सामना करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति उसी कार्य में दक्ष हो जाता है, जिसे वह निरंतर कर रहा है और वह अपने आप को 'कुल कार्य' के साथ नहीं जोड़ पाता। अतः दोष को दूर करने के लिए समन्वय की आवश्यकता होती है।

(ii) **विभिन्न विभागों का अर्थ–स्वतंत्र अस्तित्व** – वर्तमान युग बड़े पैमाने के उत्पादन का युग है, जहां संगठन का आकार बहुत बड़ा होता है। एक संगठन में अनेक विभाग होते हैं। विकेन्द्रियकरण की प्रक्रिया के कारण इन विभागों को अनेक विषयों में स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार है। इस स्वतंत्रता के कारण ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि एक विभाग के द्वारा लिए गए निर्णय, दूसरे विभागो के कार्यों, हितों एवं नीतियों से

तथा संगठन के हितों से तालमेल नहीं खाते। अतः समन्वय की आवश्यकता पड़ती है।

(iii) **संगठन में मानवीय तत्व** – प्रत्येक संगठन में कार्य करने वाले व्यक्ति होते हैं और प्रबंधकों को अन्य कर्मचारियों से काम लेना होता है। मानव स्वभाव प्राकृतिक रुप से ही बड़ा परिवर्तनशील, चंचल एवं विषम है, जो कि अनेक बार संगठनात्मक उद्देश्यों से हटकर भी कार्य करने लग जाता है। इसके अतिरिक्त प्रेम, ईर्ष्या, विचारों में मतभेद आदि भी मानव स्वभाव के आवश्यक अंग है। समन्वय की आवश्यकता का एक अन्य कारण यह है कि संगठन में विभिन्न स्तरों पर अलग–अलग मात्रा में अधिकार सौंपे जाते है। जिन व्यक्तियों को कम अधिकार मिलते हैं, उनका अनेक बार अपने उच्च अधिकारियों से मन–मुटाव चलता है। अतः इसे दूर करने के लिए भी समन्वय की आवश्यकता होती है।

समन्वय प्रबंधन का सार है

समन्वय के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या इसे प्रबंधन के अन्य कार्यों (जैसे– नियोजन, संगठन, नियुक्तिकरण, निर्देशन व नियंत्रण) की श्रृंख्ला में ही प्रबंधन का छठा कार्य माना जाए या नहीं? कुछ प्रबंधन विशेषज्ञयों (जैसे – फेयोल, एल. ए.ऐलन व ऑर्ड वे टीड) का मानना है कि समन्वय प्रबंधन का एक अलग कार्य नहीं है बल्कि यह प्रबंधन के अन्य सभी कार्यों का एक मुख्य हिस्सा है। आधुनिक प्रबंधन विशेषज्ञय कूण्ट्ज तथा ओ'डोनेल इस विचारधारा के प्रबल समर्थक है। इसी संदर्भ में उन्होनें कहा है कि समन्वय प्रबंधन का सार है। अर्थात जब एक प्रबंधक सभी कार्यों को पूरा करता है तो वह समन्वय की स्थापना में ही व्यस्त रहता है। यह तथ्य निम्न व्याख्या से स्पष्ट होता हैः

(i) **समन्वय तथा नियोजन** : एक प्रबंधक जब नियोजन कार्य में व्यस्त होता है तो उस समय उसके सोच–विचार का केन्द्र–बिंदु समन्वय ही होता है। विभिन्न विभागों की क्रियाओं को ध्यान में रखकर ही नियोजन किया जाता है। उदाहरण के लिए, जब एक विक्रय प्रबंधक अपने विभाग के विक्रय लक्ष्य को बढ़ाने की योजना बना रहा होता है तो वह उत्पादन प्रबंधक, क्रय प्रबंधक, वित्त प्रबंधक, आदि से भी विचार

विमर्श करता है ताकि भविष्य में कोई समस्या उत्पन्न न हो ऐसा करना यह प्रदर्शित करता है कि नियोजन के दौरान समन्वय स्थापित किया जाता है।

(ii) **समन्वय एवं संगठन** : प्रबंधन के संगठन कार्य के अन्तर्गत संस्था के मुख्य कार्य को अनेक उपक्रमों में बांटने तथा उन्हें पूरा करने वाले व्यक्तियों के मध्य सम्बधों की व्याख्या की जाती है ताकि व्यवसाय की सभी क्रियाएं व्यवस्थित ढंग से पूरी की जा सकें। जब प्रबंधक वह कार्य कर रहा होता है तो उसका प्रयास सभी विभागों में तथा एक ही विभाग के अनेक व्यक्तियों में समन्वय स्थापित करने का रहता है। उदाहरण के लिए, क्रय विभाग में कार्य करने वाले अनेक व्यक्तियों के मध्य काम व बाजार का बंटवारा इस ढंग से किया जाता है कि एक व्यक्ति दूसरे के काम में अड़चन नहीं बनें।

टूल बाक्स – 4
समन्वय एवं प्रबंधन के कार्य
प्रबंधन का कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जिसे समन्वय के अभाव में पूरा किया जा सके अथवा जिसका प्रयास समन्वय की स्थापना करना न हो।

(iii) **समन्वय एवं नियुक्तिकरण** : संगठन के कार्य के अंतर्गत संस्था में विभिन्न पद स्थापित किए जाते हैं जबकि नियुक्ति कार्य द्वारा उनमें जान डाली जाती है। अर्थात संगठन में स्थापित विभिन्न पदों को व्यक्तियों से भरा जाता है। जब एक प्रबंधक नियुक्ति कार्य कर रहा होता है तो उस समय भी उसका ध्यान समन्वय को समर्पित होता है। उसका यह प्रयास रहता है कि सभी पदों को योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों से भरा जाए ताकि संस्था की सभी क्रियाएं बिना रुकावट के चलती रहें।

(iv) **समन्वय एवं निर्देशन** : प्रबंधक निर्देशन कार्य को पूरा करते समय समन्वय को प्राथमिकता देता है। जब वह एक अधीनस्थ को आदेश देता है तो इस बात का ध्यान रखता है कि अन्य लोगों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। अन्य लोगों पर विपरीत प्रभाव पड़ने की संभावना को टालने का पूरा प्रयास किया जाता है। ऐसी विचारधारा कुछ और नहीं बल्कि समन्वय स्थापना का ही एक प्रयास है। उदाहरण के लिए, एक जैसा

काम करने वाले दो व्यक्तियों के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाता है ताकि उनमें कोई मनमुटाव न हो।

(v) **समन्वय एवं नियंत्रण :** नियंत्रण के अन्तर्गत काम की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है ताकि समय पर ही सुधारात्मक कार्यवाही करके विपरीत परिणामों से बचा जा सके। समन्वय के संदर्भ में, नियंत्रण द्वारा संस्था के उद्देश्यों, उन्हें प्राप्त करने के लिए उपलब्ध साधनों एवं मानवीय प्रयासों में सन्तुलन स्थापित किया जाता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि समन्वय प्रबंधन के सभी कार्यों कें साथ जुड़ा होता है। अतः निसंकोच यह कहा जा सकता है कि समन्वय प्रबंधन का कोई अलग कार्य नहीं है बल्कि यह तो प्रबंधन का सार है।

समन्वय की आवश्यकता प्रबंधन के सभी स्तरों पर होती ह

प्रबंधन के तीन स्तर होते हैं : उच्च मध्य एवं निम्न स्तर। प्रबंधन के स्तरों को यदि समन्वय के दृष्टि से देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि समन्वय का सम्बन्ध किसी एक प्रबंधकीय स्तर से नहीं है बल्कि इसकी आवश्यकता अथवा महत्व सभी प्रबंधकीय स्तरों पर बराबर है। किसी कार्य को यदि एक ही व्यक्ति कर रहा हो तो समन्वय की समस्या उत्पन्न नहीं होती क्योंकि सारा काम एक ही व्यक्ति द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समन्वय का सम्बन्ध सामूहिक प्रयासों के साथ है। प्रबंधन के प्रत्येक स्तर का काम अनेक व्यक्तियों द्वारा सामूहिक रुप से किया जाता है और इस काम को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए उनमें समन्वय की आवश्यकता होती है। अतः कहा जा सकता है कि समन्वय की आवश्यकता सभी प्रबंधकीय स्तरों पर है।

इतना ही नहीं यदि प्रबंधन के तीनों स्तरों को एक नज़र में देखा जाए तो यह भी अपने आप में एक समूह बन जाता है और समूह का नाम आते ही पूनः समन्वय कर जरुरत महसूस होती है। अतः तीनों प्रबंधकीय स्तरों पर व्यक्तिगत रुप से भी और सामूहिक रुप से भी समन्वय की आवश्यकता होती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.4 संगठन में मानवीय तत्व होने से समन्वय का क्या महत्व है?
प्र.5 विशिष्टीकरण का समन्वय से क्या सम्बन्ध है?

प्रभावपूर्ण समन्वय के आवश्यक तत्व

प्रभावपूर्ण समन्वय के निम्न प्रमुख आवश्यक तत्व हैं :–

(i) **उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या** : प्रत्येक व्यावसायिक उपक्रम कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ती के लिए किया जाता है। इन उद्देश्यों की पूर्ती हेतु सामूहिक प्रयासों में उचित तालमेल होना आवश्यक है। प्रयासों में तालमेल के लिए यह जरुरी है कि व्यवसाय का प्रत्येक विभाग, उपविभाग एवं व्यक्ति निर्धारित लक्ष्यों से परिचित हो और उन्हें ठीक प्रकार से समझते हों। दो व्यक्तियों एव विभागों के बीच समन्वय की स्थापना उस समय उग्र रुप धारण कर लेती है जब वे समान उद्देश्यों के लिए प्रयत्नशील न हों। टैरी का मत है, ''प्रयासों में एकता लाने के लिए उद्देश्यों में समानता आवश्यक है।'' उद्देश्यों में समानता के लिए उनकी स्पष्ट व्याख्या अति आवश्यक है।

(ii) **उचित संगठन संरचना** :– यह निर्विवाद सत्य है कि एक अच्छी संगठन सरंचना उपक्रम में समन्वय की स्थापना में सहायक सिद्ध होती है। इसीलिए अनेक विद्वानों ने इस बात पर बल दिया है कि संगठन संरचना समन्व के सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए। **अर्ल पी. स्ट्रांग** ने कहा है कि, ''विभाग का सामूहीकरण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि कार्य एक विभाग से दूसरे विभाग को सरलता से निरंतर मिलता रहे। आवश्यकता से अधिक मात्रा में विशिष्टीकरण का परिणाम समन्वय की समस्याओं को अनावश्यक रुप से बढ़ावा देना होता है।''

(iii) **अधिकार एवं दायित्व की स्पष्ट रेखाएं** :– व्यवसाय के कुशल प्रबंधन के लिए अनेक व्यक्ति नियुक्त किए जाते हैं। कार्य को सुचारु रुप से करने के लिए आवश्यक अधिकार और उत्तरदायित्व दिए जाते हैं। व्यवहार में यह देखा गया है कि प्रबंधन के विभिन्न स्तरों पर अधिकारों के बंटवारे एवं उनके उपयोग कें सबंध में अनेक विवाद उत्पन्न हो जाते हैं फलस्वरुप उनकी क्रियाओं के मध्य समन्वय स्थापित करना समस्या बन जाता है। जहां तक एक ओर प्रबंधक अधिक से अधिक अधिकार लेने का प्रयत्न करते हैं, वहीं वे उत्तरदायित्वों से बचने का प्रयत्न करते हैं। परिणामस्वरुप हानि होने पर उनका उत्तरदायित्व किसी अन्य व्यक्ति पर डाल दिया जाता है जिसे ज्ञात करना कठिन हो जाता है। इसके कारण व्यवसाय अस्त–व्यस्त हो जाता है। अतः प्रभावी समन्वय के लिए निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए :

(क) प्रत्येक अधिकारी का क्षेत्र स्पष्ट होना चाहिए। जिससे कि कार्य की उपेक्षा की जिम्मेवारी निश्चित की जा सके।

(ख) प्रत्येक अधिकारी को अपने अधिकार क्षेत्र की जानकारी के साथ–साथ अन्य सहयोगियों व अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र का ज्ञान होना चाहिए जिससे कि वह व्यवसाय की समस्याओं को अधिक गहनता से समझ सकें।

(ग) परस्पर व्यापी अधिकार कम से कम होने चाहिए।

(घ) अधिकार उन्हीं को दिए जाने चाहिए जो उत्तरदायित्व को ग्रहण करने में तत्परता दिखाते हैं।

(iv) **प्रभावपूर्ण संप्रेषण व्यवस्था** :– अधिकार एवं उत्तरदायित्व का स्पष्टीकरण और वर्तमान समन्वय व्यवस्था का निरीक्षण विभिन्न संप्रेषण विधियों द्वारा ही संभव है। अतः प्रभावपूर्ण समन्वय के लिए प्रभावपूर्ण संप्रेषण विधियों का उचित उपयोग भी आवश्यक है। जैसे – समितियों का गठन, बैठकों और सम्मेलनों द्वारा सामूहिक निर्णय संलेख, रिपोर्ट एव अन्य दूसरे के व्यक्तिगत संपर्क। **डिमोक के शब्दों** में, ''स्टाफ सभाएं उपस्थित व्यक्तियों के व्यवसाय के कार्य के प्रति निष्ठा भाव जागृत करती हैं उन्हें अपने कार्यों को प्रभावित करने वाली नवीनतम समस्याओं से अवगत कराती हैं, समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न सदस्यों के विचार ज्ञात होते हैं और उनका सहयोग प्राप्त किया जाता है।''

(v) **जांच एवं निरीक्षण की व्यवस्था** : प्रभावपूर्ण समन्वय के लिए व्यवसाय में संबंधित अधिकारियों की क्रियाओं की जांच एवं निरीक्षण व्यवस्था का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके होने से समन्वय प्रयास का विरोध करना अथवा उसका दुर्बल बनाने वाले अधिकारियों की क्रियाओं पर आवश्यक नियंत्रण किया जा सकता है।

(vi) **कुशल नेतृत्व** – प्रभावपूर्ण समन्वय के लिए कुशल नेतृत्व का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। जहां तक संभव हो व्यवसाय का नेतृत्व किसी एक व्यक्ति के हाथ में हो, क्योंकि एक से अधिक नेता होने पर अनेक प्रकार के भ्रम एवं अनिश्चितता का भय रहता है। यही नहीं, अधीनस्थों के लिए यह निश्चित करना भी कठिन हो जाता है कि वे किस अधिकारी के आदेशों का पालन करें। अतः परम सत्ता के रुप मे भी

व्यवसाय का एक नेता होना ही वांछिनीय है और वही व्यवसाय का सर्वोच्च समन्वय अधिकारी भी होता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.6 प्रभाव संप्रेषण से समन्वय कैसे हो सकता है?
प्र.7 कुशल नेतृत्व का समन्वय से क्या सम्बन्ध है?
प्र.8 प्रभावी समन्वय के लिए किन–किन बातों पर ध्यान देना चाहिए।

4.3 विभागीकरण का अर्थ एवं महत्व

विभागीयकरण का अर्थ

संगठन के औपचारिक ढांचे के आयामों अथवा फैलाव को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(i) लम्बावत् आयाम, तथा

(ii) समानांतर आयाम

संगठन के ढ़ांचे का समानान्तर आयाम विशिष्टीकरण पर आधारित हैः अर्थात इसके अंतर्गत एक ही स्तर पर किए जाने वाले कुल कार्यों को, कार्यो मे एकरुपता के आधार पर अनेक क्रिया समूहों में बांट दिया जाता है, ताकि प्रत्येक क्रिया समूह के लिए विशेष योग्यता एवं निपुणता प्राप्त प्रबंधक नियुक्त किया जा सके। विशिष्टि के कारण न केवल प्रत्येक क्रिया समूह के प्रबंधक के कार्य –भार में कमी आती है बल्कि वे अपने–अपने विशेष कार्य को अधिक कुशलता के साथ कर पाता है। विशिष्टीकरण के आधार पर इस प्रकार काम बांटने की प्रक्रिया को विभागीयकरण कहते हैं। तथा इस प्रकार स्थापित विभिन्न क्रिया समूहों को विभाग कहते हैं। उदाहरणार्थ, एक निर्माणी संस्था में उत्पादन, विपणन, वित्तीय तथा सेवावर्गीय विभाग स्थापित किए जा सकते हैं। ये विभाग स्थापित करने से पहले संस्था के उद्देश्यों के आधार पर क्रियाओं का निर्धारण किया जाता है और एक जैसी सभी क्रियाओं को एक क्रिया समूह अथवा विभाग को सौंप दिया जाता है, जैसे– विक्रय, बाजार, सर्वेक्षण एवं विज्ञापन को विपणन विभाग को सौंपा जा सकता है।

कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल के अनुसार, ''विभागीकरण एक विशाल क्रियात्मक संगठन को छोटी एवं लोचशील प्रशासनिक इकाइयों में विभक्त करने की प्रक्रिया है।''

टूल बाक्स – 1
विभागीयकरण
उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए स्थापित विकास संगठन के इस ढंग से छोटे–छोटे भागों में विभक्त किया जाता है ताकि सभी क्रियाओं का संचालन कुशलतापूर्वक किया जा सके।

विभागीयकरण की आवश्यकता एवं महत्व

विभागीयकरण एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। एक उपक्रम की सफलता में इसके योगदान को निम्नलिखित तत्वों से समझा जा सकता है। इन्ही तत्वों से विभागीयकरण की आवश्यकता का संकेत भी मिलता है।

(i) **प्रबंधकीय निपुणता:** विभागीयकरण के कारण प्रबंधक कुछ ही क्रियाओं को बार–बार करते हैं और अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए निर्णय लेते हैं। थोड़े ही समय में वे उस विभाग के विशेषज्ञ बन जाते हैं। विशेषज्ञ बनने पर अधिक व अच्छा काम कम से कम समय में होने लगता है।

(ii) **दायित्वों का निर्धारण :** विभागीयकरण के अंतर्गत प्रत्येक विभागाध्यक्ष के दायित्वों का निर्धारण करना संभव हो जाता है। यदि किसी कर्मचारी को एक काम न सौंप कर पूरी संस्था के काम सौंपे जाएं तो उसके दायित्व का निर्धारण करना कठिन होता है और प्रत्येक कर्मचारी विपरीत परिणामों की जिम्मेदारी अन्य कर्मचारियों पर डालने का प्रयास करता है। इसके विपरीत, दायित्व निर्धारण हो जाने पर सभी प्रबंधकों को स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं। इस प्रकार उनका पूरा ध्यान एक ओर लग जाता है और परिणामतः उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

(iii) **प्रबंधन–योग्य इकाइयों की स्थापना** : विभागीयकरण के अंतर्गत संस्था में की जाने वाली सभी क्रियाओं को अनेक इकाइयों अथवा विभागों में बांट दिया जाता है। इन छोटे–छोटे विभागों पर प्रबंधन करना आसान होता है। प्रत्येक विभाग के लिए एक अध्यक्ष नियुक्त कर दिया जाता है जिसे उस विशेष विभाग का ज्ञान एवं अनुभव होता

है। अपने ज्ञान एवं अनुभव का प्रयोग करके अध्यक्ष सभी कार्य समय पर एवं नियमबद्ध ढंग से पूरे करता है। इस प्रकार संस्था की साख में वृद्धि होती है।

(iv) **वास्तविक कार्य का मापन संभव** : कार्य का विभाजन हो जाने पर प्रत्येक विभाग की कुशलता का माप किया जा सकता है। सभी विभागों का प्रमाप निश्चित कर दिए जाते हैं और वास्तविक कार्य का प्रमापों से मिलान करके विचलनों का पता लगाया जाता है। इस प्रकार विपरीत परिणामों का पता लगने पर, समय पर ही सुधारात्मक कार्यवाही की जा सकती है। और संबंधित व्यक्तियों को जिम्मेदार भी ठहराया जा सकता है।

(v) **बजट बनाने की सुविधा** : क्योंकि प्रत्येक विभाग की लागतों की गणना आसानी से की जा सकती है इसलिए विभागीय बजट बनाने में सुविधा रहती है।

(vi) **खर्चो पर नियंत्रण** : यदि पूरी संस्था को एक ही इकाई के रुप में चलाया जाए तो खर्चों पर नियंत्रण रखना कठिन होता हैं जबकि पूरी संस्था को अनेक छोटी–छोटी इकाइयों में बांटकर खर्चों पर नियंत्रण रखना आसान होता है। एक विभाग की क्रियाएं एक ही व्यक्ति की देख–रेख में होती है। और उसे पता होता है कि कौन–कौन से खर्चे जरुरी हैं और कौन–कौन से नहीं। इस प्रकार विभागीकरण से खर्चों पर नियंत्रण संभव होता है।

(7) **विशिष्टीकरण के लाभ** : विभागीयकरण का आधार विशिष्टीकरण में निहित है। अतः विभागीयकरण द्वारा संस्था को विशिष्टीकरण का लाभ प्राप्त होना स्वाभाविक है। जब एक व्यक्ति एक ही काम को बार–बार करता है तो वह उस क्षेत्र का विशेषज्ञ बन जाता है और फिर वह अधिक व अच्छा काम, कम समय व कम लागत पर करने लगता है। यह विशिष्टीकरण के माध्यम से संस्था को प्राप्त होता है।

उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि सभी बड़ी संस्थाओं के लिए विभागीयकरण आवश्यक है इसके माध्यम से संस्था के उद्देश्यो को आसानी से प्राप्त कर लिया जाता है।

टूल बाक्स – 2 विभागीयकरण का महत्व
(i) प्रबंधकीय निपुणता का विकास (ii) दायित्वों का निर्धारण (iii) प्रबन्ध–योग्य इकाइयों की स्थापना (iv) वास्तविक कार्य का मापन संभव (v) बजट बनाने में सुविधा (vi) खर्चों पर नियंत्रण (vii) विशिष्टीकरण के लाभ

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 विभागीयकरण का अर्थ स्पष्ट कीजीए। प्र.2 विभागीयकरण में विशिष्टीकरण का लाभ किस प्रकार निहित है? प्र.3 क्या सभी बड़ी संस्थाओं के लिए विभागीयकरण आवश्यक है।

4.4 विभागीयकरण का आधार

विभागीयकरण के आधार अथवा पद्धतियां

विभागीयकरण के अनेक आधार अथवा पद्धतियां हो सकती हैं। प्रत्येक संस्था अपने उद्देश्यों, आकार आदि को देखते हुए इनमें से उप्युक्त आधार का चुनाव करते हैं। विभागीकरण के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं:

(क) कार्यों के आधार पर

(ख) वस्तुओं अथवा सेवाओं के आधार पर

(ग) क्षेत्र के आधार पर

(घ) प्रक्रिया के आधार पर

(ङ) ग्राहकों के आधार पर

(च) मैट्रिक्स के आधार पर

(क) **कार्यो के आधार पर** :

विभागीयकरण की यह सबसे सरल एवं सर्वाधिक प्रचलित पद्धति है। इसके अंतर्गत एक जैसी सभी क्रियाओं को अलग–अलग इकाइयों में विभाजित कर दिया जाता है। जैसे– एक निर्माणी संस्था सभी की सभी क्रियाओं को उत्पादन विभाग, विपणन विभाग, वित्तीय विभाग, एवं सेविवर्गीय विभाग मे विभाजित किया जा सकता है। प्रत्येक विभाग में उप–विभागों के अधिकारी विभागाध्यक्ष के प्रति उत्तरदायी होते हैं और विभागाध्यक्ष मुख्य प्रबंधक के प्रति। कार्यों के आधार पर विभागीकरण को निम्न चित्र में स्पष्ट किया गया है।

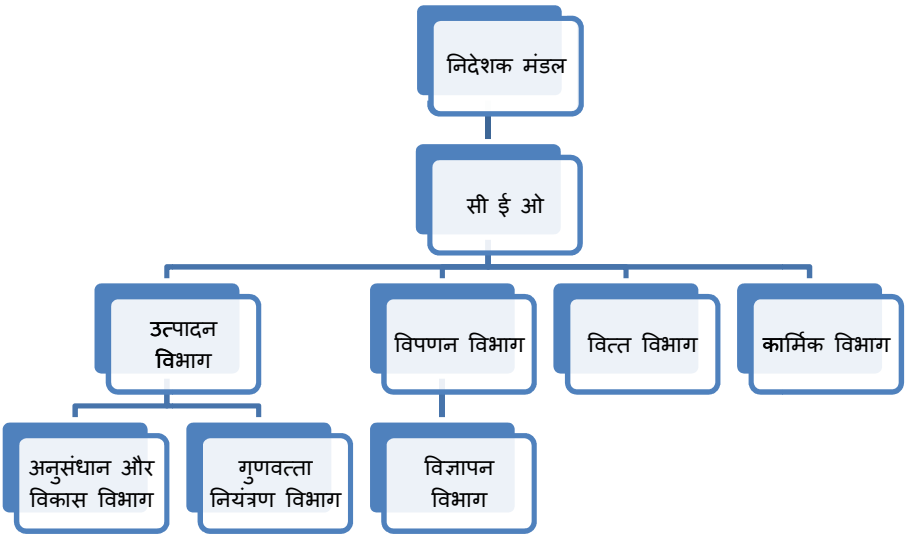

चित्र 7.1 कार्यो के आधार पर विभागीयकरण

कार्यो के आधार पर विभागीकरण को मूल्यांकन करने के लिए इसके गुण एवं दोषों की जानकारी प्राप्त करना जरुरी है, जो कि निम्नलिखित हैः–

- **गुण**

(i) यह विशिष्टीकरण के सिद्धांत पर आधारित होता है।

(ii) यह विभागीय स्तर पर समन्वय करता है।

(iii) यह मानवीय एवं अन्य साधनों का प्रभावपूर्ण उपयोग संभव बनाता है।

(iv) यह प्रभावपूर्ण नियंत्रण संभव बनाता है।

(v) यह सरल एवं मितव्ययी है।

(vi) यह लोचपूर्ण होता है अतः इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए जा सकते हैं।

(vii) 'आदेश की एकता' के सिद्धांत को भली प्रकार लागू किया जा सकता है।

- **दोष**

(i) कर्मचारियों के एक ही कार्य का विशेषज्ञ होने के कारण पदोन्नति में कठिनाई आती है।

(ii) एक विभाग की कमजोरी का अन्य विभागों पर प्रभाव पड़ता है।

(iii) सभी विभाग मनमानी करते हैं। परिणामतः अन्तर्विभागीय समन्वय में कमी आती है।

(iv) यह पद्धति कर्मचारियों के पूर्ण विकास में बाधा है।

(ख) **वस्तुओं अथवा सेवाओं के आधार पर:**

यदि किसी व्यवसाय उपक्रम में अनेक प्रकार की वस्तुओं का निर्माण किया जाता है तो आवश्यकतानुसार विभागीयकरण के स्थान पर वस्तुओं के अनुसार विभागीयकरण को प्राथमिकता दी जाती है। क्योंकि ऐसी स्थिति में कार्यनुसार विभागीयकरण में यह डर बना रहेगा, कि कुछ वस्तुओं के उत्पादन एवं विपणन पर अधिक ध्यान दे दिया जाएगा और कुछ पर बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया जाएगा। परिणामस्वरुप कुछ उत्पाद अधिक बिकेंगे और कुछ बहुत कम। ऐसे परिणामों से बचने के लिए संस्था की सभी क्रियाओं को वस्तुओं के आधार पर अलग–अलग विभागों में बांट दिये जाते हैं। ये सभी कार्य सभी विभागों द्वारा अलग–अलग किए जाते हैं। इस प्रक्रिया को निम्न चित्र में स्पष्ट किया गया है:

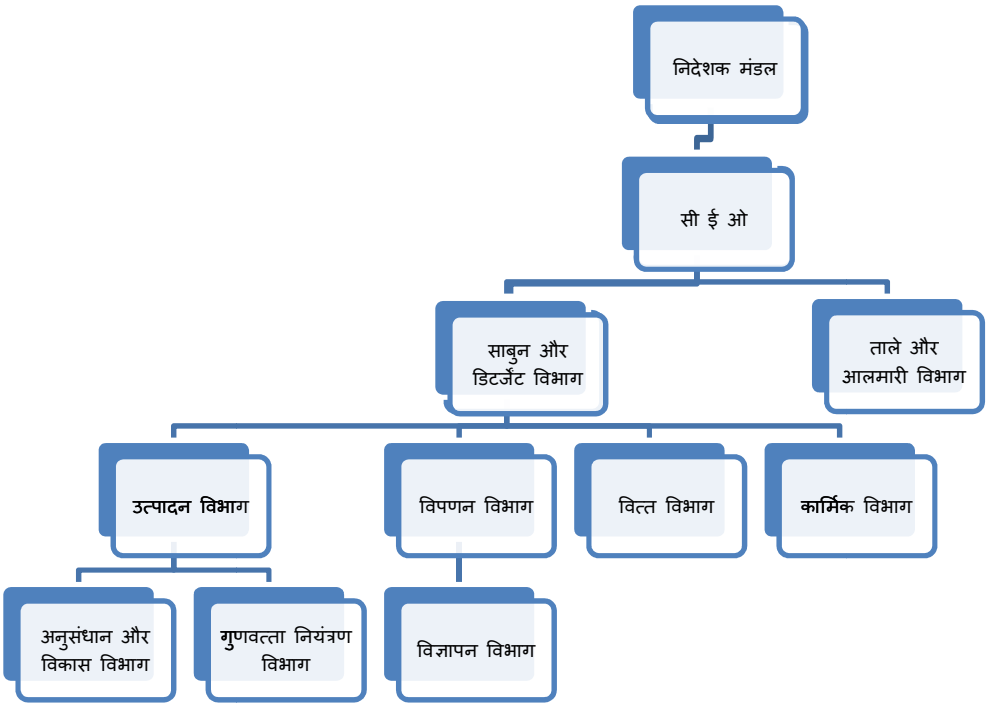

चित्र 7.2 वस्तुओं के आधार पर विभागीकरण

वस्तुओं अथवा सेवाओं के आधार पर विभागीकरण करने के गुण एवं दोष निम्न है :

- **गुण**

(i) प्रत्येक वस्तु को समान महत्व दिया जाना संभव होता है।

(ii) प्रत्येक वस्तु से होने वाले लाभ–हानि की अलग–अलग जानकारी प्राप्त होती है।

(iii) क्योंकि प्रत्येक नई वस्तु के लिए अलग से विभाग खोला जा सकता है इसलिए संस्था के विस्तार में सरलता आती है।

(iv) सभी विभाग स्वतंत्र इकाई के रुप में होते हैं। अतः एक की कमजोरी से दूसरा विभाग प्रभावित होता है।

(v) इस पद्धति में प्रबंधकों का पूर्ण विकास संभव होता है।

(vi) प्रबंधकों को अपनी योग्यता सिद्ध करने का पूरा अवसर मिलता है।

(vii) सभी वस्तु विभागों के प्रबंधकों द्वारा, दूसरों से अच्छे परिणाम दिखाने की प्रतियोगिता का संस्था को लाभ प्राप्त होता है।

(viii) विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं।

- **दोष**

(i) सभी वस्तु विभागों में कार्यो के दोहराव से प्रबंधकीय लागतें बढ़तीं हैं।

(ii) साधनों का अपव्यय होता है।

(iii) यह पद्धति केवल बड़ी संस्थाओं के लिए उपयोगी है।

(iv) उच्च स्तर पर नियंत्रण में कठिनाई आती है।

(ग) **क्षेत्र के आधार पर :**

जब किसी व्यवसायिक संस्था के ग्राहक स्थानीय क्षेत्र तक सीमित न होकर एक बड़े क्षेत्र में फैले हों तो क्षेत्र के आधार पर विभागीयकरण किया जाता है। इस तरह विभागीयकरण करने का मुख्य कारण अलग–अलग क्षेत्रों के ग्राहकों की रुचियों, समस्याओं आदि का अलग–अलग होना है। उदारणार्थ, यदि एक संस्था का व्यवसाय पूरे देश में फैला हो तो व्यवसाय का संचालन एक ही स्थान पर करने की अपेक्षा उसे चार क्षेत्रों में बांटा जा सकता है, जैसे–उत्तरी जोन, दक्षिणी जोन, पूर्वी जोन तथा पश्चिमी जोन। प्रत्येक जोन अपने–आप में एक संपूर्ण व्यावसायिक इकाई के रुप में होता है, जिसके लिए अलग से क्षेत्रीय प्रबंधक नियुक्त किया जाता है। क्षेत्रीय प्रबंधक अपने क्षेत्र के ग्राहकों के संपर्क में रहते हैं और उनकी समस्याओं को भली प्रकार समझते हुए उन्हें आसानी से दूर करते हैं। प्रत्येक क्षेत्र अपने क्षेत्र के अंतर्गत पुनः कार्यानुसार अथवा वस्तुओं के अनुसार विभागीयकरण किया जा सकता है जैसा कि चित्र में स्पष्ट किया गया है।

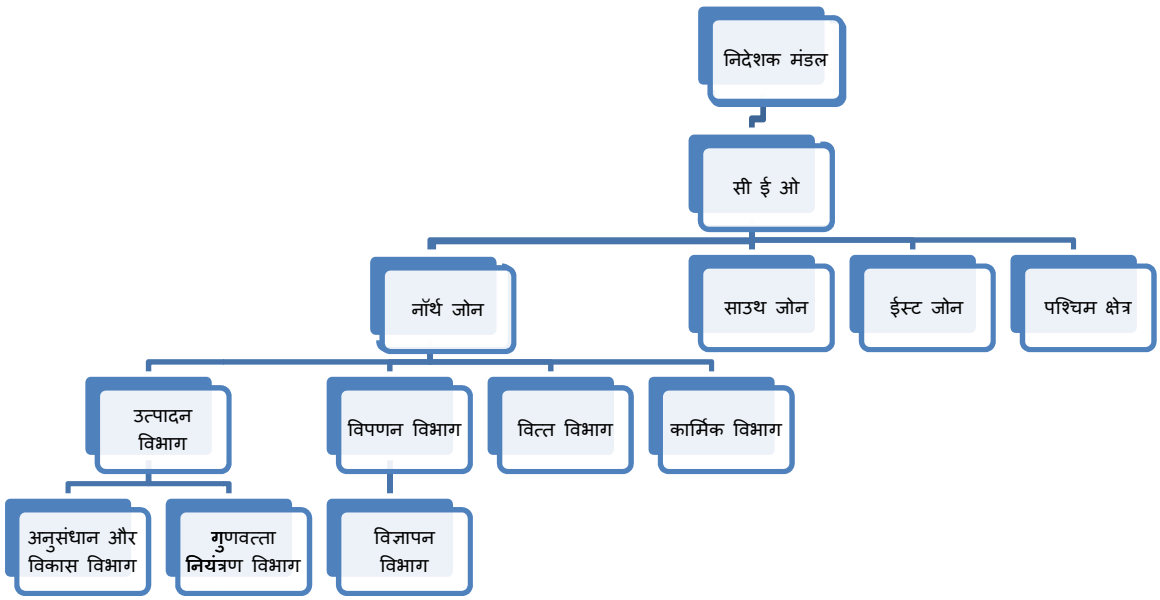

चित्र 7.3 क्षेत्र के आधार पर विभागीयकरण

क्षेत्र के आधार पर विभागीयकरण करने के गुण एवं दोष निम्नलिखित हैं :

- **गुण**

(i) ग्राहकों से सीधा संपर्क होने के कारण उनकी समस्याओं को आसानी से समझा एवं दूर किया जा सकता है।

(ii) स्थानीय प्रतियोगिता का सामना आसानी से किया जा सकता है।

(iii) प्रभावपूर्ण क्षेत्रीय नियंत्रण संभव होता है।

(iv) इस तरह के संगठन को कुछ स्थानीय तत्वों, जैसे – कच्चा माल, श्रमिक, बाजार के लाभ प्राप्त होते हैं।

(v) क्षेत्रीय लाभ–हानि की जानकारी प्राप्त होने पर, अधिक लाभ देने वाले क्षेत्र में अधिक विनियोग संभव होता है।

(vi) क्षेत्रीय प्रबंधकों की अच्छे परिणाम दिखाने की प्रतियोगिता का संस्था को लाभ पहुचता है।

- **दोष**

(i) कुछ ऐसे कार्य जिनको केन्द्रिय स्तर पर मितव्ययी ढंग से किया जाता है। उनको सभी क्षेत्रों में अलग–अलग करने से खर्चे बढ़ते हैं।

(ii) नीतियां बनाने वालों एवं उनको लागू करने वालों में दूरी होने के कारण, नीतियों को प्रभावपूर्ण तरीके से लागू करने में कठिनाई आती है।

(iii) अधिक प्रबंधकीय कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है जिससे प्रबंधकीय खर्चे बढ़ते हैं।

(iv) मुख्य कार्यालय एवं क्षेत्रीय कार्यालयों में अधिक दूरी होने के कारण नियंत्रण में कठिनाई आती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.4 क्या वस्तुओं के आधार पर विभाग बांटे जा सकते हैं । कैसे?
प्र.5 क्षेत्रों के आधार पर विभागीयकरण की प्रक्रिया उदाहरण से समझाइए।
प्र.6 कार्य का विभागीयकरण से क्या संबंध है?

(घ) प्रक्रिया के आधार

विभागीयकरण का यह आधार उन औद्योगिक संस्थाओं में लाभकारी होता है जिनकी उत्पादित वस्तुएं अनेक प्रक्रियाओं से होकर गुजरती हैं। उदाहरणार्थ, एक कपड़ा बनाने वाली संस्था में कताई, बुनाई, रंगाई एवं छपायी तथा पैकिंग विभाग बनाए जा सकते हैं। सभी विभागों में अलग–अलग प्रक्रियाएं पूरी करने के लिए अलग–अलग मशीनों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें विशेष योग्यता वाले व्यक्ति चलाते हैं। प्रक्रिया के आधार पर विभागीकरण को निम्न चित्र में दिखाया गया है।

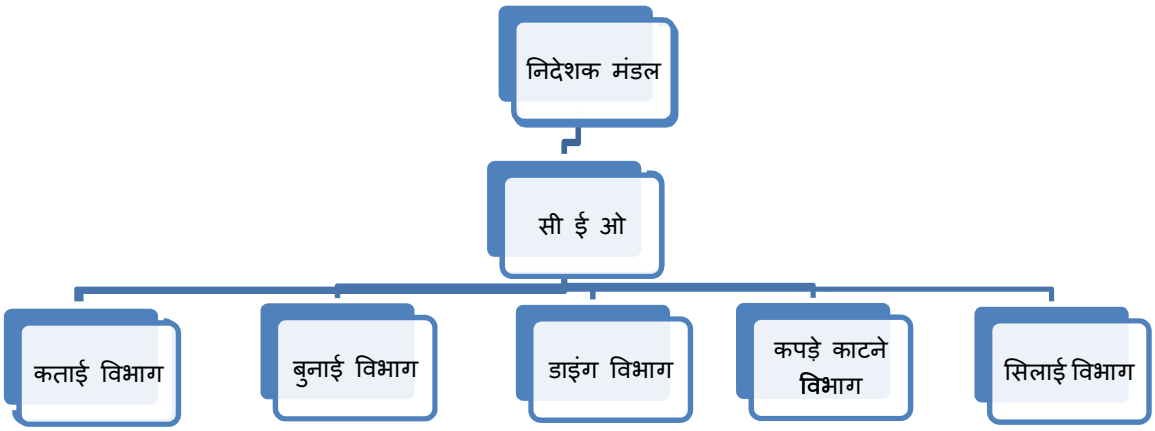

चित्र 7.4 प्रक्रिया के आधार पर विभागीयकरण

प्रक्रिया के आधार पर विभागीयकरण के गुण एवं दोष निम्नलिखित हैं :

- **गुण**

(i) मानवीय शक्ति का प्रभावपूर्ण उपयोग किया जा सकता है।

(ii) विशेषज्ञ कर्मचारियों की नियुक्ति की जा सकती है।

(iii) किसी विभाग में उत्पादित माल की लागत अधिक आने पर उस विभाग को बंद करे, वही माल बाजार से खरीदा जा सकता है।

(iv) किसी विभाग में उत्पादित माल की लागत बहुत आने पर उसका विस्तार करके उससे उत्पादित माल बाजार में बेचकर लाभ कमाया जा सकता है।

- **दोष**

(i) विभागीयकरण की इस पद्धति में सभी विभाग एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं। अतः एक विभाग में कार्य बंद होने से अन्य विभाग भी बंद हो जाते हैं।

(ii) एक विभाग द्वारा घटिया किस्म का माल उत्पादित करने से अन्य विभागों द्वारा उत्पादित माल की किस्म भी घटिया हो जाती है।

(ङ) ग्राहकों के आधार पर

विभागीयकरण की यह पद्धति उन व्यावसायिक संस्थाओं में प्रयोग की जाती है जहां अनेक प्रकार के ग्राहकों के साथ व्यवहार करना होता है। जैसे – एक व्यावसायिक संस्था थोक व्यापार, फुटकर व्यापार एवं निर्यात व्यापार करती है तो इसमें तीनों प्रकार के ग्राहकों के लिए तीन अलग–अलग विभाग बनाए जा सकते हैं जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

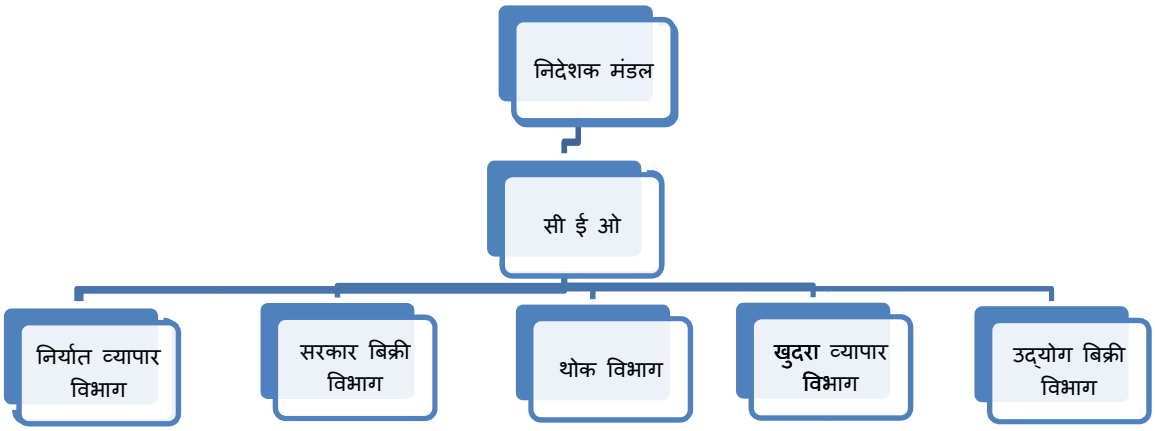

चित्र 7.5 ग्राहकों के आधार पर विभागीयकरण

ग्राहकों के आधार पर विभागीयकरण के गुण एवं दोष निम्नलिखित हैं।

- **गुण**

(i) सभी ग्राहकों को पूरी तरह संतुष्ट किया जा सकता है।

(ii) अलग–अलग प्रकार के ग्राहकों से सीधा संपर्क होने के कारण उनकी समस्याओं का शीघ्र निवारण किया जा सकता है।

- **दोष**

(i) विभागों के आकार में अधिक अंतर होते हुए भी सभी को एक जैसी सुविधाएं (प्रबंधको एवं अन्य कर्मचारियों के रुप में) प्रदान करने से लागतें बढ़ती हैं।

(ii) ग्राहकों के अनेक प्रकार होने के कारण उम्पादित वस्तुओं की संख्या बढ़ जाती है जिससे उत्पादन विभागों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

(iii) समन्वय में कठिनाई आती है।

(च) मैट्रिक्स के आधार पर

विभागीयकरण का यह आधार उन व्यावसायिक संस्थाओं के लिए उपयुक्त है जिसमें किए जाने वाले कार्य जल्दी–जल्दी बदलते रहते हैं, जैस–एक इंजीनियरिंग कम्पनी को प्रतिदिन नई मशीनें बनाने के आदेश प्राप्त होते रहते हैं। इसी प्रकार एक कंस्ट्रक्शन कम्पनी को भवन, सड़कें, पुलों आदि के निर्माण का कार्य मिलता रहता है। ऐसी संस्थाओं में विभागीकरण का कोई एक आधार काम नहीं करता बल्कि एक ही साथ दो या अधिक आधारों का प्रयोग करना पड़ता है। इसीलिए इसे सामूहिक, ग्रिड आदि नामों से भी जाना जाता है।

इसके अंतर्गत प्रायः कार्य के अनुसार एवं वस्तुओं का संयुक्त रुप से प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम, कम्पनी की सभी क्रियाओं को संगठन के स्थाई विभागों को सौंप दिया जाता है। जैसे– क्रय विभाग, निर्माणी विभाग, शोध एवं विकास विभाग आदि। इन सभी विभागों की स्थापना हो जाने पर जैसे ही संस्था को कोई कार्य मिलता है तो वस्तुओं अथवा प्रोजेक्ट के आधार पर विभागीयकरण कर दिया जाता है जैसा कि निम्न चित्र में स्पष्ट किया गया हैः

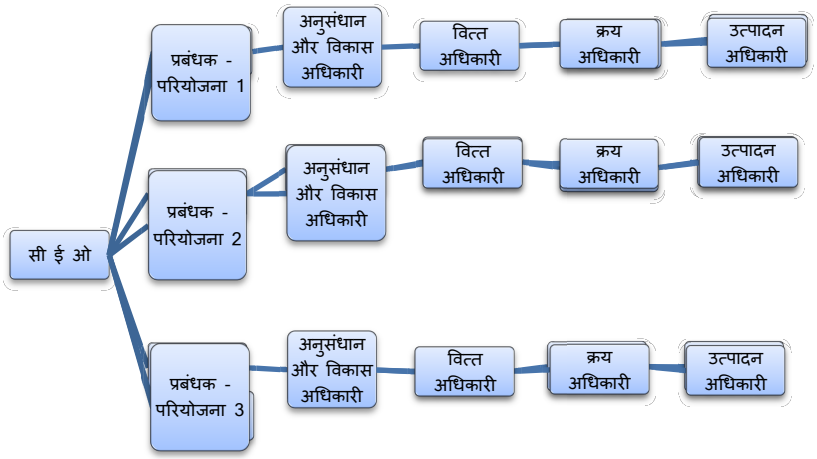

चित्र 7.6 मैट्रिक्स के आधार पर विभागीकरण

जैसे ही कम्पनी को कोई विशेष कार्य मिलता है तो एक प्राजेक्ट प्रबंधक के नेतृत्व में विभिन्न कार्यानुसार विभागों से अधिकारियों को लेकर एक टीम का गठन कर दिया जाता है। जैसे – कम्पनी को एक्स प्रोजेक्ट के मिलने पर इसके एक अलग से प्रबंधक नियुक्त कर दिया जाता है जिसको क्रय अधिकार, निर्माण अधिकारी, वित्त अधिकारी तथा शोध एवं विकास अधिकारी सहयोगी के रुप में दे दिए जाते हैं। प्रोजेक्ट 1 की सारी जिम्मेदारी संबंधित प्रबंधक की रहती है और जैसे ही एक्स प्रोजेक्ट का काम पूरा होगा तो प्रोजेक्ट के आधार पर किया गया यह विभागीयकरण समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार 2 तथा 3 प्रोजेक्टों का कार्य चलेगा। जो अधिकारी प्रोजेक्ट प्रबंधक के सहयोगी के रुप में उपलब्ध कराए जाते हैं वे प्रोजेक्ट का काम पूरा होने पर पुनः अपने पैतृक विभाग में चले जाते है।

प्रोजेक्ट प्रबंधक का उसके टीम के सदस्यों पर अधिकार अस्थाई होता है। जैसा कि चित्र में बिन्दुवार लाईन के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। मुख्य प्रबंधक की ओर से कार्यानुसार बनाए गए विभागों का यह आदेश होता है कि वे प्रोजेक्ट प्रबंधकों को पूरा सहयोग दें। प्रोजेक्ट प्रबंधक सभी कार्यों का विशेषज्ञ होता है और वह एक प्रोजेक्ट से संबंधित सभी गतिविधियों को देखता है। दूसरी ओर, विभागीय प्रबंधक किसी एक विशेष कार्य के ही विशेषज्ञ होते हैं।

मैट्रिक्स के आधार पर विभागीकरण के गुण एवं दोष निम्नलिखित होते हैं :

- **गुण**

(i) **विशेषज्ञों की प्रचुर मात्रा** : इस विभागीयकरण में विशेषज्ञ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। जैसे कार्यानुसार विभागीयकरण के विभिन्न विभागों के अध्यक्ष अपने कार्य के विशषज्ञ होते हैं, प्रोजेक्ट प्रबंधक सभी कार्यों के विशषज्ञ होते हैं तथा अधिकारीगण अपने–अपने विशेष कार्य की पूरी जानकारी रखते हैं। इस प्रकार विशेषज्ञों की राय का भरपूर लाभ उठाया जा सकता है।

(ii) **लोचशीलता** : संस्था का मुख्य प्रबंधक व्यावसायिक अवसरों के अनुसार इसमें आसानी से परिवर्तन कर सकते हैं। अर्थात अधिक आदेश प्राप्त होने पर कितने ही प्रोजेक्ट प्रबंधक नियुक्त किये जा सकते हैं और आदेश कम होने पर प्रबंधकों को विशेष प्रोजेक्टों से हटाकर संस्था के सामान्य कार्य में लगाया जा सकता है।

(iii) **विस्तार की अधिक संभावनाएं** : मैट्रिक्स पद्धति में संस्था के विस्तार की संभावनाएं बढ़ जाती हैं क्योंकि प्रबंधक प्रत्येक नए प्रोजेक्ट के लिए एक पृथक विभाग स्थापित कर सकते हैं।

(iv) **लागतों में मितव्ययता** : प्रत्येक प्रोजेक्ट पर केवल उतने ही व्यक्ति लगाए जाते हैं जितनी आवश्यकता हो और शेष को व्यवसाय के सामान्य कार्यो में लगा दिया जाता है। इस प्रकार मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग करके लागतों में कमी की जाती है।

- **दोष**

(i) **आदेश की एकता के सिद्धान्त का उल्लंघन** : इस प्रकार के संगठन में आदेश की एकता के सिद्धान्त का उल्लंघन किया जाता है। अधिकारियों को विभागीय प्रबंधकों एवं प्रोजेक्टों प्रबंधकों दोनो से आदेश प्राप्त होते हैं। अधिकारियों को एक से अधिक प्रबंधकों के आदेश का पालन करना होता है जिससे उनकी कार्यकुशलता में कमी आती है।

(ii) **विभागीय प्रबंधकों एवं प्रोजेक्ट प्रबंधकों के मध्य संघर्ष** : इन दोनों प्रकार के प्रबंधकों के उद्देश्य एवं प्राथमिकताएं भिन्न होते है। प्रोजेक्ट प्रबंधक यह चाहते हैं कि उन्हें जब जिस सेवा की आवश्यकता हो विभागीय प्रबंधक तुरन्त उपलब्ध करा दें। दूसरी ओर,

विभागीय प्रबंधक चाहते हैं कि उनकी समय तालिका के अनुसार ही सारे कार्य किये जाएं और उनकी सेवाओं का नियमित रुप से उपयोग किया जाए।

(iii) **संदेशवाहक की समस्या** : प्रोजेक्ट टीम के सदस्य अथवा अधिकारी यह नहीं समझ पाते कि वे विभागीय प्रबंधक से बात करें या प्रोजेक्ट प्रबंधक से। इस प्रकार की अस्पष्ट स्थिति में संदेशवाहन की समस्या बनी रहती है।

(iv) **उत्तरदायित्व का अभाव** : असफलता की दशा में प्रोजेक्ट प्रबंधक विभागीय प्रबंधकों को दोषी ठहराते हैं और विभागीय प्रबंधक प्रोजेक्ट प्रबंधकों को।

मैट्रिक्स के आधार पर विभागीयकरण के गुण–दोषों का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि यह पद्धति उन बड़े व्यवसायों के लिए उपयुक्त है जो बड़ी मशीनों का निर्माण करते हों या कंस्ट्रक्शन का कार्य करते हों। आजकल अन्य व्यवसायों में भी इस पद्धति को अपनाया जा रहा है।

टूल बाक्स – 3
विभागीयकरण के आधार अथवा पद्धतियां
1. कार्यो के आधार पर
2. वस्तुओं अथवा सेवाओं के आधार पर
3. क्षेत्र के आधार पर
4. प्रक्रिया के आधार पर
5. ग्राहकों के आधार पर
6. मैट्रिक्स के आधार पर

टूल बाक्स – 4
विभागीयकरण में ध्यान देने योग्य बातें
1. विशिष्टीकरण
2. समन्वय
3. क्रियाओं का महत्व
4. उपलब्ध सुविधाएं

5. मितव्ययता
6. प्रतियोगियों को देखना

औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन

संगठन का ढांचा औपचारिक भी हो सकता है और अनौपचारिक भी। अर्थात संगठन में कार्यरत सभी व्यक्तियों के मध्य संबंध दो प्रकार से स्थापित हो सकते हैं, प्रथम, वे जो निश्चित होते हैं और इनको पहले से ही परिभाषित कर दिया जाता है, तथा दूसरे, वे जो अनिश्चित होते हैं और पहले से परिभाषित नहीं होते। यहां हम इनका विस्तृत अध्ययन करेंगे।

औपचारिक संगठन

औपचारिक संगठन का अभिप्राय एक ऐसे संगठन से है जिसके अंतर्गत संस्था में कार्यरत व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों, अधिकारों एवं पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट परिभाषित कर दिया जाता है।

चेस्टर के अनुसार, ''जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों की क्रियाऐं समान उद्देश्य की पूर्ती के लिए जान–बूझकर समन्वित की जाती है, तब उसे औपचारिक संगठन कहते हैं।

- **औपचारिक संगठन के मुख्य लक्षण**

औपचारिक संगठन के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं :

(i) इसमें परिभाषित **आपसी संबंध होता है :** औपचारिक संगठन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें आपसी संबंधों की स्पष्ट व्याख्या की जाती है तथा सभी को अपने–अपने दायित्व एवं अधिकार पता होते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कौन किसको रिपोर्ट करेगा।

(ii) **यह नियमों एवं कार्यविधियों पर आधारित होता है:** औपचारिक संगठन में पूर्व – निर्धारित नियमों एवं कार्यविधियों का पालन किया जाना आवश्यक होता है। इनके द्वारा नियोजन में निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है।

(iii) **यह कार्य–विभाजन पर आधारित होता है**: औपचारिक संगठन का मुख्य आधार कार्य–विभाजन होता है। इसी आधार पर विभिन्न विभागों के प्रयास एक–दूसरे से संबंधित होते हैं।

(iv) **यह जान–बूझकर स्थापित किया जाता है** : यह संस्था के उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए जान–बूझकर बनाया जाता है।

(v) **यह अव्यक्तिगत होता है**: इसके अंतर्गत व्यक्तिगत भवनाओं को अनदेखा करके कठोर अनुशासन का पालन करने की बात कही जाती है। इसके अंतर्गत व्यक्ति को नहीं काम का महत्व होता है।

(vi) **यह अधिक स्थिर होता है**: इसमें व्यक्तियों की आवश्यकाताओं एवं इच्छाओं के अनुसार परिवर्तन नहीं किए जा सकते। अतः यह अधिक स्थिर है।

टूल बाक्स – 5
औपचारिक संगठन इसका अभिप्राय किसी विशेष कार्य को पूरा करने के लिए प्रबन्ध द्वारा तैयार किये संगठन ढांचे से है ।

- **औपचारिक संगठन के लाभ**

(i) **उत्तरदेयता निर्धारण में आसानी**: सभी कर्मचारियों के अधिकार एवं उत्तरदायित्व निश्चित होने के कारण अकुशल कर्मचारियों को शीघ्र पकड़ा जा सकता है और उन्हें उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(ii) **कार्यों का दोहराव नहीं होता** : औपचारिक संगठन में सब कुछ व्यवस्थित ढंग से चलता है और किसी भी कार्य के छूट जाने या कोई कार्य अनावश्यक रुप से एक से अधिक बार होने की संभावना समाप्त हो जाती है।

(iii) **आदेश की एकता संभव** : अधिकतर श्रृंखला स्थापित होने के कारण आदेश की एकता के सिद्धांत का पालन करना संभव है।

(iv) **लक्ष्यों को प्राप्त करने में आसानी**: औपचारिक संगठन के अंतर्गत समन्वय स्थापित होने, सभी भौतिक एवं मानवीय साधनों का अनुकूलतम उपयोग होने के कारण संस्था के लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

(v) **संगठन में स्थिरता** : सभी व्यक्ति अपने–अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए तथा नियमों का पालन करते हुए कार्य करते हैं। परिणामतः उनमें अच्छे संबंध स्थापित होते हैं और संगठन में स्थिरता आती है।

औपचारिक संगठन की सीमाएं निम्नलिखित हैं:

(i) **काम में देरी:** प्रत्येक कार्य के नियमबद्ध होने के कारण कार्य में अनावश्यक देरी होती है।

(ii) **पहल–क्षमता:** इस संगठन में कर्मचारियों को वैसा ही करना पड़ता है जैसा उनको निर्देश दिया जाता है। और उनको कुछ सोचने को नहीं मिलता। अतः उनकी पहल–क्षमता में कमी आ जाती है।

(iv) **संबंधों का यंत्रीकरण**: विभिन्न व्यक्तियों के संबंधों को परिभाषित करके उन्हें इस प्रकार जकड़ दिया जाता है कि चाहते हुए भी अन्य लोगों के ज्ञान एवं अनुभव का लाभ नहीं उठाया जा सकता।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 औपचारिक संगठन क्या है?
प्र.8 संबंधों का यंत्रीकरण की प्रक्रिया उदाहरण से समझाइए।
प्र.9 औपचारिक संगठन में आदेश की एकता कैसे संभव है?

अनौपचारिक संगठन

अनौपचारिक संगठन का आशय ऐसे संगठन से है जिसकी स्थापना जान–बूझकर नहीं की जाती, बलिक अनायास ही पारस्परिक समान हितों, रुचियों, धर्म, एव संबंधों के कारण हो जाती है। अनौपचारिक संगठन की मुख्य विशेषता आपसी संबंधों की मैत्रीपूर्ण व सहयोगपूर्ण प्रकृति है। इसके अंतर्गत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के कामों में इसलिए मदद नहीं करता कि वह इसके लिए जिम्मेदार है, बल्कि इसलिए करता है कि यह उसकी निजी

इच्छा एवं पसंद है। उदाहरणार्थ, औपचारिक संगठन के अंतर्गत क्रय विभाग का पर्यवेक्षक अपनी कार्य संबंधी किसी समस्या के लिए केवल क्रय विभाग के प्रबंधक से ही सलाह लेने के लिए बाध्य हैं। लेकिन अनौपचारिक संगठन में यह सलाह किसी अन्य विभाग के प्रबंधक या पर्यवेक्षक से ली जा सकती है। इतना ही नहीं बलिक एक पर्यवेक्षक सीधा मुख्य प्रबंधक से भी बातचीत कर सकता है।

टूल बाक्स – 6
अनौपचारिक संगठन इसका अभिप्राय व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्य–स्थल पर लोगों के स्वतः स्थापित समूहों से है।

चेस्टर बनार्ड के अनुसार, ''वह संगठन अनौपचारिक है जिसमें आपसी संबध अज्ञानतावश संयुक्त उद्देश्यों के लिए बनते हैं।''

- **अनौपचारिक संगठन के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं:**

(i) **औपचारिक संगठन पर आधारितः** यह औपचारिक संगठन पर आधारित होता है। औपचारिक संगठन में काम कर रहे व्यक्तियों के मध्य ही अनौपचारिक संबंध होते हैं (अर्थात पहले औपचारिक संगठन स्थापित होता है और फिर उसी में से अनौपचारिक संगठन बनता है)।

(ii) **इसके लिखित नियम एवं प्रक्रियाएं नहीं होते हैं** : इस संगठन में आपसी व्यवहार के कोई लिखित नियम एवं प्रक्रिया नहीं होती, फिर भी इसकी अपनी समूह परंपराएं होती हैं। जिनका पालन करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, किसी संस्था में कार्यरत एक विशेष समुदाय के कुछ व्यक्ति एक अनौपचारिक ग्रुप बना लेते हैं। धीरे–धीरे इस ग्रुप की परंपराएं अथवा मान्यताएं विकसित हो जाती है। जैसे – अपने समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत एवं कार्यस्थल से संबंधित किसी भी समस्या का समाधान करना। इसी प्रकार अपने समुदाय के सभी लोगों को प्रबंधकीय शोषण से बचाना। इस तरह अनौपचारिक समूह में शामिल होने वाले सभी सदस्य समूह की मान्यताओं का पालन करने के लिए बाध्य होंगे।

(iii) **स्वतंत्र संदेशवाहन श्रृंखला :** इसमें विभिन्न व्यक्तियों के मध्य संबंधों को पारिभाषित नहीं किया जा सकता। क्योंकि एक निम्न स्तर के व्यक्ति का भी उच्चतम स्तर के व्यक्ति के साथ सीधा संबंध हो सकता है। इसीलिए संदेशवाहन के प्रवाह को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

टूल बाक्स – 7
संगठन चार्ट संगठन चार्ट एक रेखा चित्र होता है जो एक संगठन में स्थापित विभिन्न पदो ंके मध्य संबंधो को स्पष्ट करता है।

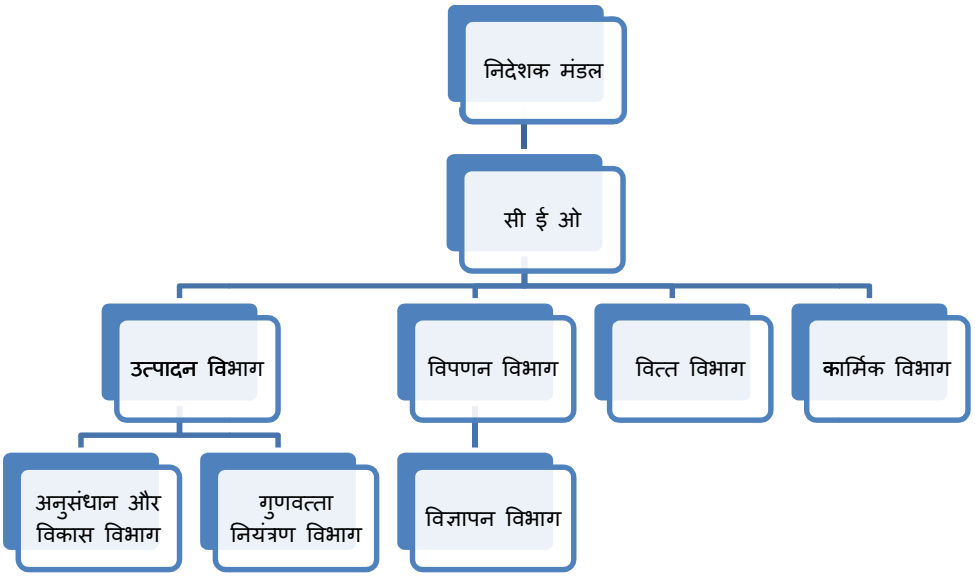

चित्र – 7.7 संगठन चार्ट

टूल बाक्स – 8
संगठन पुस्तिका संगठन पुस्तिका में संगठन में स्थापित विभिन्न पदो ंके अधिकार एवं उत्तरदायित्वों की व्याख्या की जाती है। तथा अन्य संबंधित विवरण लिखे जाते हैं।

(iv) **यह जानबूझकर स्थापित नहीं किया जाता है**: अनौपचारिक संगठन की स्थापना जान–बूझकर नहीं की जाती बल्कि व्यक्तियों के आपसी संबंधों एवं रुचियों के आधार पर हो जाती है।

(v) **संगठन चार्ट पर कोई स्थान नहीं**: अनौपचारिक संगठन का विधिवत रुप से तैयार किए गए संगठन चार्ट पर कोई स्थान नही होता। इसके अतिरिक्त संगठन पुस्तिका में भी इसकी कोई जानकारी नहीं दी जाती।

(vi) **यह व्यक्तिगत होता है**: इसके व्यक्तिगत होने का अभिप्राय यह है कि इसके अंतर्गत व्यक्तियों की भावनाओं को ध्यान में रखा जाता है और उन पर किसी भी बात को थोपा नहीं जाता।

(vii) **स्थायित्व की कमी**: इसमें प्रायः स्थायित्व का अभाव होता है: जैसे – एक व्यक्ति आज एक ग्रुप में बैठता है तो कल किसी अन्य ग्रुप में संबंध स्थापित कर लेता है। इतना ही नहीं बल्कि एक व्यक्ति एक ही समय में एक से अधिक समूहों का सदस्य भी हो सकता है।

अनौपचारिक संगठन के लाभ

अनौपचारिक संगठन के लाभ निम्नलिखित हैं:

(i) **प्रभावपूर्ण संदेशवाहन** : निर्धारित मार्ग न होने के कारण यह संदेशवाहन की एक प्रभावपूर्ण पद्धति है। इसके माध्यम से संदेश अतिशीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुचाए जा सकते हैं।

(ii) सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति: अनौपचारिक संगठन में समान विचार रखने वाले व्यक्ति अपना–अपना समूह बना लेते हैं। समूह के सभी सदस्य संगठनात्मक व व्यक्तिगत मुद्दे पर एक–दूसरे का साथ देते हैं। इससे उन्हे कार्य संतुष्टि प्राप्त होती है और संगठन के भाईचारे की भावना में वृद्धि होती है।

(iii) **संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति**: यहां औपचारिक संगठन के दबाव से राहत मिलती है। अनौपचारिक संगठन में अधीनस्थ बिना किसी डर के अपनी बात अपने अधिकारियों के आगे कह देते हैं जिससे अधिकारियों को उनकी कठिनाइयों को जानने में सहायता मिलती है। और सभी समस्याओं का तुरन्त समाधान निकल आता है।

सरलता से समस्याएं दूर होने से संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने में आसानी रहती है।

अनौपचारिक संगठन की सीमाएं

(i) **यह अफवाहें फैलाता है:** अनौपचारिक संगठन में सभी व्यक्ति लापरवाही से बात–चीत करते हैं और कई बार गलत बात एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक फैल जाती है जिसके भयंकर परिणाम सामने आते हैं।

(ii) **यह परिवर्तन का विरोध करता है:** यह संगठन परिवर्तनों का विरोध करता है और पुरानी पद्धतियों को ही लागू रखने पर जोर देता है।

(iii) **समूह परंपराओं का दबाव:** इस संगठन में सदस्यों पर समूह परंपराओं का पालन करने का दबाव रहता है कई बार अनौपचारिक समूहों में एकत्रित हुए कर्मचारी अपने लक्ष्य से बेखबर हो जाते हैं और सभी एक आवाज़ में अपने अधिकारों का विरोध करने का निर्णय ले लेते हैं। ऐसी स्थिति में उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त वर्णन से दोनो प्रकार के संगठनों के गुण व दोष स्पष्ट होते हैं जहां एक ओर औपचारिक संगठन संस्था के उद्देश्यों को सरलता से प्राप्त करने में सहायक हैं, वहीं दूसरी ओर, यदि ठीक ढंग से प्रयोग में लाया जाए तो अनौपचारिक संगठन का महत्व भी कम नहीं है। संक्षेप में, कर्मचारियों में अनौपचारिक संबंध, औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन एक सामूहिक कार्य के लिए इस तरह जरुरी है जैसे कि एक कैंची को कार्य करने योग्य बनाने के लिए उसमें दो ब्लेडों का होना जरुरी है। इसी संदर्भ में यह कहना भी उचित होगा कि, प्रबंधन का अनौपचारिक संगठन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.10 अनौपचारिक संगठन क्या है?
प्र.11 संगठन चार्ट की प्रक्रिया उदाहरण से समझाइए।
प्र.12 अनौपचारिक संगठन में प्रभावपूर्ण संदेशवाहन कैसे संभव है?

- **औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन में अंतर**

दोनों प्रकार के संगठनों में अंतर निम्न चित्र एवं तालिका की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

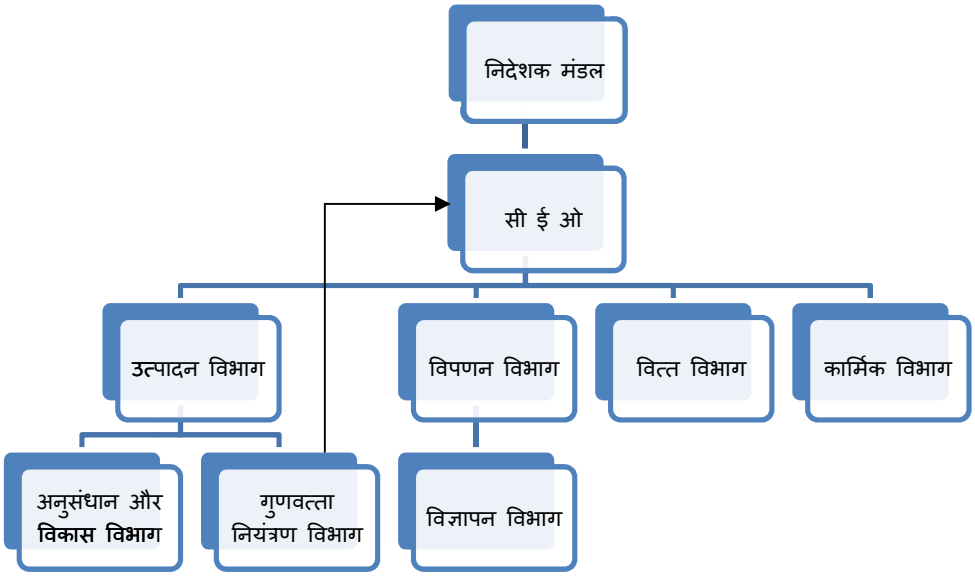

————औपचारिक संगठन

————→अनौपचारिक संगठन

चित्र – 7.8 औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट होता है कि औपचारिक संगठन के अंतर्गत मुख्य प्रबंधक, क्रय प्रबंधक तथा क्रय सुपरिटेन्डेन्ट के मुख्य, श्रृंखला में रहते हुए व्यवहार करना होता है। अर्थात क्रय सुपरिटेन्डेन्ट अपनी बात केवल क्रय प्रबंधक को ही कह सकता है। इसी प्रकार की श्रृंखला उत्पादन एंव वित्त विभाग में भी काम करेगी। इसके विपरीत, अनौपचारिक संगठन में क्रय सुप्रिटेंडेंट अपने आपसी संबंधो के कारण उत्पादन प्रबंधक से विचार–विमर्श कर सकता है। इसी प्रकार वित्त सुप्रिटेंडेंट सीधे ही मुख्य प्रबंधक के सामने अपनी समस्या रख सकता है।

निम्न तालिका द्वारा औपचारिक संगठन के मध्य अंतर को आसानी से समझा जा सकता है।

अंतर का आधार	औपचारिक संगठन	अनौपचारिक संगठन
1.अर्थ	अधिकार संबंधो के ढांचे के रुप में प्रबंधन द्वारा उत्पन्न किए गए संगठन को औपचारिक संगठन कहते हैं।	आपसी संबंधों के कारण स्वतः उत्पन्न संगठन को अनौपचारिक संगठन कहते हैं।
2.उद्गम	इसकी स्थापना संगठन की नीतियों एवं नियमों के कारण होती है।	इसकी स्थापना सामाजिक संबंधों के कारण होती है।
3.अधिकार	अधिकार संगठन में स्थापित पदों के कारण उत्पन्न होते हैं तथा ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होते हैं।	अधिकार व्यक्तिगत गुणों के कारण उत्पन्न होते हैं। अधिकारों का प्रवाह ऊपर से नीचे या समतल रुप में हो सकता है।
4.व्यवहार	व्यवहार पूर्व निर्धारित होता है। अर्थात यह पहले से ही मालूम होता है कि कौन क्या करेगा, कैसे करेगा, कौन बॉस होगा ओर कौन अधीनस्थ।	व्यवहार व्यक्तिगत लगाव पर निर्भर करता है। अर्थात यह पहले से निर्धारित नहीं होता है।
5.संदेशवाहन अथवा सम्प्रेषण का प्रवाह	सम्प्रमेषण पारिभाषित होता है। यह सोपान श्रृंखला के अनुसार चलता है।	सम्प्रेषण पारिभाषित नहीं होता। यह किसी भी दिशा में प्रवाहित हो सकता है।
6.प्रकृति	यह अधिक स्थिर अथवा टिकाऊ होता है। इसमें पूर्वानुमान संभव नहीं होता है।	यह अस्थिर अथवा कम टिकाऊ होता है। इसमें पूर्वानुमान संभव नहीं है।
7.नेतृत्व	प्रबन्धक अपने उच्च पदों के कारण नेता होते हैं।	नेता चुना जाता है।

4.5 सारांश

आज व्यवसाय का पैमाना निरंतर बढ़ता जा रहा है। व्यवसाय का पैमाना बढ़ने पर उसमें काम करने वाले व्यक्तियों का संख्या में वृद्धि होती है। सभी व्यक्तियों की रुचि, काम करने का ढंग, आपसी मेलजोल, काम करने का उद्देश्य, सहन–शक्ति आदि अलग–अलग होते है। इतनी विभिन्नताओं के होते हुए भी उन्हें एक समूह में काम करना होता है जोकि एक आसान काम नहीं है। अतः जरुरी है कि समन्वय के माध्यम से ऐसा वातावरण तैयार किया जाए ताकि सभी व्यक्ति संस्था उद्देश्य प्राप्ति में पूरा योगदान दे सकें। एक संस्था में स्थापित विभिन्न विभागों का हित अलग–अलग हो सकता है। ऐसी स्थिति में संस्था के मुख्य उद्देश्य को पूरा करने में रुकावट बन जाती है। इस हानि से बचने का एक ही तरीका है वह यह कि दोनों में समन्वय स्थापित किया जाए। प्रत्येक संगठन में, विशिष्टीकरण का लाभ उठाने के लिए एक मुख्य क्रिया को अनेक छोटी–छोटी उपक्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक उपक्रिया को अलग–अलग व्यक्तियों को सौपा जाता है जो कि उस उपक्रिया के विशेषज्ञ होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति 'कुल कार्य' की परवाह किए बिना अपने कार्य को अपने ढंग से करना चाहता है। ऐसी स्थिति में विभिन्न व्यक्तियों की क्रियाओं को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए उनमें समन्वय स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। समन्वय स्थापित हो जाने पर सभी व्यक्ति अपना–अपना कार्य 'कुल कार्य' कें संदर्भ में पूरा करते हैं। साथ ही एक संस्था की सभी इकाईयां एक दूसरे पर आश्रित होती हैं। विभिन्न इकाइयां एक–दूसरे पर जितनी अधिक आश्रित होंगी, समन्वय की अवश्यकता उतनी ही अधिक होगी।

विभागीयकरण एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। विभागीयकरण के कारण प्रबंधक कुछ ही क्रियाओं को बार–बार करते हैं और अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए निर्णय लेते हैं। थोड़े ही समय में वे उस विभाग के विशेषज्ञ बन जाते हैं। विशेषज्ञ बनने पर अधिक व अच्छा काम कम से कम समय में होने लगता है। विभागीयकरण के अंतर्गत प्रत्येक विभागाध्यक्ष के दायित्वों का निर्धारण करना संभव हो जाता है। यदि किसी कर्मचारी को एक काम न सौंप कर पूरी संस्था के काम सौंपे जाएं तो उसके दायित्व का निर्धारण करना कठिन होता है और प्रत्येक कर्मचारी विपरीत परिणामों की जिम्मेदारी अन्य कर्मचारियों पर डालने का प्रयास करता है। इसके विपरीत, दायित्व निर्धारण हो जाने पर सभी प्रबंधकों को स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं। इस प्रकार उनका पूरा ध्यान एक

ओर लग जाता है और परिणामतः उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। विभागीयकरण के अंतर्गत संस्था में की जाने वाली सभी क्रियाओं को अनेक इकाइयों अथवा विभागों में बांट दिया जाता है। इन छोटे–छोटे विभागों पर प्रबंधन करना आसान होता है। प्रत्येक विभाग में एक अध्यक्ष नियुक्त कर दिया जाता है जिसे उस विशेष विभाग का ज्ञान एवं अनुभव होता है। अपने ज्ञान एवं अनुभव का प्रयोग करके अध्यक्ष सभी कार्य समय पर एवं नियमबद्ध ढंग से पूरे करता है। इस प्रकार संस्था की साख में वृद्धि होती है। संगठन का ढांचा औपचारिक भी हो सकता है और अनौपचारिक भी। अर्थात संगठन में कार्यरत सभी व्यक्तियों के मध्य संबंध दो प्रकार से स्थापित हो सकते हैं, प्रथम, वे जो निश्चित होते हैं और इनको पहले से ही परिभाषित कर दिया जाता है, तथा दूसरे, वे जो अनिश्चित होते हैं और पहले से परिभाषित नहीं होते। औपचारिक संगठन का अभिप्राय एक ऐसे संगठन से है जिसके अंतर्गत संस्था में कार्यरत व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों, अधिकारों एवं पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट परिभाषित कर दिया जाता है। अनौपचारिक संगठन का आशय ऐसे संगठन से है जिसकी स्थापना जान–बूझकर नहीं की जाती, बलिक अनायास ही पारस्परिक समान हितों, रुचियों, धर्म, एव संबंधों के कारण हो जाती है। अनौपचारिक संगठन की मुख्य विशेषता आपसी संबंधों की मैत्रीपूर्ण व सहयोगपूर्ण प्रक्रति है। इसके अंतर्गत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के कामों में इसलिए मदद नहीं करता कि वह इसके लिए जिम्मेदार है, बल्कि इसलिए करता है कि यह उसकी निजी इच्छा एवं पसंद है। उदाहरणार्थ, औपचारिक संगठन के अंतर्गत क्रय विभाग का पर्यवेक्षक अपनी कार्य संबंधी किसी समस्या के लिए केवल क्रय विभाग के प्रबंधक से ही सलाह लेने के लिए बाध्य हैं। लेकिन अनौपचारिक संगठन में यह सलाह किसी अन्य विभाग के प्रबंधक या पर्यवेक्षक से ली जा सकती है। इतना ही नहीं बलिक एक पर्यवेक्षक सीधा मुख्य प्रबंधक से भी बातचीत कर सकता है।

4.6 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. समन्वय के अर्थ का वर्णन कीजिए।
2. समन्वय की प्रकृति पर टिप्पणी कीजिए।
3. समन्वय व नियोजन में क्या संबंध है?
4. क्या विशिष्टीकरण में समन्वय आवश्यक है?
5. संगठन के आकार से समन्वय पर क्या प्रभाव पड़ता है?
6. विभागीयकरण से क्या अभिप्राय है? विभागीयकरण की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन कीजिए।
7. विभागीयकरण के विभिन्न आधार कौन–कौन से हैं? उदाहरण सहित समझाइये।
8. औपचारिक संगठन का अर्थ क्या है?
9. औपचारिक संगठन के लाभ व दोष का वर्णन कीजिए।
10. औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठनों की परिभाषा दीजिए तथा इन दोनों में अंतर बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ''कार्य की एकता की स्थापना के लिए सामूहिक प्रयास की नियमित व्यवस्था को समन्वय कहते है?'' इस कथन के संदर्भ में समन्वय की प्रकृति समझाइए।
2. ''समन्वय प्रबंधन के लिए अतिआवश्यक है।'' क्या आप सहमत हैं? कारण दीजिए।
3. ''समन्वय प्रबंधन का सार है।'' इस कथन को उदाहरणों की सहायता से समझाइए।
4. ''समन्वय को प्रबंधन के एक अलग कार्य के स्थान पर प्रबंधन का सार क्यों माना जाता है।?''
5. ''समन्वय की आवश्यकता प्रबंधन के सभी कार्यों में होती है।'' क्या आप इस से सहमत हैं'? अपने उत्तर के समर्थन में कारण दीजिए।
6. ''समन्वय प्रबंधन का अलग कार्य नहीं है। यह प्रबंधन का सार है।'' उपयुक्त उदाहरण की सहायता से स्पष्ट कीजिए।
7. समन्वय एक संगठन में ''सतत प्रक्रिया'' तथा '' प्रबंधन का सार'' है। वर्णन कीजिए।
8. विभागीयकरण किस प्रकार से किसी संगठन की सहायता करता है?

9. विभागीयकरण का अर्थ समझाइए। विभागीयकरण के मुख्य आधारों की विवेचना कीजिए।
10. व्यावसायिक संगठन के विभागीयकरण की आवश्यकता क्यों पड़ती है? विभागों का निर्माण करते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
11. मैट्रिक्स के आधार पर विभागीयकरण से आपका क्या अभिप्राय है? मैट्रिक्स संगठन के गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिए।
12. विभागीयकरण के अर्थ, परिभाषा एवं महत्व का उल्लेख करें।
13. 'अनौपचारिक संगठन औपचारिक संगठन से अच्छा माना जाता है।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? कारण दीजिए।
14. औपचारिक संगठन औपचारिक संगठन की चार विशेषताएं बताइए।

4.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- देसाई, वसंत (2009) प्रबंधन के सिद्धांत, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
- अग्रवाल, आर. सी. एवं गुप्ता, संजय (2016) प्रबंध के सिद्धांत, एस बी पी पब्लिकेशन्स, आगरा
- Robbins, Stephen P., Coulter, M. &Vohra, N. (2011). Management. Pearson, New Delhi
- Tripathi, P.C. & Reddy, P.N. (2008), Principles of Management, 4th Edition, the McGraw Hill, New Delhi

इकाई – V : नियंत्रण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 नियंत्रण का अर्थ
5.3 नियंत्रण का महत्व एवं सीमाएँ
5.4 नियोजन एवं नियंत्रण में संबंध
5.5 नियंत्रण प्रक्रिया
5.6 नियंत्रण तकनीक
5.7 सारांश
5.8 बोध प्रश्न
5.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- नियंत्रण का अर्थ, विशेषता, महत्व एवं सीमाओं को समझ सकेंगे।
- नियोजन एवं नियंत्रण के संबंध का उल्लेख कर सकेंगे।
- नियंत्रण प्रक्रिया एवं तकनीक की व्याख्या कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

नियंत्रण प्रबंधन का अंतिम लेकिन सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। प्रबंधन के प्रथम कार्य के रुप में नियोजन के अंतर्गत भावी क्रियाओं के बारे में पहले से ही मनन किया जाता है। भावी क्रियाओं का निर्धारण कर लेने के बाद प्रबंधन के दूसरे कार्य संगठन के अंतर्गत, नियोजन में निर्धारित भावी क्रियाओं को कार्यरुप देने के लिए कार्य–भूमिकाओं का ढांचा तैयार किया जाता है। अर्थात संस्था के विभिन्न पद स्थापित कर दिए जाते हैं। संगठनात्मक ढांचे में स्थापित किए गए विभिन्न पदों पर व्यक्तियों को लगाने का कार्य नियुक्तिकरण द्वारा संपन्न किया जाता है। संस्था में कार्यरत सभी व्यक्तियों को सही मार्गदर्शन प्रदान करने का कार्य निर्देशन के अंतर्गत आता है। सबसे अंत में आवश्यकता यह देखने की है कि क्या वे समस्त

क्रियाएं जिनके लिए प्रबंधन के प्रथम चार कार्यों को सम्पन्न किया गया है, योजनाओं के अनुरुप हो रही हैं अथवा नहीं। अर्थात कार्य की प्रगति का मूल्यांकन करके उसमे कमी को ढूँढा जाता है ताकि समय पर ही सुधारात्मक कार्यवाही करके विपरीत परिणामों से बचा जा सके और यह कार्य नियंत्रण के अंतर्गत किया जाता है।

5.2 नियंत्रण का अर्थ व परिभाषाएं

प्रबंधन में नियंत्रण इच्छित उद्देश्यों को कुशलता, किफायत तथा सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए वास्तविक कार्य प्रगति की समय–समय पर समीक्षा करने से है ताकि वास्तविक कार्य प्रगति अपेक्षित प्रगति के अनुरुप हो सकें। नियंत्रण के अंतर्गत वास्तविक प्रगति व निर्धारित प्रमापों के बीच विचलनों का पता लगाया जाता है, विचलनों के कारणों की खोज की जाती है तथा उन्हें दूर करने के लिए सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है ताकि भविष्य में गलतियों की पुनरावृत्ति से बचा जा सके। संक्षेप में, उद्देश्यों के अनुरुप वास्तविक प्रगति को सुनिश्चित करना ही नियंत्रण का प्रमुख उद्देश्य है।

टूल बाक्स – 1
नियंत्रण इसका अभिप्राय वास्तविक परिणामों को इच्छित परिणामों के नज़दीक लाना है।

विभिन्न विद्वानों ने नियंत्रण को अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(1) **फिलिप कोटलर** के अनुसार, ''नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिनके द्वारा वास्तविक परिणामों को इच्छित परिणामों के निकट लाने के प्रयास किये जाते है।''

(2) **डेल हेनिंग** के शब्दों में, ''नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कार्यों की योजना के अनुरुप किया जाता है।''

5.3 नियंत्रण का महत्व एवं सीमाएं

नियंत्रण का महत्व

नियंत्रण प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसकी महत्ता इसी बात से पता चलती है कि प्रबंधन के सभी कार्यों में इसकी आवश्यकता है। नियंत्रण गलतियों को तो रोकता ही है साथ ही यह भी बताता है कि नई चुनौतियों का सामना करने के लिए कितनी क्षमता की जरुरत है। नियंत्रण का महत्व निम्नलिखित बातों से स्पष्ट होता है:

(i) **संगठनात्मक लक्ष्यों का पूरा करना** : योजनाओं की निगरानी के लिए नियंत्रण प्रक्रिया लागू की जाती है। इसके द्वारा विचलनों का अति शीघ्र पता लगाया जाता है और सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है परिणामतः वांछित एवं वास्तविक परिणामों का अंतर न्यूनतम हो जाता है। इस प्रकार, नियंत्रण उद्देश्य प्राप्ति में सहायक है।

(ii) **प्रमापों की शुद्धता को जांचना** : एक प्रबंधक नियंत्रण कार्य करते समय वास्तविक कार्य प्रगति व प्रमापों की तुलना करता है। वह यह जांचता है कि कहीं निर्धारित प्रमाप सामान्य प्रमापों से अधिक या कम तो नहीं है। यदि आवश्यकता हो तो उनका पुर्ननिर्धारण किया जाता है।

(iii) **संसाधनों का कुशलतम उपयोग करना** : नियंत्रण मानवीय व भौतिक साधनों के अनुकूलतम उपयोग को संभव बनाता है। नियंत्रण के अंतर्गत यह देखा जाता है कि कोई भी कर्मचारी निष्पादन में जानबूझ कर देरी न करें। इसी प्रकार सभी भौतिक साधनों के उपयोग में होने वाली बर्बादी को रोका जाता है।

(iv) **कर्मचारी अभिप्रेरणा में सुधार करना** : नियंत्रण के माध्यम से कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने का प्रयास किया जाता है। नियंत्रण व्यवस्था के लागू होने की जानकारी होने पर सभी कर्मचारी पूरी लगन से काम करते हैं, क्योंकि उन्हें पता है कि उनका कार्य का मूल्यांकन होगा और प्रगति रिपोर्ट अच्छी आने पर उनकी संस्था में पहचान बनेगी।

(v) **व्यवस्था एवं अनुशासन सुनिश्चित करना** : नियंत्रण के लागू होने से व्यवस्था एवं अनुशासन सुनिश्चित होता है। परिणामतः सभी अवांछित क्रियाओंः जैसे – चोरी, भ्रष्टाचार, कार्य में देरी, असहयोग की भावना, आदि पर रोक लग जाती है।

(vi) **समन्वय स्थापित करने में सहायक** : संस्थागत उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए संस्था के सभी विभागों में समन्वय जरुरी है। संस्था के सभी विभाग एक–दूसरे पर निर्भर होतें हैं: जैसे– विक्रय विभाग द्वारा माल के आदेशों की पूर्ती करना, उत्पाद विभाग द्वारा उत्पादित माल पर निर्भर करता है। नियंत्रण के माध्यम से यह पता लगाया जाता है कि क्या उत्पादन प्राप्त आदेशों के अनुरुप हो रहा है? यदि नहीं तो विचलनों के कारणों की खोज की जाती है और सुधारात्मक कार्यवाही करके दोनों विभागों में समन्वय स्थापित किया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 प्रबन्धन का आखिरी कार्य क्या है?
प्र.2 नियंत्रण का अर्थ क्या है?
प्र.3 नियंत्रण का एक संगठन में क्या महत्व है?

नियंत्रण की सीमाएं

नियंत्रण प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण कार्य है लेकिन यह सीमाओं से रहित नहीं है। इनकी मुख्य सीमाएं निम्नलिखित हैं:

(i) **गुणात्मक प्रमाप निर्धारित करने में कठिनाई**: प्रमाप निर्धारित करने के संबंध में एक मुख्य बात यह है कि जो कार्य संख्यात्मक प्रकृति के हैं उनके माप निर्धारण में कठिनाई आती है। इनके लिए अप्रत्यक्ष मापदंडों का सहारा लिया जाता है। उदाहरणार्थ, कर्मचारियों के ऊँचें मनोबल को मापना एक गुणात्मक प्रकृति का कार्य है। इसे सीधे तरीके से नहीं मापा जा सकता। इसको मापने के लिए श्रम–परिवर्तन दर, अनुपस्थिति दर, झगड़ों की दर, आदि को देखा जा सकता है। यदि ये तीनों दरें ऊँची हैं तो कहा जाएगा कि संस्था में कर्मचारियों का मनोबल ऊंचा नहीं है। अतः स्पष्ट है कि सभी कार्यों के लिए संख्यात्मक प्रमाप निर्धारित नहीं हो सकते और गुणात्मक प्रमाप पूर्णतः शुद्ध नहीं होते।

(ii) **बाहरी तत्वों पर कोई नियंत्रण नहीं**: यदि हम कहें कि एक प्रबंधक प्रबंधन के नियंत्रण कार्य को पूरा करके संगठन में पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर देगा तो यह कहना बिल्कुल गलत होगा। प्रबंधक आंतरिक तत्वों (जैसे– मानव, माल, मशीन आदि) पर तो नियंत्रण कर सकता है लेकिन बाहरी तत्वों (जैसे–सरकारी नीतियां, तकनीकी

परिवर्तन, प्रतियोगिता, आदि) पर नियंत्रण करना असंभव है। अतः कभी भी पूर्ण नियंत्रण की स्थिति स्थापित नहीं हो सकती।

(iii) **कर्मचारियों द्वारा विरोधः** व्यवसायिक वातावरण में लगातार परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन का सामना करने के लिए नियंत्रण की नवीनतम पद्धतियों का प्रयोग करना होता है। लेकिन कर्मचारी इन पद्धतियों का विरोध करते है। उदाहरण के लिए, यदि उस हाल में जहां कर्मचारी काम कर रहे हैं, उनकी गतिविधियों पर नियंत्रण रखने के लिए सी.सी.टी.वी लगा दिए जाएं तो वे निश्चित रुप से इसका विरोध करेंगे।

(iv) **महंगी प्रक्रिया** : नियंत्रण प्रक्रिया को लागू करने के लिए बहुत धन, समय व प्रयासों की जरुरत होती है। छोटी संस्थाओं के लिए यह विलासिता बन कर रह गई है। प्रबन्धकों को चाहिए कि ऐसी नियंत्रण प्रणाली लागू करें जिससे प्राप्त लाभ उसकी लागतों से अधिक हो।

5.4 नियोजन एवं नियंत्रण में संबंध

नियोजन एवं नियंत्रण के संबंध में निम्नलिखित दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है:

(क) नियोजन एवं नियंत्रण की एक–दूसरे कर निर्भरता

(ख) नियोजन एवं नियंत्रण में विभिन्नता

(क) **नियोजन नियंत्रण की एक–दूसरे पर निर्भरता** : प्रबंधन के नियोजन एवं नियंत्रण कार्यो में गहरा संबंध है। इनके संबंध के महत्व को दर्शाते हुए प्रायः कहा जाता है कि नियोजन, नियंत्रण के अभाव में अंधा है। नियोजन एवं नियंत्रण की एक–दूसरे पर निर्भरता के दोनों पहलुओं की व्याख्या निम्नलिखित है:

(i) **नियोजन एवं नियंत्रण के अभाव में अर्थहीन हैं:** नियोजन एवं नियंत्रण की निर्भरता के पहले भाग में कहा गया है कि नियोजन तभी सफल होता है जबकि एवं नियंत्रण विद्यमान हो अर्थात यदि नियंत्रण विद्यमान न हो तो नियोजन किया जाना व्यर्थ है।

यदि प्रबंधन में से नियंत्रण प्रक्रिया को अलग कर दिया जाए तो संस्था में कार्यरत कोई भी कर्मचारी योजनाओं के अनुरुप काम करने की बात को गंभीरता से नहीं लेगा और परिणामतः योजनाएं असफल हो जाएंगी।

(ii) **नियंत्रण, नियोजन के अभाव में अंधा है** : नियंत्रण के अंतर्गत वास्तविक कार्य निष्पादन की तुलना प्रमापों से की जाती है। अतः यदि प्रमाप निश्चित न किए जाएं तो नियंत्रण का औचित्य ही समाप्त हो जाएगा और प्रमाप नियोजन के अंतर्गत ही निश्चित किए जाते है। इसीलिए कहा जाता है कि नियंत्रण नियोजन के अभाव में अंधा अथवा आधारहीन होता है।

(ख) **नियोजन एवं नियंत्रण में विभिन्नता**: यह ठीक है कि नियोजन एवं नियंत्रण एक–दूसरे के बिना अपूर्ण एवं प्रभावहीन हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि इनके बीच कोई अंतर नहीं है। इनके बीच मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं:

(i) **नियोजन आगे देखता है जबकि नियंत्रण पीछे देखना**: योजनाएं हमेशा भविष्य के लिए बनाई जाती हैं और निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए भविष्य में की जाने वाली कार्यवाही को निर्धारित करती हैं। इसके विपरीत नियंत्रण को पीछे देखने की प्रक्रिया कहा जाता है क्योंकि इसके अंतर्गत प्रबधंक कुछ कार्य पूरा हो जाने के बाद ही यदि देखते हैं कि कार्य प्रमापों के अनुसार हुआ अथवा नहीं। अतः स्पष्ट है कि नियोजन आगे अर्थात भविष्य में देखता है और नियंत्रण पीछे अथार्त भूतकाल में देखता है।

लेकिन नियोजन एवं नियंत्रण के अंतर को उपरोक्त तथ्य के विपरीत करके भी कहा जा सकता है अर्थात नियोजन पीछे देखना, जबकि नियंत्रण आगे देखना नियोजन को पीछे देखना इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि योजनाओं का निर्माण भूतकाल में हुई घटनाओं अथवा प्राप्त अनुभवों के आधार पर ही किया जाता है। दूसरी ओर नियंत्रण भूतकाल में किये गये कार्य का मूयांकन करता तो है लेकिन इसमें सुधारात्मक कार्यवाही भविष्य के लिए की जाती है। अतः यह कहने में भी कोई संकोच नही होना चाहिए कि नियोजन पीछे देखना है जबकि नियंत्रण आगे देखना।

(ii) **नियोजन प्रबंधकीय प्रक्रिया का पहला कार्य है तथा नियंत्रण अंतिम**: प्रबंधकीय प्रक्रिया एक निश्चित क्रम में चलती है, जैसे– नियोजन, संगठन, नियुक्तियां एवं नियंत्रण। इस क्रम से स्पष्ट होता है कि नियोजन प्रबंधकीय प्रक्रिया का प्रथम कदम है जबकि नियंत्रण अंतिम।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.4 नियंत्रण के बिना नियोजन अधूरा है।
प्र.5 नियंत्रण संगठन का एक महत्वपूर्ण अंग है।
प्र.6 नियोजन आगे देखता है और नियंत्रण पीछे देखता है। क्या आप सहमत हैं?

5.5 नियंत्रण प्रक्रिया

नियंत्रण प्रक्रिया के पांच कदम निम्नलिखित हैं

चित्र – 10.1 नियंत्रण प्रक्रिया

(क) **प्रगति प्रमापों का निर्धारण** : प्रमापों का निर्धारण करना नियंत्रण का पहला चरण है। प्रमाप वे आधार होते हैं जिनके संदर्भ में वास्तविक प्रगति को मापा जाता है। प्रमाप

ही व्यक्तियों एवं विभागों को बताते हैं कि उनकी मंजिल क्या है? इनके आधार पर ही एक प्रबंधक वास्तविक प्रगति का मूल्यांकन करके विचलनों का पता लगाता है।

- **प्रमापों के प्रकार**

प्रमाप निम्न दो प्रकार के होते हैं:

(i) **संख्यात्मक प्रमाप** : ये ऐसे प्रमाप होते हैं जिन्हें आंकड़ो में प्रदर्शित किया जाता है: जैसे – एक श्रमिक द्वारा एक दिन में 10 इकाईयां का उत्पादन करना, प्रति इकाई कुल लागत 100 रुपये होना, आदि।

(ii) **गुणात्मक प्रमाप**: ये ऐसे प्रमाप होते हैं जिन्हें आंकड़ो के रुप में प्रदर्शित नहीं किया जा सकता: जैसे–कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि करना। कर्मचारियों के मनोबल को मापना एक गुणात्मक प्रकृति का प्रमाप है। इसे सीधे तरीके से नहीं मापा जा सकता। इसको मापने के लिए श्रम–परिवर्तन दर, अनुपस्थिति दर, झगड़ों की दर, आदि को देखा जा सकता है। यदि इन तीनों की दर नीची हो तो कहा जाएगा कि कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि हुई है।

- **प्रमाप के आधार**

प्रमाप निर्धारण के मुख्यतः चार आधार होते हैं:

(i) मात्रा

(ii) किस्म

(iii) समय तथा

(iv) लागत

मात्रा प्रमाप – उत्पादन, विक्रय स्टॉक आदि के संबंध में होते हैं।

किस्म प्रमाप – कच्चे माल एवं तैयार माल के संबध में तथा ग्राहक सेवा एवं कर्मचारी मनोबल के संबंध में होते हैं।

समय प्रमाप–उत्पादन में लगने वाले समय के संबंध में होते हैं।

इसी प्रकार लागत–प्रमाप – श्रम, माल व अन्य खर्चों के संबंध में होते हैं।

(ख) **वास्तविक प्रगति का मापन** : नियंत्रण प्रक्रिया का दूसरा कदम वास्तविक कार्य प्रगति को मापना है। वास्तविक प्रगति का मापन पूर्व–निर्धारित प्रमापों के आधार कर किया

जाता है। वास्तविक प्रगति के माप से प्रबंधकों को यह जानकारी मिलती है कि कार्य योजना के अनुरुप हुआ है या नहीं।

वास्तविक प्रगति के मापन के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रगति का मापन, कार्य पूरा होने पर ही किया जा सकता है अथवा जब कार्य चल रहा हो तब भी हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहना उचित होगा कि कार्य प्रगति का मापन दोनों दशाओं में हो सकता है। प्रथम, जब कार्य चल रहा हो तो पर्यवेक्षण के माध्यम से यह देखना चाहिए कि कार्य इच्छित गति से हो रहा है अथवा नहीं, ताकि नकारात्मक परिणाम पर तुरन्त सुधारात्मक कार्यवाही करके शेष कार्य में होने वाली हानि को रोका जा सके। द्वितीय, जब संपूर्ण कार्य पूरा हो जाए। ऐसी स्थिति में नकारात्मक परिणाम आने पर सुधारात्मक कार्यवाही केवल भविष्य के लिए ही की जा सकेगी, अर्थात जो हानि हो चुकी है उसे कम नहीं किया जा सकता।

वास्तविक कार्य प्रगति को मापते समय निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिएः

(i) कार्य प्रगति के आंकड़े यथासंभव पूर्णतया सही होने चाहिए।

(ii) ये आंकड़े निरंतर तैयार किए जाने चाहिए।

(iii) प्रगति मापने के मापदंड वैसे ही होने चाहिए जैसे कि प्रमाप तय करने के लिए इस्तेमाल किए गए हों।

(iv) प्रगति मापन पद्धति शीघ्र विचलन को प्रकट करने वाली होनी चाहिए।

(ग) **वास्तविक प्रगति की प्रमापों से तुलनाः** इस चरण पर वास्तविक प्रगति की तुलना प्रमापों से की जाती है। इससे वास्तविक प्रगति एवं प्रमापों में विचलन की जानकारी प्राप्त होती है।

विचलन दो प्रकार के हो सकते हैंः

(i) नकारात्मक विचलन

(ii) धनात्मक विचलन

नियंत्रण प्रक्रिया में ऋणात्मक विचलन अर्थात प्रमापित कार्य से कम कार्य होने के कारणों का पता लगाना तो जरुरी है ही, लेकिन धनात्मक विचलनों के कारणों की जानकारी प्राप्त करना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। गुणनात्मक विचलन का अभिप्राय वास्तविक कार्य प्रमापित कार्य से अधिक होना है। यदि यह जानकारी मिल जाए तो

वास्तविक प्रगति अधिक होने के क्या कारण हैं, तो उनमें और अधिक सुधार करके भविष्य में कार्यकुशलता को बढ़ाया जा सकता है।

(घ) **विचलनों का विश्लेषण**: इस चरण पर विचलनों का विश्लेषण किया जाता है। विचलनों के विश्लेषण के दौरान निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है:

(i) क्या प्रमाप प्राप्त हो सका? यदि 'हां' तो कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। काम पूर्व की भांति जारी रहेगा, वास्तविक प्रगति का मापन होगा और शेष प्रक्रिया आगे चलेगी। इसके विपरीत, यदि प्रमाप प्राप्त नहीं हो सका तो अगले प्रश्न के उत्तर ढूंढने होंगे।

(ii) क्या विचलन स्वीकार्य है? यदि वास्तविक प्रगति प्रमापित प्रगति से कम है लेकिन विचलन स्वीकार्य है (अर्थात ऐसा विचलन नहीं है जिसके लिए सुधारात्मक कार्यवाही की जरुरत हो) तो पुनः 'कुछ नहीं करना' और काम पहले की भांति आगे चलेगा। इसके विपरीत, यदि विचलन स्वीकार्य नहीं है तो अगले प्रश्न का उत्तर ढूंढना होगा।

(iii) क्या प्रमाप स्वीकार्य है? यदि प्रमाप स्वीकार्य है अथवा उसमें कुछ भी गलत नहीं है तो विचलन के कारणों की खोज की जाएगी, तत्पश्चात सुधारात्मक कार्यवाही की जाएगी और काम आगे चलेगा। इसके विपरीत, यदि निर्धारित किया गया प्रमाप ही गलत हो तो अगले प्रश्न का उत्तर ढूंढना होगा।

(iv) प्रमाप का पुननिर्धारणः यदि प्रमाप गलत है तो उसको फिर से निर्धारित किया जाएगा। अतः नये सिरे से प्रमाप निश्चित होगा एवं वास्तविक प्रगति का मापन होगा।

(ङ) **सुधारात्मक कार्यवाही करना** : नियंत्रण प्रक्रिया का अंतिम, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण कदम सुधारात्मक कार्यवाही करना है। इससे पूर्व विचलनों व उनके कारणों का पता लगा लिया जाता है। अब बारी आती है वास्तविक कार्य प्रगति में अड़चन बने कारणों अथवा बाधाओं को दूर करने की।

सुधारात्मक कार्यवाही का उद्देश्य वास्तविक प्रगति को अपेक्षित प्रगति के अनुकूल बनाना है। इसमें दो प्रकार की व्यवस्थाएं शामिल हैं:

(i) वास्ताविक प्रगति में कमी को दूर करना। उदाहरण के लिए, यदि उत्पादन में कमी मशीन की खराबी के कारण हुई तो मशीन को तुरन्त ठीक करवा लेना चाहिए तथा कर्मचारियो से अधिक समय तक काम करवाकर उत्पादन में कमी को पूरा कर लेना वाहिए।

(ii) इस कमी की भविष्य में पुनरावृत्ति को रोकनाः उदाहरण के लिए, मशीन में खराबी होने के कारणों का गहराई से अध्ययन करके ऐसे उपाय करना ताकि भविष्य में यह समस्या उत्पन्न ही न हो।

- सुधारात्मक कार्यवाही में ध्यान रखने योग्य बातेंः

  सुधाारात्मक कार्यवाही करते समय प्रबंधकों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिएः

  (i) सुधारात्मक कार्यवाही विचलनों के कारणों की पूरी जांच–पड़ताल करने के बाद की जानी चाहिए।

  (ii) यदि प्रमाप गलत निर्धारित कर दिए गए थे तो उन्हे ठीक कर देना चाहिए।

  (iii) सुधारात्मक कार्यवाही उसी प्रबंधक की जानी चाहिए जिसका कार्य से सीधा संबंध हो।

  (iv) कार्यवाही शीघ्र की जाने चाहिए ताकि भविष्य में हानि से बचा जा सके।

  (v) यदि आश्यक हो तो नीतियों, कार्यविधियों, नियमों आदि में परिवर्तन कर देना चाहिए।

सुधारात्मक कार्यवाही करने के संबंध में एक विशेष बात यह है कि मात्र सुधारात्मक कार्यवाही कर देने से ही नियंत्रण कार्य पूरा नहीं हो जाता बल्कि यह भी देखना चाहिए कि इस कार्यवाही का वास्तविक परिणामों पर क्या प्रभाव पड़ा और नकारात्मक परिणाम मिलने पर पुनः सुधारात्मक कार्यवाही करनी चाहिए। इसीलिए कहा जाता है कि नियंत्रण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

टूल बाक्स – 2 **नियंत्रण प्रक्रिया**
• प्रगति प्रमापों का निर्धारण

- वास्तविक गति का मापन
- वास्तविक प्रगति की प्रमापों से तुलना
- विचलनों का विश्लेषण
- सुधारात्मक कार्यवाही करना

अपनी प्रगति जांचिए

प्र.7 'नियंत्रण' को परिभाषित कीजिए तथा व्याख्या कीजिए कि वह प्रबंधन में कैसे सहायक हैं?

प्र.8 'नियंत्रण' शब्द की व्याख्या करें।

प्र.9 नियंत्रण किस प्रकार समन्वय स्थापित करने में तथा बेहतर नियोजन में सहायक होता है, समझाइये।

प्र.10 नियंत्रण प्रक्रिया के पांच कदम समझाइये।

5.6 नियंत्रण तकनीक

व्यवसाय में प्रभावपूर्ण नियंत्रण की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता क्योंकि व्यवसाय की सफलता का आधार प्रभावपूर्ण नियंत्रण ही है। नियंत्रण के अंतर्गत वास्तविक कार्य प्रगति का मिलान प्रमापित कार्य से करके विचलनों का पता लगाया जाता है। ताकि सुधारात्मक कार्यवाही करके विचलनों को दूर किया जा सके। अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी कौन–सी पद्धतियां अथवा प्रणालियां हैं जिनके माध्यम से प्रबंधन कार्य को सफलतापूर्वक पूरा किया जा सके।

समय के साथ–साथ अनेक नवीनतम नियंत्रण प्रणालियों की खोज की गई है और पुरानी प्रणालियों में सुधार किया गया है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से नियंत्रण प्रणालियों को निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:

(i) परंपरागत नियंत्रण प्रणाली

(ii) समकालिक अथवा आधुनिक

दोनों प्रकार की नियंत्रण प्रणालियों को निम्न चित्र में दिखाया गया है:

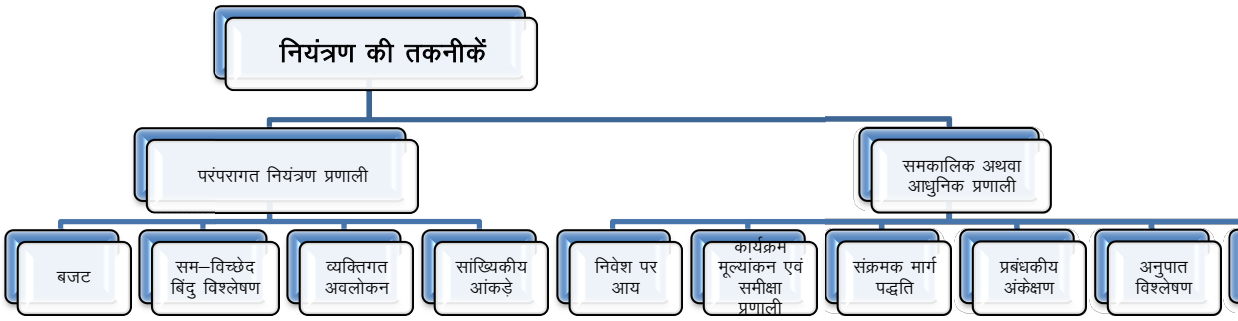

चित्र – 10.2 नियंत्रण की तकनीकें

अब हम दोनों प्रकार की पद्धतियों का विस्तृत अध्ययन करेंगे:

- **परंपरागत नियंत्रण प्रणालियां**

बजटीय नियंत्रण

बजटीय नियंत्रण, प्रबंधकीय नियंत्रण की सर्वाधिक लोकप्रिय पद्धति है। इसका आशय बजटों द्वारा नियंत्रण करने से हे। बजटीय नियंत्रण पद्धति का विस्तृत अध्ययन करने से पहले तीन मिलती–जुलती (बजट, बजट बनाना, बजटीय नियंत्रण) का अर्थ समझा देना जरुरी है।

बजट: बजट भावी कार्यवाही की गणनात्मक विवेचना है अर्थात भविष्य में जो किया जाना है उसकी वित्तीय अथवा गणात्मक रुपरेखा बजट कहलाती है।

बजट बनाना: बजट बनाना वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बजट निर्माण किया जाता है। अर्थात बजट बनाने से संबंधित सभी सूचनाएं एवं आंकड़े एकत्रित करके उन्हें एक विवरण का रुप देना बजट बनाना कहलाता है।

बजटीय नियंत्रण: यह एक व्यवस्था है जिसमें नियंत्रण के उद्देश्य से बजटों का प्रयोग किया जाता है। अर्थात जब एक व्यवसायिक संस्था की विभिन्न क्रियाओं को नियंत्रित करने के लिए बजट का प्रयोग किया जाता है तो इसे बजटीय नियंत्रण कहते हैं।

बजटीय नियंत्रण की विशेषताएं

बजटीय नियंत्रण की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(i) तुलनात्मक अध्ययनः बजटीय नियंत्रण की प्रथम विशेषता तुलनात्मक अध्ययन करना है। इसके अंतर्गत बजट आंकड़ों अथवा अनुमानों की तुलना वास्तविक कार्य प्रणाली से की जाती है।

(ii) विचलनों का विशलेषणः बजटीय नियंत्रण के अंतर्गत वास्तविक एवं प्रमापित आंकड़ों की तुलना के आधार पर विचलनों का पता लगाकर उनका गहराई से अध्ययन किया जाता है और विचलनों के कारणों की खोज की जाती है।

(iii) सुधारात्मक कार्यवाहीः इसके अंतर्गत विचलनों के कारणो की खोज करके उनमें सुधार करने के उपाए सुझाए जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि बजटी नियंत्रण क्रियाओं को सीधे तौर पर नियंत्रित नहीं करता बल्कि यह बताता है कि सुधारात्मक कार्यवाही की जरुरत कहां है और किस तरह की सुधारात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए।

(iv) सभी विभागों के लिए बजटः इसके अंतर्गत किसी एक विभाग अथवा क्रिया के लिए बजट न बनाकर सभी विभागों अथवा क्रियाओं के लिए बजट बनाए जाते हैं और फिर सभी बजटों को एक मास्टर बजट के रुप में संगठित कर दिया जाता है।

(v) पूर्वानुमानों पर आधारितः बजटीय नियंत्रण प्रक्रिया में बजटों का निर्माण किया जाता है जिनका आधार पूर्वानुमान होता है।

बजटीय नियंत्रण के लाभ

बजटीय नियंत्रण को लागू किए जाने से निम्नलिखित मुख्य लाभ प्राप्त होते हैं:

(i) तुलनात्मक अध्ययन : बजटीय नियंत्रण की प्रथम विशेषता तुलनात्मक अध्ययन करना है। इसके अंतर्गत बजट आंकड़ों अथवा अनुमानों की तुलना वास्तविक कार्य प्रणाली से की जा सकती है।

(ii) विचलनों का विशलेषण : बजटीय नियंत्रण के अंतर्गत वास्तविक एवं प्रमापित आंकड़ों की तुलना के आधार पर विचलनों का पता लगाकर उनका गहराई से अध्ययन किया जाता है और विचलनों के कारणों का खोज की जाती है।

(iii) सुधारात्मक कार्यवाहीः इसके अंतर्गत विचलनों के कारणों की खोज करके उनमें सुधार करने के उपाय सुझाए जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि बजटीय नियंत्रण

क्रियाओं को सीधे तौर पर नियंत्रण नहीं करता बल्कि यह बताता है कि सुधारात्मक कार्यवाही की जरुरत कहां है और किस तरह की सुधारात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए।

(iv) सभी विभागों के लिए बजटः इसके अंतर्गत किसी एक विभाग अथवा क्रिया के लिए बजट न बनाकर सभी विभागों अथवा क्रियाओं के लिए बजट बनाए जाते हैं और फिर सभी बजटों को एक मास्टर बजट के रुप में संगठित कर दिया जाता है।

(vi) पूर्वानुमानों पर आधारितः बजटीय प्रक्रिया में बजटों का निर्माण किया जाता है जिनका आधार पूर्वानुमान होता है।

बजटीय नियंत्रण के दोष अथवा सीमाएं

(i) गलत अनुमानों का खतराः बजट पूर्वानुमान पर आधारित होते हैं और पूर्वानुमान कभी भी खतरे से खाली नही होते। अतः बजटीय नियंत्रण की सफलता पूवानुमानों की सत्यता पर निर्भर करती है।

(ii) लोचहीनता का खतराः प्रायः देखा जाता है कि बजट में लोचन की कमी होती है। लोचहीनता के कारण परिवर्तनों को शामिल करना संभव नहीं होता। इस प्रकार परिवर्तनों का समायोजन न किए जाने के कारण बजटों को लागू करने में कठिनाई आती है।

(iii) मानवीय सीमाएंः बजटीय नियंत्रण को सफल बनाने के लिए संस्था में काम करने वाले सभी कर्मचारियों के सहयोग की आवश्यता होती है। लेकिन प्रायः ऐसा संभव नहीं होता कि सभी कर्मचारियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो जाए।

(iv) अति–बजट का खतराः प्रायः विभागीय अध्यक्षों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे विभागीय बजटों में खर्चों को आवश्यकता से अधिक दिखाते हैं क्योंकि उनका अपने प्रस्तुत किए गए अनुमानों में कुछ कटौती होने का अन्देशा रहता है। यदि गलती से उनका बजट बिना कटौती किए ही पास हो जाए तो वे जरुरत से ज्यादा खर्चे करके संस्था को हानि पहुँचा सकते हैं।

(v) महंगी पद्धतिः इस पद्धति को सफल बनाने के लिए अधिक मात्रा में धन, समय व प्रयासों की जरुरत होती है। कई बार इसकी लागतें इससे प्राप्त होने वाले लाभों से अधिक हो जाती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.11 बजट का अर्थ क्या है?
प्र.12 बजट बनाने से संगठन को क्या लाभ हैं?
प्र.13 क्या बजट बनाना एक महंगी पद्धति है।

सम–विच्छेद बिंदु विश्लेषण

सम–विच्छेद बिंदु उत्पादन एवं विक्रय के उस स्तर को दर्शाता है जिस पर व्यवसाय को न तो लाभ होता है ओर न हानि। अर्थात वस्तुओं की लागत और उनका कुल विक्रय मूल्य दोनों बराबर होते हैं। सम–विच्छेद बिंदु को निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है:

माना एक कम्पनी में लागते एवं विक्रय मूल्य इस प्रकार हैं:

स्थाई लागतें	5000
परिवर्तनशील लागतें	5000 प्रति इकाई
विक्रय मूल्य	10 प्रति इकाई
सम–विच्छेद बिंदु	$\frac{\text{स्थाई लागतें}}{\text{विक्रय मूल्य} - \text{परिवर्तनशील लागतें}}$ $\left\{\frac{5000}{10-5}\right\}$
अर्थात सम–विच्छेद बिंदु 1000 इकाईयां हैं। हम अपने उत्तर की पड़ताल निम्न प्रकार कर सकते हैं:	
1000 इकाईयों की कुल लागतें	रु. 5000 (स्थाई लागत) + $\{1000x5\}$ (परिवर्तनशील लागत) = रुपये 10000
1000 इकाईयों का विक्रय मूल्य	= $\{1000x10\}$ = रुपये 10000
लाभ/हानि = विक्रय मूल्य – लागतें = 10000 – 10000 = शून्य	
इस प्रकार स्पष्ट होता है कि 1000 इकाईयों का उत्पादन एवं विक्रय करने पर न तो लाभ होता है और न ही हानि। यदि कम्पनी इस बिंदु से अधिक उत्पादन एवं विक्रय करती है तो लाभ होगे और उसके कम उत्पादन एवं विक्रय होने पर हानि को निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है। (1)माना कि कम्पनी 1200 इकाईयों का उत्पादन एवं विक्रय करती है तो लाभ–हानि इस	

प्रकार ज्ञात किया जाएगा।

लाभ = कुल विक्रय मूल्य – कुल लागतें

$= (1200x10)-[5000+(1200x5)]$

= 12000–11000

= 1000

(2) माना कि कम्पनी 1200 इकाईयों का उत्पादन एवं विक्रय करती है तो लाभ–हानि इस प्रकार ज्ञात किया जाएगा।

लाभ = कुल विक्रय मूल्य – कुल लागतें

$= (800x10)-[5000+(800x5)]$

= 8000–900

= (–) 1000 (हानि)

सम–विच्छेद बिंदु द्वारा नियंत्रणः अब प्रश्न यह उठता है कि सम–विच्छेद बिंदु का अध्ययन करने से नियंत्रण में किस प्रकार सहायता मिलती है। सम–विच्देद बिंदु ज्ञात हो जाने से प्रबंधकों को यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि उत्पादन एवं विक्रय एक निश्चित मात्रा से नीचे चला गया तो संस्था को भारी हानि का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार प्रबंधक इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही बाकी की सभी क्रियाएं निश्चित करते हैं।

सांख्यिकीय आंकड़े

इस विधि के अंतर्गत व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं के संबंध में पिछले वर्षों के आंकड़ों के आधार पर निष्कर्ष निकाले जातें हैं। उदाहरणार्थ, पिछले वर्षों के विक्रय आंकड़ों का विश्लेषण करके प्रवृत्ति ज्ञात की जा सकती है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि भविष्य में विक्रय बढ़ेगा अथवा कम होगा। आंकड़ों को इस ढ़ंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि ये आसानी से समझ आ जाएं। चित्र अथवा ग्राफ की सहायता से प्रस्तुत किए गए आंकड़े अधिक स्पष्ट एवं प्रभावी होते हैं और उनसे अतिशीघ्र निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

यह कहकर कि इन आंकड़ों का संबंध केववल गत वर्षों से है और भविष्य में इससे कुछ लेना–देना नहीं है इनके महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता। क्योंकि ये भावी क्रियाओं के बारे में पूर्वानुमान लगाने में मदद करते हैं और इन्हें भविष्य के बारे में एक चेतावनी के रुप में स्वीकार किया जाता है।

व्यक्तिगत अवलोकन

वास्तव में देखा जाए तो नियंत्रण की कोई पद्धति ऐसी नहीं है जिसको व्यक्तिगत अवलोकन अथवा देख–रेख के अभाव में सफलतापूर्वक लागू किया जा सके। यह देखने के लिए कि क्या कर्मचारी अपने कार्य को पूरी लगन एवं उत्साह से कर रहे हैं उनके व्यवहार की जानकारी प्राप्त करना जरुरी है और यह जानकारी केवल व्यक्तिगत अवलोकन द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। बजट, रिपोर्ट, चार्ट, आंतरिक अंकेक्षण आदि व्यक्तियों के व्यवहार की जानकारी प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं। प्रबंधक को चाहिए कि समय समय पर स्वयं कार्य–स्थल पर जाकर कर्मचारियों को काम करते हुए देखे। ऐसा करने से कर्मचारियों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और वे प्रबंधक के अचानक भ्रमण के डर से अपना काम पूरी लगन एवं मेहनत के साथ करते हैं। अतः व्यक्तिगत अवलोकन नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण यंत्र है।

निवेश पर आय (ROI-Return On Investment)

इस नियंत्रण पद्धति के अंतर्गत विनियोजित पूंजी व आय का तुलना करके व्यवसाय की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है। ROI में वृद्धि व्यवसाय की प्रगति का सूचक है तथा कमी इसके विपरीत।

यहां विनियोजित पूंजी का अर्थ व्यवसाय में लगाई गई कार्यशील पूंजी तथा स्थाई पूंजी के योग से है। जबकि आय का अभिप्राय शुद्ध आय से है। ROI की गणना निम्न प्रकार की जाती है:

$$ROI = \frac{\text{Net Iincome Or Profit Before Interest and Tax}}{\text{Total Investment}}$$

निवेश पर आय का उपयोग पूरे व्यवसाय की प्रगति का मापन करने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग किसी एक डिवीज़न की प्रगति की जानकारी प्राप्त करने के लिए भी किया जा सकता है। प्रगति के मापन के लिए पूर्व निर्धारित व वास्तविक ROI की तुलना की जाती है। इसके अतिरिक्त दो वर्षों की ROI की तुलना करके भी चालू वर्ष की प्रगति को जाना जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.14 सम–विच्छेद बिंदु को विस्तार पूर्वक समझाइए।
प्र.15 निवेश पर आय की गणना किस प्रकार की जाती है?

अनुपात विश्लेषण

अनुपात विश्लेषण एक ऐसी नियंत्रण पद्धति है जिसके अंतर्गत अनुपातों की मदद से वित्तीय विवरणों का विश्लेषण करके अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। महत्वपूर्ण अनुपात निम्नलिखित हैं:

(i) तरलता अनुपात

(ii) शोधन क्षमता अनुपात

(iii) लाभप्रदता अनुपात

(iv) आवर्त अनुपात

(1) सरलता अपुनातः इनका अभिप्राय व्यवसाय की अल्पकालीन शोधन क्षमता से है। अल्पकालीन शोध क्षमता का अर्थ व्यवसाय द्वारा चालू दायित्वों के समय पर भुगतान करने की क्षमता से है। ये अनुपात चालू संसाधनों में से चालू दायित्वों के भुगतान करने की क्षमता को वयक्त करते हैं। वित्त प्रबंधक को लगातार देखते रहना पड़ता है कि ये अनुपात आदर्श अनुपात से बहुत कम अथवा अधिक न हों।

(2) शोधन क्षमता अनुपातः ये अनुपात व्यवसाय की दीर्घकालीन दायित्वों का समय पर भुगतान करने की क्षमता की जानकारी प्रदान करते है।

(3) लाभप्रदता अनुपातः ये अनुपात व्यवसाय की लाभ अर्जन क्षमता की जानकारी प्रदान करते हैं। जैसे–क्या व्यवसाय द्वारा कमाए गए लाभ पर्याप्त है?

(4) आवर्त अनुपातः ये अनुपात बेचे गए माल की लागत अथवा विक्रय के आधार पर किए जाते है। ये अनुपात दर्शाते हैं कि कहां तक संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जा रहा है।

उत्तरदायित्व लेखांकन की प्रक्रिया

उत्तरदायित्व लेखांकन की प्रकिया में निम्नलिखित चरणों को सम्मिलित किया जाता है:

(1) उत्तरदायित्व केन्द्रों की स्थापनाः नियंत्रण के लिए सर्वप्रथम व्यवसाय के सभी क्रियाओं को समूहों में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक क्रिया समूह एक उत्तरदायित्व केन्द्र होता है। राबर्ट एन.एन्थनी के अनुसार, ''उत्तरदायित्व केन्द्र संस्था की एक इकाई है जिसका अध्यक्ष एक उत्तरदायी व्यक्ति होता है।''

उत्तरदायित्व केंद्र तीन प्रक्रार के होते हैं:

(i) लागत अथवा व्यय केंद्रः संस्था की ऐसी इकाई जिस पर खर्च तो होता है लेकिन उसके उत्पादन को मुद्रा में नहीं मापा जा सकता, लागत अथवा व्यय केंद्र है क्योंकि इसमें प्रशासनिक कार्यो के खर्चे किए जाते हैं लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि इन कार्यो पर किए गए खर्चों से कितनी आय होगी।

(ii) लाभ केन्द्रः संस्था की ऐसी इकाई जिसका लक्ष्य लाभ के रुप में निश्चित कर दिया जाता है, लाभ केंद्र कहलाता है। ऐसी इकाई के आय एवं व्यय के अंतर से लाभ ज्ञात करके उसकी सफलता या असफलता का मूल्यांकन किया जाता है। जैसे–एक कारखाना लाभ केन्द्र है क्योंकि इसमें उत्पादित वस्तुओं की लागत एवं उनके मूल्य के अंतर से लाभ ज्ञात किया जा सकता है।

(iii) विनियोग केन्द्रः संस्था की ऐसी इकाई है जहां प्रबंधक का आय–व्यय के साथ–साथ विभाग में प्रयोग की जाने वाली सम्पतियों के प्रभावपूर्ण उपयोग के लिए भी उत्तरदायी ठहराया जाता है, विनियोग केंद्र कहलाता है।

(2) लेखांकन की व्यवस्था विकसित करनाः उत्तरदायित्व लेखांकन के दूसरे चरण के रुप में लेखांकन की ऐसी व्यवस्था तैयार की जाती है जिससे प्रत्येक उत्तरदायित्व केंद्र के लेखे अलग–अलग तैयार किए जा सकें।

(3) लक्ष्य का निर्धारण करनाः उत्तरदायित्व लेखांकन के तीसरे चरण में सभी विभागों के लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं।

(4) नियंत्रणीय तथा अनियंत्रणीय लागतों कर निर्धारणः लक्ष्य निश्चित करने के बाद प्रत्येक विभाग की सभी लागतों को दो भागों में बांट दिया जाता हैः

(i) जिन पर नियंत्रण करना संभव नहीं है तथा

(ii) जिन पर नियंत्रण करना संभव नहीं है। पहली प्रकार की लागतों के लिए ही प्रबंधकों को उत्तरदायी ठहराया जाता है।

(5) जरुरी कार्यवाही करनाः उत्तरदायित्व लेखांकन पद्धति के अंतिम चरण के रुप में विभाग की वास्तविक कार्य प्रगति का रिकार्ड रखा जाता है, विचलनों को ज्ञात किया

जाता है, संबंधित अधिकारियों को प्रगति रिपोर्ट भेजी जाती है और उत्तरदायित्व निश्चित करके उचित कार्यवाही का सुझाव दिया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए	
प्र.16	अनुपात विश्लेषण नियंत्रण कैसे करते है?
प्र.17	अनुपात विश्लेषण से आप क्या समझते हैं?
प्र.18	उत्तरदायित्व केन्द्र कितने प्रकार के हैं?

प्रबंधकीय अंकेक्षण

प्रबंधकीय अंकेक्षण एक महत्वपूर्ण आधुनिक नियंत्रण प्रणाली है। इसके अंतर्गत संगठन के सभी स्तरों पर प्रबंधकों की कार्यकुशलता की जांच की जाती है। जांच का कार्य प्रबंधन अंकेक्षक द्वारा किया जाता है जिसकी नियुक्ति संचालक मण्डल करता है। यह मुख्यतः दो बातों की जांच करता हैः

(i) प्रबंधकीय निर्णयों की क्वालिटी तथा

(ii) प्रबंधन पद्धतियों की कुशलता

प्रबंधन अंकेक्षक दोनों प्रकार की जांच करके अपनी निष्पक्ष रिपोर्ट संचालक मण्डल के सामने प्रस्तुत करता है और सुधार के लिए सुझाव भी देता है।

कून्टज तथा ओ'डोनेल के अनुसार, ''प्रबंधकीय अंकेक्षणकीय अंकेक्षण का अभिप्राय, प्रबंधको का अलग–अलग प्रबंधकों के रुप में मूल्यांकित करके तथा संस्था की समस्त प्रबंधकीय प्रणाली का मूल्यांकन करके, प्रबंधकों के गुणों का अंकेक्षण करना है।''

- **प्रबंधकीय अंकेक्षण की प्रक्रिया**

प्रबंधकीय अंकेक्षण को लागू करने के लिए प्रायः निम्नलिखित प्रक्रिया को अपनाया जाता हैः

(i) **प्रबंधकीय अंकेक्षण पद्धति को लागू करने के उद्देश्य** : सर्वप्रथम, संचालकों द्वारा प्रबंधकीय अंकेक्षण पद्धति लागू करने के उद्देश्य निश्चित किए जाते हैं। इसके साथ ही प्रबन्ध अंकेक्षक की नियुक्ति भी कर दी जाती है।

(ii) **तथ्य एकत्रित करनाः** अंकेक्षक की नियुक्ति हो जाने पर वह जांच का काम प्रारम्भ कर देता है। जांच के दौरान वह आवश्यक रिकार्ड का परीक्षण करता है, प्रबन्धकों

का साक्षात्कार लेता है, संस्था की नीतियों, संगठनात्मक ढांचे, अभिप्रेरण व संदेशवाहन की प्रणालियों की जांच करता है। इसके अतिरिक्त एक विशेष अवधि में लिए गए सभी प्रबन्धकीय निर्णयों की क्वालिटी का जांच करता है।

(iii) **आलोचनात्मक परीक्षण**: सभी आवश्यक तथ्य एकत्रित करने के बाद वह उनका आलोचनात्मक परीक्षण करता है और यह देखता है कि कौन–कौन सी क्रियाएं अनावश्यक व अनुपयोगी थीं तथा कौन–कौन से निर्णय असफल रहे और क्यों?

(iv) **सुधार के उपाय**: प्रबन्ध अंकेक्षक का काम केवल कमियों को निकालना ही नहीं है बल्कि उन्हे दूर करने के उपाय बताना भी है। अतः सबसे अंत में वह संचालक मण्डल को सुझावों सहित अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।

- **कार्यक्रम रेखा–चित्र विश्लेषण**

कार्यक्रम रेखा–चित्र विश्लेषण की एक अत्यंत महत्वपूर्ण आधुनिक पद्धति है। इस प्रणाली का प्रयोग उन सस्थाओं में किया जाता है जहां किसी कार्य अथवा प्रोजेक्ट को अंतिम रुप देने के लिए क्रियाएं करना पड़ती हैं। इस पद्धति में विभिन्न क्रियाओं को एक क्रम में व्यवस्थित करके एक रेखा–चित्र तैयार किया जाता है जिसे कार्यक्रम रेखा–चित्र कहते हैं। इसी आधार पर इस पद्धति के कार्यक्रम रेखा–चित्र विश्लेषण का नाम दिया गया है। इस पद्धति के अंतर्गत दो मिलती–जुलती नियंत्रण प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है जिनका वर्णन निम्नलिखित है:

1. कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा प्रणाली
2. संक्रमक मार्ग पद्धति

1 **कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा प्रणाली** : पर्ट का प्रयोग ऐसी परियोजनाओं को पूरा करने में लगने वाले समय को नियंत्रण करने के लिए ज्ञात किया जाता है जो बिल्कुल नई है। अर्थात ऐसी परियोजनाओं जिनके पूरा करने के बारे में पहले से कोई विशष जानकारी नहीं है। पर्ट के अंतर्गत पूरी परियोजना को विभिन्न चरणों अथवा घटनाओं में विभक्त कर दिया जाता है। इसके बाद यह निश्चित किया जाता है कि एक घटना से दूसरी घटना तक पहुंचने के बीच में की जाने वाली क्रिया में कितना समय लगेगा और उस क्रिया को पूरा करने में किस–किस साधन (श्रम, माल, मशीन आदि) की जरुरत पड़ेगी। घटनाओं और क्रियाओं का निर्धारण कर लेने के

बाद इसको इस ढंग से व्यवस्थित किया जाता है ताकि परियोजना को पूरा करने मे कम से कम समय लगे।

संक्रमक मार्ग पद्धति : कार्यक्रम रेखा–चित्र विश्लेषण की दूसरी पद्धति 'संक्रमक मार्ग–पद्धति' है। यह पद्धति PERT से मिलती–जुलती है। पर्ट प्रक्रिया के समय अनुमान की बात को छोड़कर शेष सभी बातें यहां पर भी लागू होती हैं। CPM को समझने के लिए इसकी PERT के साथ समानताओं एवं असमानताओं का अध्ध्यन किया जाना जरुरी है।

प्रबंधन सूचना प्रणाली - MIS (Management Information System) : एक व्यवसाय की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि वहां विचलनों के लिए कितनी शीघ्रता से सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। अतिशीघ्र सुधरात्मक कार्यवाही करने के लिए नवीनतम, शुद्ध तथा समय पर सूचनाएं उपलब्ध होना जरुरी है। और ऐसा MIS (Management Information System) द्वारा संभव है।

MIS एक ऐसी प्रणाली है जिसके अंतर्गत सूचनाओं के एकत्रण, संग्रहण, प्रोसेसिंग तथा वितरण व्यवस्था होती है। इस प्रणाली में कम्प्यूटर व अनेक दूसरे उपकरणों का उपयोग किया जाता है। ये उपकरण अतिशीघ्र आवश्यक सूचनाएं उपलब्ध करके निर्णयन में मदद करते हैं। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि MIS प्रबंधकों के नियंत्रण कार्य का सरल बनाने में अहम भूमिका निभा रही है।

MIS के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं :

(i) यह सूचनाओं के एकत्रण, संग्रहण, प्रोसेसिंग व वितरण द्वारा एक संगठन के विभिन्न विभागों को एक–दूसरे से जोड़ती है।

(ii) यह निर्णयन व नियंत्रण कार्य को सरल बनाती है

(iii) इससे उच्च कोटि की सूचनाएं उपलब्ध होना संभव हुआ है।

(iv) यह सूचनाओं को कम लागत पर उपलब्ध करती हे।

(v) यह आवश्यक सूचनाओं को संक्षिप्त में प्रस्तुत करती है। परिणामतः प्रबंधकों पर ये सूचनाओं का भार कम होता है।

5.7 सारांश

नियंत्रण प्रबन्धकीय प्रक्रिया का अंतिम चरण है। किसी भी उपक्रम अथवा उसके विभागों के लक्ष्यों की प्रप्ति के लिए अपनाई गई योजनाएं उनके मूल रुप से कार्यन्वित की जा रही है अथवा नहीं, यह जानने के लिए अधिनस्थों के कार्यों की जांच पड़ताल करके उनमें आवश्यकतानुसार उचित समय पर सुधार करना 'नियंत्रण' कहलाता है। अनेक विद्वान नियंत्रण को प्रबंधन का पर्यायवाची मानते हैं। जब प्रबंधक नियंत्रण का कार्य कर रहा होता है तो ऐसा लगता है जैसे वह उपक्रम के प्रबंधन कार्य में संलग्न है। उस व्यक्ति को सरलता से हम प्रबंधन दल का सदस्य स्वीकार कर लेते हैं जो एक दूसरे के कार्यों की जांच–पड़ताल, कर उनमें संशोधन करता है और उनका मार्गदर्शन करता है। ये कुछ धारणाएं हैं जो सामान्यतः नियंत्रण के संबध में विद्यमान हैं। वास्तव में नियंत्रण, प्रबंधन न होकर, प्रबंधन का अंश मात्र है अथवा इसे प्रबंधन के अनेक कार्यों में से एक कार्य माना जा सकता है।

5.8 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'नियंत्रण प्रबंधन का एक अभिन्न कार्य है।' क्या आप सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में कोई चार कारण दीजिए।
2. 'यदि नियोजन सावधानीपूर्वक किया जाए और उस के अनुसार प्रबंधन के अन्य कार्य उचित दिशा में चलते रहे तो प्रबंधन में नियंत्रण कार्य की कोई आवश्यकता नहीं है' । क्या आप इस कथन से सहमत हैं? उत्तर के समर्थन में कारण दीजिए।
3. नियंत्रण 'लक्ष्यों को प्राप्त करने' तथा 'कर्मचारियों की मनोदशा को सुधारने' में किस प्रकार सहायता करता है?
4. 'नियंत्रण एक सर्वव्यापक कार्य है।' समझाइए।
5. क्या नियंत्रण 'प्रमापों की शुद्धता की जांच' तथा 'कर्मचारी अभिप्रेरणा में सुधार' मे मदद करता है? वर्णन कीजिए।
6. नियंत्रण की चार सीमाएं समझाइए।
7. नियोजन एवं नियंत्रण में संबंध स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. बजटीय नियंत्रण पर एक विस्तृत नोट लिखिए।
2. बजट से आपका क्या अभिप्राय है? व्यवसाय में प्रयोग हाने वाले मुख्य बजटों का वर्णन कीजिए।
3. बजटीय नियंत्रण की विशेषताएं बताइए।
4. बजट के पांच प्रकार बताइए।
5. विभिन्न आधुनिक नियंत्रण तकनीकों का वर्णन उचित उदाहरण सहित कीजिए।
6. प्रबंधकों द्वारा संस्थानों द्वारा अपनाई जाने वाली पद्धतियाँ कौन–कौन सी हैं?
7. उत्तरदायित्व लेखांकन से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
8. कार्यक्रम रेखा–चित्र विश्लेषण क्या है? कार्यक्रम मूल्यांकन एवं समीक्षा प्रणालरी तथा संक्रमक मार्ग पद्धति में रेखा–चित्र कैसे बनाया जाता है?

सकेत : (कार्यक्रम रेखाचित्र का अर्थ बताइए। PERT तथा CPM की प्रक्रिया का वर्णन करें। ध्यान रहे कि दोनों की प्रक्रिया लगभग एक ही है। दोनों में अंतर स्पष्ट करने के लिए इनकी समानताओं एवं असमानताओं को लिखें।

9. PERT का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए। इसके लाभ एवं सीमाएं भी बताएं।
10. प्रबंधन सूचना प्रणाली कैसे नियंत्रण में सहायक है?

5.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- देसाई, वसंत (2009) प्रबंधन के सिद्धांत, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
- अग्रवाल, आर. सी. एवं गुप्ता, संजय (2016) प्रबंध के सिद्धांत, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, आगरा
- Robbins, Stephen P., Coulter, M. &Vohra, N. (2011). Management. Pearson, New Delhi
- Tripathi, P.C. & Reddy, P.N. (2008), Principles of Management, 4th Edition, the McGraw Hill, New Delhi